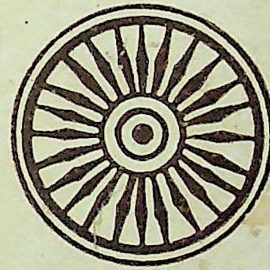
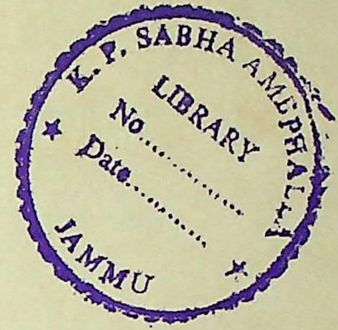
हिन्दी

शीराज़ा



रजत जयन्ती अंक

ललित कला संस्कृति तथा साहित्य



शीराज़ा हिन्दी

(रजत जयन्ती अंक)

वर्ष ८, अंक २ और ३

सम्पादक
श्यामलाल शर्मा

ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू

वार्षिक शुल्क—८) रु०

एक प्रति—२) रु०
इस अंक के—४) रु०

सम्पादकीय पत्र व्यवहार

श्यामलाल शर्मा
सम्पादक
शीराज़ा हिन्दी
ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी
नहर मार्ग, जम्मू

फोन—५०४०

सैक्रेटरी द्वारा जम्मू कश्मीर अकादमी के लिये प्रकाशित तथा
स्पेसएज प्रिण्टर्ज़ म्युन्सीपल मार्किट, महेशी गेट, जम्मू में मुद्रित हुआ।

वर्ष ८, अंक २ और ३
सितम्बर, दिसम्बर १९७२

शीराज़ा हिन्दी

(रजत जयन्ती अंक)

वर्ष ८] [अंक २ और ३

(सितम्बर, दिसम्बर १९७२)

अनुक्रमणिका

साहित्य सन्देश

कथा कुञ्ज

कविता क्यारी

परिचय



सम्पादकीय

स्वतन्त्रता प्राप्ति की रजत जयन्ती—

भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुए २५ वर्ष हो गये। मानव-बल धनबल और बुद्धिबल में इतना महान देश क्यों परतन्त्र हुआ आश्चर्य लगता है। संसार में उन्नति के लिये अपने अतीत का आधार और भवितव्य की कल्पना ले कर आगे बढ़ना होता है। सर्वांगीन-उन्नति के लिये सारे देश को सामूहिक रूप से अपने अस्तित्व और कर्तृत्व का ज्ञान और मान होना चाहिये। अंग्रेजों ने हमारे हृदयों से इन्हीं दोनों भावों को विस्मृत करने का उग्र प्रयत्न किया और सफलतापूर्वक हमें दबाये रहे। बाह्य आक्रमणकारी के मुकाबले में यदि समूचे देश में हरकत पैदा नहीं होती तो यह पक्षाघात से कम भयंकर स्थिति नहीं। परन्तु अपना इतिहास साक्षी है कि आक्रमण-कारी सोमनाथ के मन्दिर तक पहुँच गया और इतने राज्य व्यक्तिगत रूप से एक एक होकर या तो उसे आगे बढ़ने देते रहे या स्वयं पद दलित होकर राष्ट्र भावना से दूर पड़ते रहे। अंग्रेजों के मुकाबले में भी पाण्डेचरी, कर्नाटक, बंगाल, संयुक्त प्रान्त, पंजाब एक-एक करके पराजित होते रहे। हमने अपने सामूहिक बल को पहचाना नहीं, राष्ट्र भावना को अखण्डरूप में दीपित किया नहीं। इस कारण एक एक करके हार गये और अपने ही घर में मुट्ठी भर विदेशियों के गुलाम हो गये जिन्होंने हमारा भरपूर शोषण किया।

१८५७ में देश के बड़े भू-भाग ने सामूहिक प्रयास की कल्पना की और उसे कार्यरूप में परिणत करने का यत्न किया। परन्तु विफलता ने दमनचक्र में पीस दिया। देश के नेतृत्व ने अहिंसात्मक जनजागरण का रास्ता अपनाया।

इस से समूचे देश में राष्ट्र भावना विकसित होने लगी। इस जनजागरण के प्रयास में सशस्त्र क्रान्ति में होने वाले कष्टों से कम कष्ट नहीं झेलने पड़े परन्तु देश के प्रत्येक भाग को महसूस होता रहा कि वह अपना कर्तव्य निभा रहा है। क्रान्तिकारी वीरों की ध्येयनिष्ठा और कर्तृत्व न इस भावना को उत्तेजना देते रहने का पुनीत कर्तव्य निभाया। सत्याग्रह आन्दोलनों में जनता लाठियों और गोलियों की मार सहती रही और नौसेना के विद्रोह तथा आजाद हिन्द-सेना के प्रयास विदेशियों के हृदयों को दहलाते रहे। इस महान जन-जागरण ने विदेशियों को भारत छोड़ने पर बाध्य कर दिया। १९४७ में देश स्वतन्त्र हुआ। हम अपने घर का संचालन स्वयं करने योग्य हुए।

इन पचीस वर्षों में देश कितना आगे बढ़ गया है। इसकी सुखद कल्पना से सन्तोष होता है। कपड़े सीने के लिये बटन और सूइयां तक, जर्मनी जापान और इंगलैण्ड से आती थीं परन्तु आज हम रेल्वे, समुन्दरी जहाज, हवाई जहाज स्वयं निर्माण कर रहे हैं। आज भारतीय कपड़ा विदेशी मारकिट में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। आज हम अपने पावों पर खड़े होकर बाह्य आक्रमण का मुंह तोड़ उत्तर देने को समर्थ हुए हैं। परन्तु इतनी समृद्धि और उन्नति में फिर कहीं पुरानी बीमारी के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। हम आन्ध्र-वासी, तमिल-वासी, विदर्भ वासी, पंजाबी और बिहारी, आसामी बनने लगे हैं। हम भारत वासी हैं यह कल्पना दबने लगी है। और प्रान्तीय भावना उग्र रूप धारण करने लगी है। केन्द्र से स्वतन्त्र होने और अपने को अपने में सीमित रखने की राष्ट्रविरोधी तथा आत्मघाती प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलने लगा है। इसी प्रकार भाषा के नाम पर हम टूटते जारहे हैं।

हम एक एक वृक्ष को गिनने में वन की कल्पना को विस्मरण करने की भूल के चक्कर में पड़ने लगे हैं। हाथ, पैर, मुंह, सिर और शरीर के प्रत्येक अंग की पृथक २ महत्ता है परन्तु इनकी महत्ता तभी तक है जब तक शरीर प्राण-वान है, सशक्त है। निःसत्व शरीर के पृथक् २ अंगों का कोई महत्व नहीं होता। आज यदि हम भोजपुरी, मैथिली, व्रज, अवधि, हरयाणवी, राजस्थानी, बांगरू आदि को पृथक् २ भाषा मानते हैं तो फिर हिन्दी किसे कहेंगे। We shall miss the wood for the trees. हम अपनी साहित्यिक सम्पत्ति को विकसित अवश्य करें परन्तु पृथक् भाषा के नाम पर राष्ट्र भावना को विस्मृत न करें।

यह घोर वास्तविक चेतावनी समय हमें दे रहा है। हमें अपनी स्वतन्त्रता

को सुरक्षित रखना है और राष्ट्र भावना की उत्कृष्टता से संसार में मानपूर्वक अपना स्थान बनाना है। हमें सतर्क रहना है कि वृक्षों को गिनने में वन की कल्पना न भूलादें। इसीलिये हमारे पूर्वजों ने हमारे राष्ट्र की कल्पना भारत-माता के नाम पर की है। हम माता के अंगों को कटने देने या काटने का पाप-पूर्ण विचार तक अपने मस्तिष्क में नहीं ला सकते।

हमारे पड़ोसी

आज के संसार का नियम है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने हित को सर्व प्रथम महत्ता देता है और उसके अनुसार अन्य राष्ट्रों से तथा पड़ोसी देशों से व्यवहार करता है। उनका आदर्शवाद भी स्वराष्ट्रहिताय होता है। ऐसे वातावरण में भारत का आदर्शवाद उस सीमा को छूने लगा है कि स्वराष्ट्रहित भी उपेक्षित होता महसूस होने लगा है।

चीन और पाकिस्तान अपने पड़ोसी राष्ट्र हैं। चीन की प्रसन्नता के लिये हमने तिब्बत का बलिदान होने दिया और उसकी सीमाएं बिलकुल अपनी सीमाओं तक ला दीं। उसकी मान्यता के लिये एड़ी चोटी का यत्न किया। उसके विस्तारवादी मन्सूबों की भी हां में हां मिलाई। कई बार महसूस भी किया कि जब उसके किसी हित को चोट पहुँचती है तो वह मित्रता का आधार भूल कर गुर्राता है और भारत को एक दम साम्राज्य वादियों का पिट्ठू करने लगता है। फिर भी उसका ही समर्थन करते रहे। परन्तु १९६२ में जब उस ने सब अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों और पंचशील के तथ्यों को ठोकर मार कर भारत पर आक्रमण किया तो हमारी आंखें खुलीं। भारत की मूलभूत राष्ट्र-भावना ने सामूहिक रूप से इस आक्रमण का सामना किया और इस घोर तथ्य को पहचाना कि राष्ट्र की रक्षा के लिये अपने पाओं पर खड़ा होना परमावश्यक है। इस प्रताड़न ने सुरक्षा की ओर अपना ध्यान दिलाया परन्तु शीशे में तो बाल आगया मित्रता का आधार हिल गया और अब तक पहले जैसे राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सके। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा अभी तक उस देश के साथ हमारी मान्य नहीं हुई है। तनाव की स्थिति बदस्तूर बनी हुई है।

दूसरा पड़ोसी पाकिस्तान है जो अपना ही अंग है परन्तु साम्राज्यवादियों के षड्यन्त्रों से पृथक कर दिया गया और उग्र धर्मवाद के नाम पर भारत के विरुद्ध विषवमन करता रहता है। इस देश ने पृथक धर्म और राष्ट्रीयता

के आधार पर भारत विरोधी प्रचार इतना विस्तृत और उग्ररूप में अपनाया कि मदान्धता में तीन बार भारत से टकराचुका है। यह ठीक है तीन बार ही उसने अपना सिर फोड़ा है परन्तु भारत ने फिर भी उसकी चोटों को सहलाने में ही अपने कर्तव्य का पालन समझा है। १९४७ से कश्मीर का एक तिहाई उसके अधिकार में है तो अभी तक उस के पास ही है। १९६५ में युद्धविराम रेखाको लद्दाख क्षेत्र में भारत ने महानबलिदान से अपने हित में किया था परन्तु ताशकन्द समझोते की बलिवेदी पर अपने हितों का बलिदान कर दिया और जीते हुए इलाके एकदम वापिस कर दिये। १९७१ में पुनः उग्रवादी धर्मान्धता का पागलपन उसपर स्वार हुआ और इस बार उसने मुस्लिमेतर जनसंख्या की समस्या को सदा के लिये समाप्त कर अपने सहधर्मियों पर ही दमनचक्र चलाया। पूर्वी पाकिस्तान का नृशंस नर संहार संसार के इतिहास में धर्मान्धता का जलता हुआ ऐसा उदाहरण है जो यावत् चन्द्रदिवाकरौ इस्लामी राष्ट्र के नाम पर धब्बा रहेगा। अपने ही सहधर्मियों का ऐसा घोर जातिसंहार विश्व की रोमहर्षक घृणास्पद घटना है। ऐसे कलंकित पड़ोसी को प्रसन्न करने के लिये भारत विजेता की स्थिति में होते हुए भी कैसी नम्रता अपना रहा है। यह तुष्टीकरण की नीति हमें कहां ले जायेगी कुछ कहा नहीं जा सकता।

मिस्र और अर्ब राष्ट्रों की सहायता के लिये हमने अपने हितों को संशय में डाला। योरुप के देशों यथा बर्तानिया को नाराज किया परन्तु जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तो कोई अर्ब देश भारत के पक्ष में नहीं बोला। पक्ष में बोलने की बात तो दूर की रही—उलटे पाकिस्तान को सहधर्मी होने के नाते सैनिक सहायता देते रहे। पूर्वी पाकिस्तान के घोर नर संहार के विषय में किसी अर्ब देश ने आवाज तक बुलन्द नहीं की। परन्तु हम आज भी पश्चिम एशिया की समस्या के विषय में अर्बों का ही पक्ष ले रहे हैं।

ब्रह्मा अपने ही देश का अङ्ग था। १९३५ में भारत से पृथक किया गया। परन्तु उस देश ने भारत वासियों को निर्दयता से निकाल दिया, उनकी सम्पत्ति छीन ली। यही दशा लंका में भारतियों की हो रही है। अफ्रीकी देशों यूगाण्डा, केनियां, तनजानियां में भारतियों से यही नृशंस व्यवहार हो रहा है।

अपने राष्ट्र को इतना वैभवशाली, समृद्ध तथा बलवान बनाना अपेक्षित है कि संसार में कहीं भी बसने वाला भारतीय सम्मान पूर्वक रह सके। अपने

पड़ोसी मान से व्यवहार करने का आचरण अपनाय ।

अपने आदर्शवाद को सम्मानित करवाने के लिये शक्ति की आवश्यकता है हमें भारत को शक्तिशाली बनाने के लिये हर क्षेत्र में लगन उत्साह और भावना से डटना होगा ।

——:o:——

आखिर मानव शान्ति की शरण आया

भारत की उत्तर पश्चिमीय सीमा के पाकिस्तान से लगते शहर जम्मू में रहते हुए १९४७, १९६५ और १९७१ में तीन बार आक्रमण के दृश्य देखे हैं। आक्रमण से पीड़ित बेघर लोगों की भीड़, अस्थाई शिविरों में वृद्धों, बच्चों, नवयुवतियों और गर्भवतियों की शोचनीय दशा, आक्रमण का आंतक, ब्लैक आौट की विभीषिका, आकाश पर उड़ते सेबरजैट और नैटों की झड़पें, सैनिक स्थानों की ओट में निरीह जनता पर बमवर्षा, तोपों की गोलावारी से मकानों की कांपती दीवारें और खिड़कियाँ और फिर आकाश का घोर शून्य जब पक्षी भी उड़ना छोड़ देते हैं, चेहरों पर मूकरोष और सब प्रकार की कठिनाइयां झेलने की बरवस क्षमता—कैसा निर्मम और कठोर और शून्यता पूर्ण वातावरण होता है । अन्त के बाईस और चौदह दिनों के पश्चात जब आकाश पर डकोटा और मुसाफर हवाई जहाज की आवाज आने लगी थी तो कितना सुख प्रतीत हुआ था, लगा था मन से एक बोझ उतर गया है ।

अनुमान लगाना चाहिये इस भीषणता का वीतनाम में जहां ग्यारह वर्ष प्राय: प्रतिदिन यही वातावरण रहा । जहां लाखों टन बारूद बमों की वर्षा के रूप में फैंका गया । जहां हजारों लोग बमबारी और अत्याचार, अत्याचार और विवशता, भूख और बीमारी, सतत आतंक और विभीषिका में जीते रहे । जहां सिवाय जंगी ऐलानों और सूचनाओ के कोई संगीत का कार्य रेडिओ से प्रसारित नहीं हुआ । ग्यारह वर्ष कहाँ स्कूल कालेज लगे होंगे, हस्पतालों में कैसे काम चला होगा, खेती बाड़ी कैसे हुई होगी, पारिवारिक जीवन में कितना तनाव और खिचाव रहा होगा, अनुमान किया जासकता है। धन्य है उन लोगों का धैर्य, दृढ़निश्चय और सहनशक्ति ।

१९७३ का जनवरी मास वास्तव में बड़ा शुभ और खुशकिस्मत महीना है जिसमें ग्यारह साल चलता युद्ध बन्द हुआ । दोनों पक्ष सद्बुद्धि की विजय

पर बधाई के पात्र हैं। इस युद्ध ने यह सिद्धान्त तो निश्चित किया कि कोई भी पक्ष कितना ही बलशाली और सामर्थ्यवान क्यों न हो, दृढ़निश्चय और संकल्प को गिरा नहीं सकता। और कि मानव बुद्धि चाहे आसुरिक बल का कितना ही सहारा क्यों न ले आखिर उसे शान्ति के पथ पर आना ही पड़ता है। मानव मन को शान्ति का पाठ पढ़ना अनिवार्य है इसी में मानव का, विश्व का कल्याण है।

———

क्या हमारी साहित्यिक प्रतिभा कुण्ठित हो गई है ?

हिन्दी संसार के जनसंख्या के लिहाज से नम्बर दो देश भारत की राज भाषा है। प्रथम स्थान चीन देश की चीनी भाषा का है। चीन की जनसंख्या ७० करोड़ है। भारत की ५५ करोड़ से ऊपर है। भारत में प्रत्येक प्रान्त या राज्य में हिन्दी लिखने पढ़ने वाले लोग हैं। साहित्यिक संस्थाएं हैं और अहिन्दी राज्यों की रचनाओं ने कई पुरस्कार भी प्राप्त किये हैं। हिन्दी की गति को यद्यपि राजनैतिक स्तर पर तमिलनाडू और बंगाल राज्यों में रुकावट अनुभव हुई है परन्तु फिर भी हिन्दी अबाध गति से प्रगति कर रही है। और उसका प्रचार प्रसार बढ़ता जा रहा है।

संसार के देशों में अपने कई प्रतिनिधि हिन्दी के अज्ञान के कारण उपहास का पात्र बनते हैं और अपने अज्ञान से उन देशों के पठित लोगों के लिये अचम्भे का कारण बनते हैं फिर भी अब एक परिवर्तन आ रहा है। संसार के कई देशों ने संस्कृत और हिन्दी के विभाग बनाए हैं। विदेशी विश्वविद्यालयों में हिन्दी संस्कृत की (Chairs) हैं। भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश में राज्य भाषा हिन्दी है। भारत में सरकारी अंग्रेजी प्रकाशनों को छोड़ कर सर्वाधिक प्रकाशन हिन्दी में होते हैं। जगत् प्रसिद्ध राम चरितमानस, सूर सागर, पद्मावत् काम.यनी, साकेत, दीप-शिखा, लोकायत ग्रन्थ हिन्दी के ही नहीं संसार साहित्य के सुन्दरतम काव्यों में से हैं। अन्य साहित्यिक विधाओं में भी हिन्दी संसार के साहित्य में मान का स्थान रखती है। परन्तु यह एक अचम्भे की बात है कि हिन्दी की किसी भी कृति ने संसार के साहित्य में मान का स्थान नहीं पाया है।

संसार का उच्चतम साहित्यिक पुरस्कार आजतक केवल एक बार

रवीन्द्र नाथ ठाकुर की गीताञ्जलि ने प्राप्त कर भारत का मस्तक साहित्यिक संसार में ऊंचा किया था। परन्तु उसके बाद साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी क्या अन्य किसी भारतीय भाषा ने यह गौरव का स्थान प्राप्त नहीं किया। क्या इस तथ्य में साधना का अभाव झलकता है ? या इस प्रतियोगिता के लिये भारतीय साहित्यिकों को विचार ही नहीं आता ?

राष्ट्र भाषा हिन्दी की सर्वोत्तम कृतियां जिन में ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कृतियां भी आजाती हैं क्या संसार के साहित्य में उनका कोई स्थान नहीं बन सकता ?

या इस ओर अपनी किसी साहित्यिक संस्था का ध्यान ही नहीं गया ?

———

खेलों के मैदान में

ओलम्पिक खेलों में संसार के भिन्न २ राष्ट्र विश्व की खेलों की प्रतियोगिता में भाग लेते हैं। इस बार की प्रतियोगिता के परिणामों की सूची देख कर भारत के नाम का किसी भी खेल में विजेता की पंक्ति में अभाव देख कर मन को कुछ क्षोभ और विस्मय हुआ। अमेरिका, रूस, जर्मनी, जापान तथा कई इज्रायल जैसे छोटे २ देश भी स्वर्ण पदक प्राप्त करने में भारत को पीछे छोड़ गये हैं। हाकी में चली आ रही अद्वितीय योग्यता भी समाप्त हो गई है। बड़ा विचित्र लगता है कि ५५ करोड़ का देश जिस में जनबल, धनबल, बुद्धिबल और शारीरिक बल की इतनी प्रचुरता है खेलों के मैदान में क्यों फिसड्डी रह जाता है। हमारे देश के युवक बाकी देशों के युवकों के आगे क्यों शिथिल रह जाते हैं। यह भीम अर्जुन, राणा, शिवा जी, राममूर्ति, गामा, चन्दगीराम और दारासिंह, मिलखा सिंह, ध्यानसिंह और असंख्य शूरवीरों का देश विश्व प्रतियोगिता में सब से पीछे क्यों रह जाता है ? भारत सरकार खेलों पर कितना खर्च करती है फिर क्या बात है कि हम इस क्षेत्र में क्यों कुछ कर नहीं पाते ? मल्लयुद्ध में हमारे हिन्दकेसरी रूमी और ईरानी पहलवानों से क्यों मात खाजाते हैं ? ५५ करोड़ के देश में क्या एक हजार व्यक्ति सारे देशीय स्तर पर हम ऐसा चुन कर नहीं निकाल सकते जो किसी भी खेल में अजेय हों ? इस के कारणों की खोज की जाये तो पता लगेगा कि हमारे स्कूलों कालिजों में जहाँ कि नवयुवक अपने मस्तिष्क के विकास का समय पाते हैं वहां सामूहिक रूप से

शारीरिक विकास की गति प्रायः स्तब्ध सी हो गई है। हमारे आज तक के स्कूल कालेज केवल पढ़ाई के 'कोठे' बन गये हैं। जहां सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने शारीरिक कार्यक्रमों का स्थान ले लिया है। और सांस्कृतिक कार्यक्रम केवल नाटक, संगीत और वाक् प्रतियोगिता ही रह गये हैं। हमारी सरकार स्कूल कालेज चलाती है तो उसमें खेलों के मैदानों की व्यवस्था क्यों नहीं रखती ?

खेलों के अभाव में विद्यार्थी अपनी शक्ति और ओज का प्रदर्शन हड़ताल करने, उपद्रव करने और चरित्र पतन की बातों में करते हैं। इस ओर अपने शिक्षा मन्त्रालय का ध्यान क्यों नहीं जाता ?

प्राइवेट स्कूलों और कालजो को सरकार ग्रांट देती है, आर्थिक सहायता देती है। मेरे विचार में ऐसे स्कूलों और कालिजों की आर्थिक सहायता बन्द कर देनी चाहिये जिनके साथ खेलों के मैदान और खेलों की व्यवस्था न हो। खेलों में केवल हाकी क्रिकेट, फुटबाल, वालीबाल ही नहीं, कबड्डी, खोखो, रस्सा-कशी जिम्नास्टक और मल्लयुद्ध भी सम्मिलित होने चाहिए। ऐसे देशज खेलों में व्यय कम और शारीरिक व्यायाम खूब होता है। मिडल और मैट्रिक तक खेल अनिवार्य किये जाने चाहिए।

खेलों के मैदानों में केवल शारीरिक साधना ही नहीं अपितु मानसिक सन्तुलन और Sportsman ship की भावना पनपती है। अंग्रेज नैल्सन ने कहा था कि Battle of Waterloo was won at the fields of Eton and Harrow. "वाटर्लू का युद्ध उस भावना से जीता गया था जो उन्हों ने अपने कालेज़ों के खेल के मैदानों में प्राप्त की थी।"

आज के हमारे नवयुवक अपनी शारीरिक शक्ति का उपयोग या दुरुपयोग अन्य हेय बातों में करते हैं। यह सारे राष्ट्र की क्षति है। भारत सरकार को शिक्षामन्त्रालय के साथ ही Sports की Ministry भी स्थापित करनी चाहिए। ताकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे नवयुवकों का पदार्पण हो जो स्वस्थ शरीर, स्वस्थ हृदय और स्वस्थ मस्तिष्क के स्वामी हों। जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने देश का मस्तक उज्ज्वल कर सकें।



बधाई

ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी जम्मू कश्मीर की ओर से निम्नलिखित कृतियों पर १९७२ के पुरस्कार घोषित किये गये हैं। हम इन उदीयमान साहित्यकारों तथा कलाकारों को बधाई देते हैं :

१ डोगरी

श्री नृसिंहदेव जम्वाल 'कोरज' द्वितीय पुरस्कार ७००) रुपये

२ हिन्दी

श्री मोहन निराश 'कृष्ण मेरा पर्याय' ,, ,, ,,

३ कश्मीरी

१. श्री गुलाममुहम्मद गमगीन 'रेह ता सेह' ,, ,, ,,

२. स्वर्गीय तनहा अनसारी 'फुर्रत' ,, ,, ,,

४ पञ्जाबी

श्री दीदार सिंह 'पगडण्डियां दे भुलेखे' प्रथम १०००) ,,

५ उर्दू

१. श्री कमाल एहमद सिद्दीकी बयाजेगालिब तखलीकी जायजे ,, ,, ,,

२. स्वर्गीय एन. एल. कौल तालिब 'जौहरे आइना' द्वितीय ७००) ,,

नाटक

१ डोगरी

श्री नृसिंहदेव जम्वाल वीर सिपाही द्वितीय ३००) ,,

२ लद्दाखी

श्री गेशे इशे तुन्दुप स्तर जी जून मिशेस ,, ,, ,,

३ उर्दू

अशफाक एहमद 'आलाशे महफिल ,, ,, ,,

—श्यामलाल शर्मा

———

आवश्यकता है :—

राष्ट्रीय एकीकरण के लिये एक पृथक सचिवालय की

—एस. राम कृष्णन
अनु०—श्यामलाल शर्मा

लोकसभा और विधान सभाओं के वर्तमान चुनावों ने निम्नलिखित परिणाम स्पष्ट कर दिये हैं। इन्हों ने :—

१. भारतीय जनता के हृदयों में कांग्रेस को पुन: उसी प्रकार प्रतिष्ठित कर दिया है जैसा कभी त्रिमूर्ति के समय अर्थात् गान्धी, नेहरू और पटेल के के युग में हुआ करता था।

२. शासन के हाथों में पहले से अधिक सत्ता दे कर उसको पुन: नवस्फूर्ति प्रदान की है। केवल राज काज चलाने की स्थिति से उठाकर प्रभुसत्ता से शासन करने योग्य बन दिया है।

३. सार्व देशिक भावना की पुन: स्थापना की है। भाषायी राष्ट्रवाद जात-पात सम्बन्धी और साम्प्रदायिक राजनीति को निन्दनीय तथा अशोभनीय बना दिया है।

इतिहास तो शासक वर्ग की नेतागिरी को उनके आश्वासनों से नहीं उन के कार्यपरिणामों के मापदण्ड से जांचेगा। एक दूरदर्शी और विवेकी इतिहासज्ञ के लिये यह कोई महत्व की बात नहीं कि शासक वर्ग ने चुनावों में विजय कितनी भारी प्राप्त की या कि शासन के पास प्रभुसत्ता कितनी अधिक मात्रा में आगई है। इतिहास तो अपना निर्णय इस आधार पर देगा कि असीमित

प्रभुसत्ता का सुनहरी अवसर प्राप्त करके भी लखूखा जनता के जीवन और रहन-सहन के स्तर का उद्धार करने के लिये इस शक्ति का कैसे उपयोग किया गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों और उद्देश्यों की रूपरेखा ७ अप्रैल १९७२ को लोकसभा में पेश की गई थी। उसमें गरीबी हटाने के कार्यक्रम हैं, बेकारी हटाने के प्रोग्राम हैं, अधिक उत्पादन की योजनाएं हैं। कीमतों के नियन्त्रण की बात है और औद्योगिक सम्बन्धों के सुधार की चर्चा है।

इन प्रशंसनीय उद्देश्यों की योजना राष्ट्रीय-संगठन को मजबूत किये बिना वैसी ही है जैसे रेत की बुन्याद पर महल तैयार करना।

ऐसा प्रयास एक दम निरर्थक और व्यर्थ होगा।

राष्ट्रीय एकता में दिग्भ्रान्ति

स्वतन्त्रता प्राप्ति से आज तक हमारी राष्ट्रीय एकता कितनी दृढ़ हुई है? यह सोच कर दुःख होता है। हमें इस लज्जास्पद तथ्य को स्वीकार करना चाहिये कि विदेशी आक्रमण की उत्तेजना के समय को छोड़ कर हमारी राष्ट्रीय एकता बड़ी क्षीण सिद्ध हुई है। विशेषतया जब से भाषा के आधार पर भिन्न २ राज्यों का निर्माण हुआ है।

३ जून १९६४ को पण्डित जवाहर लाल नेहरू जी ने मुख्य मन्त्रियों के नाम एक पत्र लिखा था। पण्डित जी भाषायी राज्यों के निर्माण के पक्ष में नहीं थे और न ही उनके निर्माण से खुश थे। उन्हों ने उस पत्र में चेतावनी दी थी—

"१९५५ में राज्यों के पुनर्निर्माण की रिपोर्ट छपने के उपरान्त एक बड़ी भयंकर और विघटनकारी प्रवृत्ति पनपने लगी है और वह प्रान्तीय (अपनी) भाषा का मोह है।"

अभी वर्तमान में २ फर्वरी १९७२ को कोचीन में भारतीय विद्याभवन केरल के भवन का शिलान्यास करते हुए हमारे पूज्य राष्ट्रपति जी ने बड़े दृढ़ शब्दों में कहा था:—

"मैं कई बार स्तम्भित हो कर सोचने लगता हूं कि भारतवर्ष को भाषा-वार राज्यों में बाण्ट कर हमने कहां तक बुद्धिमत्ता का प्रमाण दिया है। हमने

तो आशा की थी कि इससे शासन में अधिक एकात्मता आयेगी, लोगों में भ्रातृ-भाव के बन्धन अधिक दृढ़ होंगे। परन्तु भाषावाद के कुछ उत्साहियों और समर्थकों ने ऐसा वातावरण निर्माण कर दिया है और उसके ऐसे परिणाम निकल रहे हैं जिन्हें प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। जिन से मस्तक ऊंचा नहीं होता।"

स्वार्थपरायण व्यक्तियों, स्वार्थ जीवी राजनीतिज्ञों सिद्धान्तहीन दलों, और सत्ता लोलुप गुटों को छोड़ कर बाकी सब भारत वासी दिवंगत प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू और राष्ट्रपति गिरी जी ने जिन आतंकों और आशंकाओं की ओर संकेत किया है, से सहमत हैं। स्वार्थ परायण और सत्ता-लोलुप लोगों ने इस भाषायी राष्ट्रवाद को अपनी स्वार्थसिद्धि का आधार बना लिया है। कुछदिन हुए ९ अप्रैल १९७२ को मानों इन्हीं शंकाओं को प्रमाणित करते हुए तामिलनाडू के मुख्य मन्त्री श्री करुणानिधि ने द्रविड मुनेत्र कडघम की चिगलेपुर जिले की कांफ्रेंस में घोषणा की—"यद्यपि प्रान्तीय स्वतन्त्रता की मांग अभी केवल तामिलनाडू तक ही सीमित है परन्तु वह दिन दूर नहीं जब यह मांग प्रत्येक राज्य से बुलन्द होगी।

इस से एक दिन पहले जिला कांफ्रेंस का उद्‌घाटन करते हुए द्रविड़ मुनेत्र कड़घम के एक वरिष्ठ विधायक ने इन्हीं शब्दों को दुहराया था—यदि केन्द्र राज्य सरकारों की यथार्थ मांगों को इसी प्रकार ठुकराता रहा तो इस का परिणाम यही होगा कि भारत के जिले जिले में मुजीवुर्रहमान पैदा हो जायेंगे। (और स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर लेंगे)।

भाषावाद के (कु) परिणाम

भाषायी आधार पर देश को विभाजित करने के क्या परिणाम सामने आये हैं :—

कइयों ने अपने भोलेपन में और मानव-प्रकृति ओर इतिहास की अनभिज्ञता के कारण सोचा था फि यह भाषावाद का मोह क्षण भंगुर और निरापद वातावरण है। परन्तु भाषावाद प्रान्त बनने के दस साल के अन्दर अन्दर ही यह भाषावाद की भावना इतने उग्र रूप में प्रकट हुई कि इसने स्वस्थ राष्ट्रीयता की भावना को पीछे धकेल दिया।

बहुत से राज्यों में भाषायी बहुमतों ने अल्पमतों के बारे में एक विशेष रवैया अपना लिया है और शासकीय वर्ग होने का अभिमान उत्पन्न कर लिया

है। दूसरों को दबाये रखना और उनकी अवहेलना करना सिद्धान्त बना लिया है।

लक्षण प्रत्यक्ष रूप में उग्रता से सामने आ रहे हैं :—यह मेरा राज्य है, प्रान्त है, जिला है, यह भावना राष्ट्रभावना को पीछे धकेल रही है।

राज्यों में सरकारी नौकरियों या राजकीय क्षेत्रों में भरती के समय अखिल भारतीय प्रतियोगिता और योग्यता को नजरन्दाज करके स्थानीय और प्रादेशिक प्रतिभा को तर्जीह देने में तनिक भी लज्जा महसूस नहीं की जाती।

यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन की परीक्षाएं प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से लीजायें मांग उठ रही है। अखिल भारतीय स्तर की नौकरियां पूरी करने के लिये प्रान्त और राज्यानुसार कोटा सिस्टम बना दिया जाये आग्रह हो रहा है। शिक्षा और प्रतिभा के क्षेत्रों में योग्यता, साधन और गवेषणा को पीछे धकेलते हुए तथा समन्वय को नजरन्दाज करते हुए संकीर्ण डरबे बनाये जा रहे हैं।

राष्ट्र की वैज्ञानिक और तकनीकी उन्नति को सन्न कर दिया जा रहा है। कई राज्यों में आवश्यकता से अधिक अनाज उपजता है परन्तु दूसरे राज्यों में भुखमरी की स्थिति को देखते हुए भी, उस अधिक अन्न को अपने प्रादेशिक गोदामों में छिपा लिया जाता है। राष्ट्रीय वीरों की स्मृति और कृति को जानबूझ कर घटिया सिद्ध किया जाता है और स्थानीय या प्रादेशिक अज्ञात या अल्पज्ञात वीरों को प्रश्रय दिया जाता है। योजनाएं बनाते समय संकीर्ण भावना को उभारा जाता है और सहकारी तथा राष्ट्रीय उद्योग की भावना को परे फैंक दिया जाता है। हर राज्य यही प्रयत्न कर रहा है कि उद्योगों की दृष्टि से वह अपने पैरों खड़ा हो जाये चाहे वे उद्योग चलाने के साधन और प्राकृत सुविधायें अपने राज्य में हों या न हों। इस प्रकार आत्म निर्भरता के नाम पर तानाशाही का निर्माण होता जा रहा है। असैम्बलियों में शासकीय और शैक्षणिक उद्देश्यों के लिये पूर्ण रूप से प्रादेशिक भाषाओं को जोर देकर माध्यम बनाया जा रहा है। इस प्रकार भाषायी पृथक्करण और भारत को टुकड़े टुकड़े करने के या अनेकशः खण्डित करनें के प्रयत्न को तोड़ चढ़ाया जा रहा है।

हमारे कई प्रान्तों में स्वतन्त्र राष्ट्र बनने की भावना जोर पकड़ रही है। अपने पड़ोसी राज्यों और केन्द्र पर से विश्वास की भावना उड़ रही है। हम एक राष्ट्र के अंग हैं, इकाइयां हैं यह भावना समाप्त हो रही है।

राष्ट्रपति जी ने इस बात को बड़ा बल देकर स्पष्ट किया था कि केन्द्र ग्रौर राज्य सांझेदार भाई बन्द हैं। एक स्थान पर बसने वाली स्वतन्त्र इकाइयां नहीं।

कुछ प्रदेशों में तो केन्द्र से विलग होने की स्पष्ट भावना दृष्टि गोचर हो रही है। हमारे कई राज्य ग्रौर तामिलनाडू स्वतन्त्र राष्ट्र ग्रौर स्वतन्त्र देश बनने के स्वप्न ले रहे हैं। कई राज्यों में नई दिल्ली में चाणक्यपुरी में जनसम्पर्क कार्यालय भी स्थापित कर लिये ग्रौर कई बार उनको यथार्थ रूप में रांजदूतावास कहा ज़ाता है।

राज्यपुर्ननिर्माण ग्रायोग द्वारा ग्रल्पमतों के विषय में की गई स्पष्ट सिफारिशें भी प्रभाव हीन ग्रौर मृगमरीचिका ही सिद्ध हुई हैं।

कई भाषायी राज्यों में ग्रल्पमतों के जितने ग्रुप हैं उतने धर्मतन्त्रात्मक राज्यों में नहीं होंगे। क्योंकि धर्मों ग्रौर मजहबों की संख्या सीमित होती है जब कि इसके मुकाबले में भाषाएं बेशुमार ग्रौर ग्रधिक संख्या में होती हैं। दूसरे भारत में एक भी राज्य या प्रदेश ऐसा नहीं है जो दूसरे राज्यों या प्रदेशों की तुलना में प्राचीन नही जिसके विषय में वहां के लोगों का यह मत नहीं कि वे पुश्तों से वहां रहते चले ग्रा रहे हैं उनकी भाषायें विशेष उनकी भाषायें हैं, ग्रौर उन प्रदेशों या प्रान्तों के निर्माण में उन्होंने रक्त पसीना बहाया हुग्रा है।

राज्यों के पुर्ननिर्माण से पहले ऐसे कई लोग जो वहां के निवासी थे, पूर्ण नागरिक थे, वे इस पुर्ननिर्माण के बाद दूसरे दर्जे के शहरी तथा ग्रनवांछित व्यक्ति बन गमे। उनको घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा 'घुसपैठिये' ग्रौर 'विदेशी' उपाधियों से पुकारा जाने लगा। इस बात का कोई ध्यान नहीं रखा गया कि वे यहां ही उत्पन्न हुए, यहां ही पल पोस कर बड़े हुए ग्रौर यहां ही उन्होंने शिक्षा दीक्षा प्राप्त की है। इस द्वेष-जनक पक्षपात को विधान सभाग्रों में ऐसे विधानों तथा प्रशासकीय ग्रादेशों ग्रौर राजकीय-संरक्षणों द्वारा-बढ़ावा दिया जा रहा है। प्रादेशिक भाषा का ज्ञान होना तथा प्रदेशका ग्रधिवासी होना ग्रनिवार्य रूप से परमावश्यक हो गया है।

पुनर्मूल्यांकन की ग्रावश्यकता

समय ग्रागया है कि इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया जाये, नये सिरे से सोचा जाये ग्रौर पुनर्मूल्यांकन किया जाये।

वह मूल्यांकन और चिन्तन इस समय होना चाहिये क्योंकि सौभाग्य से केन्द्र में और राज्यों में उन व्यक्तियों की बहुलता है जो संशयातीत रूप से देश-भक्त हैं और स्वतन्त्रता संग्राम में जिन्हों ने कन्धे से कन्धा मिला के काम किया है तथा जो इस अग्नि परीक्षा में सफल हो कर निकले हैं। कुछ समय के बाद जब राज्यों का शासन नयी पीढ़ी के हाथ आजायेगा और यह सिलसिला शुरू भी हो गया है—ऐसी नयी पीढ़ी जो भाषा की पृथकता और धर्मान्धता और कट्टरता के रंग में डूबी हुई होगी तो इस हानि की पूर्ति करना असम्भव हो जायेगा। सब से प्रथम काम यह होना चाहिये कि

१. राष्ट्रीय एकीकरण का एक पृथक सचिवालय जो सीधे प्रधान मन्त्री के अधीन हो, एक दम निर्माण किया जाना चाहिये। इस सचिवालय की सहायता के लिये एक गठित और मिली-जुली राष्ट्रीय उपसमिति स्थापित की जानी चाहिए।

२. भाषायी राज्यों का चल रहा कार्य देखने, जांचने के लिये एक उच्चायुक्त राष्ट्रीय आयोग बनाया जाना चाहिए जो इन राज्यों की कार्य-वाहियों के लाभ हानियों की जांच पड़ताल करे। इस आयोग की जांच पड़ताल के आधार पर राष्ट्र को निश्चयात्मक और सुधारवादी साधन अपनाने चाहिये जिससे लोगों में एकात्मता का भाव फैले। और यदि निष्पक्ष विचार मन्थन यह मांग करता है तो भाषायी राज्यों के वर्तमान ढांचे को हटा कर प्रशासकीय मण्डल बना देने चाहिये।

क्यों इस प्रश्न के साथ राष्ट्र की उत्तर जीविता जटिल रूप से निर्भर है इस लिये इस आयोग का प्रधान बनने के लिये भारत के राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, या आचार्य विनोबा भावे को मनाया जाना चाहिये।

३. प्रमुख राजनैतिक दलों के मान्य प्रतिनिधियों के अतिरिक्त इस आयोग के वे सदस्य भी लिये जाने चाहिये जो किसी पार्टी के सदस्य नहीं जो निर्दलीय हैं विख्यात न्यायाधीश और कानून के जानकार, शासक, साहित्यिक व्यक्ति, शिक्षा शास्त्री, अर्थशास्त्री, व्यापार और वाणिज्य मण्डल के प्रतिनिधि, सामाजिक कार्यकर्ता इत्यादि ताकि यह आयोग सब भान्ति से सच्चा राष्ट्रीय और प्रतिनिधि आयोग बने।

वर्तमान को सम्भालो, गरम लोहे पर चोट दो

ऐसी प्रवृत्तियों को एकदम रोकना है जो विघटन कारी हैं और जो एकता तथा राष्ट्रीय एकात्मता के आधार स्तम्भों को खोखला कर रही है। राष्ट्रीय एकता को राष्ट्रवाद तथा देशभक्ति की ग्रेनाइट दीवारें बना कर आने वाले खतरों से बचाना है। भाषायी अन्ध भक्ति, धार्मिक पक्षपात और संकीर्ण सम्प्रदायवाद के विषैले बीजों को उखाड़ फकना है और उनके स्थान पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के युग से पहले की जीवनप्रद शक्तियों और भारत के सब वासियों के प्रेम से बदल डालना है।

जात पात, धर्म, भाषा, प्रदेश और इसी प्रकार के एक दूसरे को पृथक करने वाले अन्दरूनी झगड़ों के कारण हमने कई बार अपनी स्वतन्त्रता को खोया है।

क्या हम फिर इतिहास की चेतावनियों और पाठों को भूल रहे हैं? नहीं तो क्या कारण है कि हम भारत के टुकड़े २ होने की बातों को कैसे सह रहे हैं? योजनाबद्ध ढंग से जो संकीर्ण घरेलू, सम्प्रदायवादी, भाषायी प्रादेशिक और धार्मिक दीवारें खड़ी की जा रही हैं हम उनकी ओर से नज़र क्यों चुरा रहे हैं?

स्वर्गीय सरदार पटेल ने भाषायी अन्धभक्तों और धार्मिक कट्टरपंथियों को 'देशभक्ति का हत्यारा' कह कर सम्बोधित किया है। ऐसे व्यक्तियों को मनमानी नहीं करने देनी चाहिये।

यदि हम न सम्भले और एकदम क्रियाशील न हुए तो स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद जिसके लिये हमारी मातृभूमि के लखूखा बेटे बेटियों ने अपना रक्त बहाया है और अपना सर्वस्व बलिदान किया है, मृगमरीचिका ही सिद्ध होंगे।

क्या हम समय की पुकार नहीं सुनेंगे?



साभार भवन जर्नल वर्ष १८, अंक १६, अप्रैल १६, १६७२, पृ. २८–३२

स्वाधीनता संग्राम और क्रान्ति वीर

—जगदीश प्रसाद द्विवेदी

पन्द्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस का दिन भारत की स्वाधीनता की शहनाई बजाते हुए आया था, उस दिन शताब्दियों से जकड़ी हुई भारत माता की पराधीनता की शृंखलायें कड़कड़ा कर टूट गई थीं और करोड़ों नर नारियों ने सीना फुला कर, हाथ उठा कर नई स्वतन्त्रता का अभिनन्दन किया था। करोड़ों कण्ठों ने गर्जन करके कहा था, "हम स्वाधीन हैं" 'हम आज़ाद हैं"। उस दिन हिमालय की आकाश को छूने वाली चोटियों ने सिर ऊंचा करके, हिन्द महासागर, कृष्णा, काबेरी गंगा और गोदावरी की लहरों ने नाच-नाच कर भारत की स्वतन्त्रता का स्वागत किया था। बड़ी कठिनता से पर्याप्त समय तक संघर्ष करने और खून पसीना एक करने के पश्चात देशभक्तों के बलिदानों ने भारत को स्वाधीन किया था। भारत की स्वतन्त्रता के संग्राम में पिताओं ने अपने पुत्रों को, माताओं ने अपने कलेजे के टुकड़ों को, बहनों ने अपने राखी-बन्द भाइयों को और पत्नियों ने अपनी मांग के सिन्दूरों को न्योछावर किया था। भारत की स्वाधीनता की ज्योति को बुझाने के लिये विदेशी साम्राज्य-वादियों ने ऐसा कौन सा अत्याचार था, जो किया नहीं। स्वतन्त्रता के मतवालों को उल्टा लटकाया गया, आग में झुलसाया गया बर्फ की सिल्लियों पर लिटाया गया, आंखों में मिर्चें भरी गईं, बेतों से खाल उधेड़ दी गई। परन्तु फिर भी उन वीरों के मुंह से "भारतमाता की जय" "वन्देमारम्" "इन्कलाब जिन्दाबाद" की सिंह गर्जना ही होती रही। "खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करतें हैं।" "सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर

कितना बाज़ुये कातिल में है" कहते हुये भारत के सैकड़ों क्रान्तिवीरों ने फांसी के फन्दों को गले से लगा लिया। स्वाधीनता संग्राम के पवित्र यज्ञ में अपने तन, मन, धन की आहुतियां देने वाले भारत के इन क्रान्तिकारियों के नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से अंकित हैं। ये महान देशभक्त मर कर भी अमर हैं। आने वाली पीढ़ियां भारत के इन सपूतों से युग युग तक प्रेरणा प्राप्त करती रहेंगी। अठारह सौ सत्तावन में वीर मंगल पाण्डे, झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, तांत्याटोपे, कुंवरसिंह जैसे देशभक्तों ने अपने लाल खून से सींचकर भारत की आज़ादी के पौधे को हरा बनाने की चेष्टा की थी। कई कारणों से स्वाधीनता की यह पहली लड़ाई सफल न हो सकी; परन्तु क्रान्ति की गुप्तगंगा की धारा भीतर ही भीतर बहती रही। आगे चलकर श्री वासुदेव, बलवन्त फड़के, चाफेकर बन्धु, वीर सावरकर, मदन लाल धींगरा, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द घोष व उनके छोटे भाई वारीन्द्र कुमार घोष उपेन्द्रबनर्जी, स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त, खुदीराम बोस, कन्हाईलाल दत्त, बाघा जतीन, राजा महेन्द्र प्रताप, श्याम जी कृष्ण वर्मा, शचीन्द्रनाथ सान्याल आदि क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति की ज्वाला को और अधिक प्रज्वलित किया, जिससे अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नीवें हिलने लगीं। खिसयानी बिल्ली गम्भा नोंचती है। बौखलाई हुई अंग्रेजी सरकार ने मनमाने अत्याचार किये। अनेक क्रान्ति वीरों को शूली पर चढ़ा दिया गया। अनेक नवयुवकों को जीवन पर्यन्त कालापानी भेज दिया गया। किन्तु इन अत्याचारों ने आग में घी का काम किया। क्रान्तिकारी समय की प्रतीक्षा करने लगे। श्री रासबिहारी बोस और बसन्त कुमार विश्वास ने देहली के चांदनी चौक में शानशौकत व तड़क भड़क के साथ हाथी के ऊपर जुलूस में निकलते हुये लार्ड हार्डिंग के ऊपर बम फेंक कर खलबली मचा दी। विशाल अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतिनिधि भारत के वायसराय पर बम फेंककर क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये और झुंझलाकर उन्होंने "हार्डिंग बम काण्ड" के सम्बन्ध में मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, भाई बालमुकुन्द और बसन्तकुमार विश्वास को फांसी पर चढ़ा दिया। हनुमन्त सहाय व बलराज भल्ला को सात सात साल की कालापनी की सज़ा हुई। मित्रों के विशेष आग्रह करने पर रासबिहारी बोस जापान चले गये और वहां से क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाने लगे। उन्होंने वहां "न्यू एशिया" नाम का समाचारपत्र निकाला और "इण्डियन इण्डिपेण्डेन्स लीग" बनाई। कालान्तर में जब नेता जी सुभाषचन्द्र

बोस ने "आज़ाद हिन्द फौज़" का संगठन किया तो रासबिहारी बोस ने उनकी सब तरह से सहायता की।

इन्हीं दिनों में पंजाब में लाला लाजपतराय, सरदार अजीतसिंह, भाई परमानन्द, महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक, दक्षिण भारत में सुब्रह्मण्यम भारती आदि देशभक्तों ने स्वतन्त्रता के युद्ध में नया जीवन डाला। विदेशों में भी भारतीय क्रान्ति के आन्दोलन का संगठन किया गया और लाला हरदयाल के जोशीले क्रान्ति-भाषणों व लेखों ने योरोप और अमेरिका में तहलका मचा दिया। अमेरिका व कैनाडा में गये हुये पंजाबी क्रान्तिकारियों ने एक क्रान्तिकारी संगठन स्थापित किया जिसका नाम "गदर पार्टी" रक्खा गया। इस गदर पार्टी के अध्यक्ष बाबा सोहन सिंह, उपाध्यक्ष बाबा केशर सिंह, मन्त्री लाला हरदयाल और कोषाध्यक्ष पण्डित काशीराम चुने गये। १९१३ ईसवी में गदर पार्टी की ओर से "गदर" नाम का समाचार पत्र निकाला जाने लगा। अपने प्रथम अंक में ही "गदर पत्र" ने प्रकाशित किया—"हमारे पत्र का नाम है गदर (क्रान्ति), हमारा कार्य है गदर, यह गदर कहां होगा ? भारत में, कब होगा ? कुछ सालों में, क्यों होगा ? क्योंकि भारत की जनता ब्रिटिश राज्य के अत्याचारों को झेलते झेलते उकता चुकी है और अब वह आगे उसे झेल नहीं सकती।" एक विशेष महत्वपूर्ण बात यह थी, कि "गदर पार्टी" का दृष्टिकोण राष्ट्रीय होते हुये भी अन्तर्राष्ट्रीय था। गदर पार्टी के सदस्यों को यह आदेश था कि संसार के किसी भी कोने में स्वाधीनता के लिये संग्राम हो, तो वे उस में भाग लें। इसके साथ ही "गदर पार्टी" में धर्म निरपेक्षता का भी पूरा पालन होता था। जर्मनी की सहायता से "गदर पार्टी" ने भारत को स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न किया था। किन्तु "प्रथम विश्व युद्ध" में जर्मनी के हार जाने के कारण, यह लक्ष्य पूरा न हो सका। १९१६ ईसवी में बमों, शस्त्रास्त्रों व क्रान्तिकारियों से भरे हुये कई जहाज़ अमेरिका से भारत में क्रान्ति करने के लिये भेजे गये। परन्तु उनकी सूचना मिल जाने से ब्रिटिश सेना ने उन जहाज़ों पर अधिकार कर लिया और अनेक देशभक्त शहीद हो गये।

१९१९ ईसवी में अमृतसर के जलियांवाला बाग में सैकड़ों निहत्थे भारतीयों को "माइकेल ओडायर" ने बड़ी क्रूरता और नृशंसता के साथ गोलियों की बौछार कराकर मौत के घाट उतार दिया। इस घटना से समस्त भारत में क्रान्तिकारियों का खून खौलने लगा। काश्मीर से कन्याकुमारी और पेशावर से आसाम तक स्थान स्थान पर अंग्रेजों पर बम फेंकने या गोली चलने की

घटनायें होने लगीं। सारा देश जाग उठा। जलसे और जुलूसों में जनता के हृदय की आवाज़ मुखरित होने लगी "नहीं रहनी, नहीं रहनी, यह ज़ालिम सरकार नहीं रहनी।" क्रान्तिकारी सरदार ऊधमसिंह ने इंगलैण्ड तक "माइकेल ओडायर" का पीछा नहीं छोड़ा, और लन्दन के "कैक्सटन हॉल" में गोलियों से उसे भून कर जलियांवाला बाग में किये गये अत्याचार का बदला चुकाया। फांसी के फन्दे को गले से लगाते हुये, मुस्कराते हुये स० ऊधमसिंह ने कहा था कि आज मैं बड़ी शान्ति और प्रसन्नता के साथ मर रहा हूँ क्योंकि मैंने अपने देशवासियों पर ज़ुल्म करने वाले से बदला ले लिया है।

क्रान्तिकारियों को अपना संगठन दृढ़ करने, जनता में प्रचार करने बम बनाने. पिस्तौल रिवाल्वर इत्यादि खरीदने के लिये धन की आवश्यकता होती थी। इसके लिये उन्हें अंग्रेजी सरकार के खजानों को भी लूटना पड़ता था। ९ अगस्त १९२५ ईसवी को लखनऊ के पास काकोरी नामक स्थान पर श्री रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला खां, राजेन्द्र लाहिड़ी, चन्द्रशेखर आजाद, शचीन्द्रनाथ बख्शी, मुकन्दी लाल, केशव चक्रवर्ती, मुरारी लाल, बनवारीलाल और मन्मथ नाथ गुप्त इन दस नवयुवक क्रान्तिकारियों ने रेलवे ट्रेन रोक कर अंग्रेजी खजाना लूटकर अंग्रेजी शासन के मुंह पर जोरदार थप्पड़ मारा। बिहार व बंगाल में कई अंग्रेजों को गोली मार दी गई। परन्तु लाहौर में तो ठीक पुलिस स्टेशन के सामने ही १७ सितम्बर १९२८ ई० को पुलिस सुपरिण्टेन्डेण्ट सौण्डर्स को गोली से उड़ा दिया गया। सौण्डर्स को स० भगतसिंह ने मारा था और चन्द्रशेखर आज़ाद आदि उनके साथ थे। सौण्डर्स वगैरह अंग्रेज पुलिस अफसरों की लाठियों की मार के कारण जिस दिन पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी की मृत्यु हुई थी। उसी दिन स० भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद धन्वन्तरी आदि क्रान्तिकारियों ने इस अत्याचार का बदला लेने का संकल्प किया था। उत्तर भारत में चन्द्रशेखर आज़ाद, स० भगतसिंह, धन्वन्तरी भगवती चरण, दामोदर स्वरूप सेठ, भगवान दास माहौर, यशपाल, कैलाशपति, सुखदेव, राजगुरु, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, "अज्ञय", वैशम्पायन, जयदेव कपूर, शिव वर्मा आदि क्रान्तिकारियों ने मिलकर "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोशिएसन" बनाई। इसका उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्यवाद को हटा कर भारत में समाजवादी शासन की स्थापना करना था। यह विचारणीय है कि इन नवयुवक क्रान्तिकारियों ने अन्य राजनैतिक दलों से बीसियों साल पहले अपने संगठन का लक्ष्य समाजवाद घोषित किया था। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन मुट्ठी भर, निर्भीक, साहसी क्रान्तिकारियों ने

किस प्रकार साधनों के अभाव में महान अंग्रजी साम्राज्य से टक्कर लेकर उस की नींवें हिला दी थीं। स० भगत सिंह ने जनता में राजनैतिक चेतना जागृत करने के लिये देहली के एसेम्बली भवन में बम फेंक कर अपने आप को गिरफ्तार करा दिया। उस समय जो जल्से हुये, जुलूस निकाले गये उनसे पता चलता है कि जनता के हृदय में इन नवयुवक क्रान्तिकारियों के लिये कितनी श्रद्धा और सम्मान की भावना थी। चन्द्रशेखर आज़ाद अपने अदम्य साहस व पराक्रम तथा कुशाग्र बुद्धि के कारण उत्तर भारत के क्रान्तिकारियों के नेता बन गये थे। बचपन से ही उन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सत्याग्रह और जुलूसों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। जब वह बालक ही थे उन्हें सत्याग्रहों में भाग लेने के अभियोग में अंग्रेज जज की अदालत में पेश किया गया। जज ने उनसे पूछा तुम्हारा नाम ? उत्तर मिला आज़ाद। पिता का नाम ? स्वाधीन। रहने का स्थान ? भारत। क्रोधित होकर जज ने उन्हें ग्यारह बेतों की सज़ा दी। कहते हैं कि हर बेंत के साथ आज़ाद "वन्देमातरम्" की गर्जना करते थे। चतुर और फुरतीले होने से आज़ाद अंग्रेज पुलिस की पकड़ में नहीं आये। वह गुरिल्ला युद्ध के लिये उत्तर भारत के क्रान्तिकारियों का संगठन करते रहे। पं० जवाहर लाल जी नेहरू के साथ बातचीत करते हुये चन्द्रशेखर आज़ाद ने अपना दृष्टिकोण बताया था कि "हम लोग आतंकवादी नहीं हैं, लेकिन इस में यकीन नहीं रखते कि शान्ति और अहिंसा के तरीकों से ही हिन्दुस्तान को आज़ादी मिल सकती है, आगे कभी हथियारों के साथ लड़ाई का मौका भी आ सकता है।" सत्ताईस फरवरी उन्नीस सौ इकतीस को अल्फ्रेड पार्क इलाहाबाद में पुलिस के साथ बड़ी वीरता के साथ लड़ते हुये चन्द्रशेखर आज़ाद शहीद हुये। उनके अचूक निशाने और वीरता की प्रशंसा उस समय यू० पी० के अंग्रेज डी० आई० जी० पुलिस ने मुक्त कण्ठ से की थी। जब चन्द्रशेखर आज़ाद की पिस्तौल की गोलियां समाप्त हो गईं तो उन्होंने शेष बची हुई एक गोली स्वयं अपनी कनपटी में मार ली और अपने को स्वतन्त्रता की बलिवेदि पर उत्सर्ग कर दिया।

पंजाब के क्रान्तिकारी दल को सुसंगठित व सुव्यवस्थित करने में धन्वन्तरी जी ने महत्वपूर्ण भाग लिया था। वह जम्मू के रहने वाले थे। भगतसिंह, धन्वन्तरी, भगवती चरण आदि के प्रयत्नों से ही क्रांतिकारी पार्टी का लक्ष्य "समाजवाद" निर्धारित किया गया था। धन्वन्तरी जी ने पंजाब में क्रांतिकारी पार्टी के संगठन में ही उल्लेखनीय कार्य नहीं किया अपितु खानबहादुर

अब्दुल अजीज़ पुसिल सुपरिण्टेण्डेण्ट जैसे अंग्रेज एजेण्टों को भी गोलियों का निशाना बनाया। चन्द्रशेखर आज़ाद के साथ मिलकर धन्वन्तरी जी ने स० भगतसिंह को जेल से छुड़ाने की कई योजनायें बनाई थीं, जो कई कारणों से सफल न हो सकीं। धन्वन्तरी जी को देहली में धोखे से पुलिस ने पकड़ा और उन्हें जेलों में अनेक प्रकार के कष्ट दिये गए। पश्चात अंग्रेज जजों ने उन्हें समस्त जीवन के लिए काला पानी भेज दिया। नेता जी सुभाषचंद्र बोस का वास्तविक स्वरूप एक क्रांतिकारी का ही था कांग्रेस अध्यक्ष के तौर पर भी वह गर्म दल और नवयुवकों के हृदय सम्राट थे। द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों में वह अंग्रेजी सरकार की आंखों में धूल झोंक कर अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी पहुँचे। वहां हिटलर से मिल कर उन्हों ने "आज़ाद हिन्द फौज" की स्थापना के सम्बंध में विचार विमर्श किया और बाद में जापान व बर्मा जाकर आज़ाद हिंद सरकार और आज़ाद हिंद फौज बनाई। "आज़ाद हिंद फौज" के लिए जनता के हृदय में असीम प्यार था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात स्वयं पण्डित नेहरू जी ने वकीलों का परिधान पहन कर लाल किले में आज़ाद हिंद फौज की वकालत की थी।

१९४२ का "भारत छोड़ो आन्दोलन" यद्यपि महात्मा गांधी जी ने अहिंसक रूप में प्रारम्भ किया था किन्तु जयप्रकाश नारायण, डा० राम मनोहर लोहिया, अरुणा आसफअली आदि नेताओं ने इसे क्रांतिकारी आन्दोलन बना दिया। भारत माता के सपूत इन वीर क्रांतिकारियों ने जनता के हृदय में स्वराज्य की जो ज्वाला धधकाई, उससे जनता के अतिरिक्त भारतीय सेना भी अछूती न रही। १९४५ ई० में भारतीय जल सेना ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जिस की मध्यस्थता बाद में लौहपुरुष सरदार पटेल ने की थी।

क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भारतीय नारियों ने जो प्रशंसनीय योगदान दिया, उसकी महत्ता स्मरणीय है। १८५७ ई० में झांसी की रानी लक्ष्मी बाई ने जिस वीरता, साहस रणनीति व पराक्रम के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया था, उसकी प्रशंसा सर ह्यू रोज़ जैसे अंग्रेज जनरलों ने भी की थी। श्रीमती एनी बेसेण्ट, बहिन निवेदिता, मीरा बहन आदि महिलाओं ने भारत के स्वतन्त्रता युद्ध में उल्लेखनीय भाग लिया। आज़ाद और भगतसिंह के क्रान्तिकारी दल सुशीला बहन, दुर्गा भाभी, प्रकाशवती आदि महिलायें सक्रिय भाग लेती थीं। "सौण्डर्स" को गोली मार देने के पश्चात् लाहौर से भगतसिंह आदि का बाहर निकलना अत्यन्त कठिन था, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर पुलिस का कड़ा पहरा था। पुलिस और सी० आई० डी० की निगाहें एक दाढ़ी मूंछ साफे वाले

नौजवान सिख को बड़ी बेचैनी से ढूंढ रही थी। इस दशा में दुर्गा भाभी ने भगतसिंह की सहायता की। दाढ़ी और पगड़ी हटाकर सूट, बूट, फेल्ट कैप और टाई लगाकर भगतसिंह ने अपनी वेश भूषा बदली। दुर्गा भाभी का छोटा बच्चा उन्होंने गोद में लिया। सुन्दर साड़ी में सज-धज कर बड़ी निर्भीकता और साहस के साथ दुर्गा जी और भगतसिंह रेलवे स्टेशन पर खड़े अंग्रेज पुलिस अफसरों व सी० आई० डी० वालों की आंखों में धूल झोंक कर निकल गये। यदि दुर्गा भाभी इस प्रकार अपनी और अपने बच्चे की जान हथेली पर रखकर साहस न दिखातीं, तो भगतसिंह का लाहौर में पकड़ा जाना निश्चित था।

पं० जवाहर लाल जी की माता "स्वरूपरानी जी" तथा उनकी पत्नी श्रीमती कमला नेहरू राजसी ठाठ बाट में पली हुई थीं। लेकिन पं० मोतीलाल जी व जवाहरलाल जी के जेलों में चले जाने पर उन्होंने अंग्रेजी सरकार का नमक कानून भंग किया और महिलाओं का भव्य जुलूस निकाला। अबला कही जाने वाली नारियों के नारों से सारा नगर और आकाश गूँज उठे। पुलिस ने जुलूस भंग करने का प्रयास किया और किसी भी प्रकार अपने प्रयत्न में सफल न होने पर बड़ी निर्दयता के साथ स्त्रियों पर उन्होंने लाठीचार्ज किया। इस घटना का वर्णन करते हुये पं० जवाहरलाल जी नेहरू लिखते हैं कि महिलाओं पर किये गये लाठी प्रहार का समाचार जब हमें जेल में मिला तो मुझे पुलिस के अत्याचार पर गुस्सा आगया। स्त्रियों के आन्दोलन की बात सुनकर जहां मुझे गर्व हुआ, वहां मैं यह भी सोचने लगा कि मेरी बूढ़ी माता और बीमार पत्नी ने किस तरह लाठियों और डण्डों की मार बर्दाशत की होगी। अगर उस वक्त मैं वहां होता, तो क्या करता? उन महिलाओं के ऊपर होते हुये लाठी प्रहारों को देखकर मैं अहिंसा का कहां तक पालन कर सकता।

इसी प्रकार श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित, डा० सुशीला नैयर, राजकुमारी अमृतकौर आदि महिलाओं ने भी भारत के स्वतन्त्रता युद्ध में सराहनीय और महत्वपूर्ण भाग लेकर भारत की नारियों का मस्तक ऊंचा किया है।

इतिहास साक्षी है कि भारत के स्वाधीनता संग्राम में क्रान्तिकारियों ने अपने तन, मन, धन को न्योछावर करने, डगर डगर की ठोकरें खाकर, सूखी रोटियां चबाकर, जी जान की बाज़ी लगाकर और अपने प्राणों को हथेली पर

रखकर, साधनों और धन अभाव में भी विदेशी शासन से टक्कर लेकर अंग्रेज साम्राज्यवादियों की नाक में दम कर दिया था। भारत माता के इन सपूतों की वीरता, साहस और पराक्रम प्रशंसनीय हैं, अनुकरनीय हैं। इन नरपुँगवों के बलिदान की जितनी भी सराहना की जाये, थोड़ी है। भारत की जनता इन वीर "शहीदों" को कभी भुला नहीं सकती :—

"शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा।"



पचीस वर्ष बाद

—विश्वनाथ खजूरिया

फांसी के तख्ते पर चढ़ने से पहले सरदार भगतसिंह ने महाक्रान्ति का नारा—"इन्कलाब जिन्दा बाद' किसके लिए लगाया था ?

या रामप्रसाद बिसमिल ने उभरती जवानी में वह रास्ता क्यों पकड़ा था जो मौत की घाटी में खो गया था ? फांसी पर झूलने से पहले किसके निमित्त उसके अन्दर से यह बोल फूट निकले थे :—

."सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है......"

कहते हैं लंका पति रावण ने घोर तप किया और फिर अपने सीस काट काट कर, उनकी आहुतियां देने लगा, भगवान शंकर को प्रसन्न करने और 'अमर पद' पाने के लिए; पर प्रात: स्मरणीय नेता जी, भगतसिंह, बिसमिल, अशफाक उल्ला और सरदार ऊधमसिंह (जिन्होंने इंगलैण्ड जाकर पापी जनरल डायर को मार कर जलयां वाला बाग के हत्याकांड का बदला लिया था) और असंख्य गुमनाम शहीदों को 'सफरोशी की तमन्ना' किसके निमित्त थी ? कौन सा वरदान पाने के लिए थी ?

वारे जाएं उन बलिदानियों पर जो मौत को गले लगाते हैं—कठिनाइयों का जो हंस हंसकर स्वागत करते है :

"......रह-रवे राहे मुहब्बत रह ना जाना राह में,
लज्ज़ते सहरानवर्दी दूरी-ए मंजिल में है।"

उन शहीदों के बारे में यह भी सुनने में आया है कि अपने सिदक की

परीक्षा देने के लिए वह अपना बायां बाजू जलते हुए बरनर पर उस वक्त तक रखे रहते थे, जब तक कि उनकी चमड़ी जल न जाती।

———

(२)

कहते हैं कि सरदार भगतसिंह काल कोठड़ी में बंद थे, तो उनकी बहिन उनसे मिलने आई। भाई को देखते ही उसकी आंखों में आंसू भर आए। अमर शहीद ने मुंह फेर कर कहा "......छिः, मेरी बहिन और इतनी कायर ! मैं ऐसी रोंदू लड़की से बात करना नहीं चाहता......"

"......पर, वीर जी, यह आंसू तो उस लड़की के लिए हैं, जिसके साथ आप की शादी होने वाली है......वह बिचारी......।" बहिन ने दुःखी होकर कहा था।

"......परन्तु अब तो मैं 'फांसी' नाम की लड़की को वरने जा रहा हूं......।" उस महान क्रान्तिकारी ने हंस कर कहा।

———

(३)

शहीद अशफाक उल्ला की माता जेल में उनसे मिलने आई। उसने अपने बेटे को समझाने की बहुत कोशिश की, पर आज़ादी के उस परवाने की ज़ुबान पर एक ही बात थी :—

"विदेशी सरकार के आगे झुकना बुज़दिली है, देशद्रोह है। इन फिरंगियों के आगे नाक रगड़ने के बाद मैं अपने साथियों तथा देशवासियों को मुंह कैसे दिखा सकूंगा।"

अम्मां ने घर की बिगड़ती हुई हालत का वास्ता दिया तो अशफाक के मुंह से यह पद निकला था :—

"हमने जब मौत की वादी में कदम रक्खा था,
दूर तक यादे-ए वतन आई थी समझाने को।"

कहते हैं कि यह शब्द सुन कर काल कोठड़ी के बाहर खड़े सन्तरी की आंखों में भी आंसू आ गए थे।

शायद ऐसे ही मौके के लिए किसी कवि ने लिखा था :—

"कफस* के पास दिल थामे हुए सय्याद† बैठा है।
खुदा जाने असीरे‡ गम तेरी आवाज में क्या है ?

यह बलिदान किस के लिए था ? कस्मै देवाय ?

---

(४)

महात्मा गांधी जी की चम्पारन यात्रा के बारे में डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने लिखा है :—

"......खेड़ा जिले में सूखा के कारण फसल मारी गई तो वहां के किसानों ने सरकारी लगान घटाने के बारे में सत्याग्रह करने का फैसला किया। गांधी जी साबरमती से खेड़ा चले। अप्रेल की कड़कती दुपहर में रेत आग की तरह तपी थी। गांधी जी नंगे पांव चल रहे थे। यह देख कर मैं तड़प उठा। मैंने झट से अपनी चादर गांधी जी के आगे बिछादी। पर उन्हों ने चादर पर पांव रखने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा :— "......इस गरीब देश में करोड़ों लोग इसी कड़कती धूप में, और तपती रेत पर नंगे चलते और काम धंधा करते हैं, ऐसे में मैं इस चादर पर पांव रखकर कैसे चलूं—?"

यह था—"कस्मै देवाय" का उत्तर।

---

(५)

यह सब बलिदान और कुरबानियां थीं उन करोड़ों भारत वासियों के लिए, जो विदेशी गुलामी की चक्की में पिस रहे थे। अज्ञानता, बेकारी और बीमारी के दैत्य जिन्हें निगलने के लिए चारों ओर से दौड़े चले आ रहे थे।

कभी अपना भारत अन्नपति देश था। पर यहां फिरंगियों के पांव पड़ते ही ऐसी मनहूसियत आई कि यहां के किसानों को दो जून का भरपेट भोजन मिलना मुशकिल हो गया। कभी भारत सारे संसार का आध्यात्मिक गुरु था और सोने की चिड़िया कहलाता था। पर ब्रिटिश राज की नींव पड़ते ही करोड़ों भारतवासी भूखे-नंगे रहने लगे। बेशुमार लोग हर साल बिमारियों से मरते थे, पर विदेशी सरकार को इसकी तनिक चिंता न थी। उसे चिंता थी

*पिंजरा, बंदीग्रह। †शिकारी। ‡बंदी।

इस देश से धन-दौलत लूट-समेट कर इंगलिस्तान भेजने की, ताकि वहाँ उनके भाई बन्धु 'ऐश-बहारें लूट सकें। और बड़े दुख की बात तो यह थी कि वह सरकार जनता को लूटती भी थी और दुत्कारती भी थी .—

"......You bloody blackie......you Indian dogs......"

———

(६)

भारत ने अपने लाखों नौजवानों की बलि देकर और करोड़ों रुपयों की सहायता देकर पहले विश्वयुद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को टूटने से बचाया था। बदले में अंग्रेजी सरकार ने भारत देश को जकड़ने वाली गुलामी की कड़ियां कुछ ढीली करने का वचन दिया था। पर उन्होंने बदले में दिया मार्शल-ला और रौलट ऐक्ट :—

सन् १९१९ के राष्ट्रीय त्योहार पर रौलट ऐक्ट का विरोध करने जलयां-वाला बाग में हजारों लोग जमा थे। अंग्रेज जनरल डायर के हुकम से वहां मशीनगनें नारकीय आग उगलने लगीं। देखते ही देखते लाशों और घायलों के ढेर लग गए। दुष्ट डायर ने इतने पर ही बस न की। उसने शहर में पानी और बिजली की सप्लाई बन्द कर दी। कई बाजारों और गलियों में लोगों को पेट के बल रेंग कर चलना पड़ता था। जगह-जगह टिकटिकियां लगी थीं। 'यूनियन जैक' (अंग्रेजी सरकार का झण्डा) को जो लोग सलामी देने से इन्कार करते थे उन्हें टिकटिकी में कस कर हंटर लगाए जाते थे। कहते हैं मार्शल-ला के कमांडर ने एक 'बागी' को नौ हंटर लगाने का दण्ड सुनाया। हंटर लगाने वाले गोरे ने आकर रिपोर्ट दी :—

—"सर, काले बागी ने पांच हंटर ही खाकर दम तोड़ दिया।" कप्तान ने खुशहोकर कहा :—"दैट'स आलराईट।"

'—परन्तु बाकी के चार हंटर, सर ?"

"—उस कुत्ते की लाश पर लगाए जाएं।" कप्तान गरजा।

———

(७)

इन अत्याचारों से सारा देश तड़प उठा। महात्मा गान्धी के चलाए

हुए सत्याग्रह में लाखों लोग कूद पड़े। कई सरकार भगत लोग भी इस में आ मिले।

पं० जवाहर लाल नेहरू ने, "मेरी कहानी" में लिखा है :—

"समाचार पत्रों में सत्याग्रह कमेटी की खबरें पढ़कर मुझे यूं मालूम होने लगा की हमारे दु:ख-दर्द का और विदेशी गुलामी दूर करने का कोई न कोई हल निकल ही आया है। मुझे बहुत जोश आ गया। मैं उतावला हो रहा था कि कब मैं सत्याग्रहियों में अपना नाम दर्ज कराऊं।......"

परन्तु उनके पिता पं० मोती लाल जी नेहरू पर इस नए हंगामे का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्हें जेल जाने वाली बात पसंद नहीं आई। पिता पुत्र दोनों ही उच्चकोटी के वकील थे, पर इस मामले में वह एक दूसरे को कायल न कर सके। एक तरफ इकलौते बेटे की ममता थी, तो दूसरी ओर भरपूर जवानी का जोश था, मातृ भूमि के लिए 'कुछ' करने की लगन थी।

इस कशमकश की एक झलक :—

पं० मोती लाल (अपने कमरे के फर्श पर बेचैनी से करवटें बदलते हुए) आह, काश तीस वर्ष पहले की मेरी जवानी लौट आती! मैं जवाहर के साथ कंधे के साथ कंधा मिला कर चल सकता और उसकी देशभक्ति की तड़प और लगन की थाह लगा सकता। (दरवाजे पर दस्तक) कौन है?

मुबारिक अली : मैं हूँ जी, मुबारिक अली।

मोती लाल : आइए मुन्शी जी! इस समय, रात के बारह बजे! कुशल तो है?

मुबारिक : वैसे तो अल्लाह का फज़ल है, पर पण्डित जी, आपने यह कैसी हालत बना रखी है? यह फर्श पर सोने का......?

मोती लाल : मुन्शी जी, आप का लाडला जवाहर जेल जाने की तैयारी जो कर रहा है। वहां सोने के लिए पलंग तो मिलते नहीं, मैं जांच रहा हूं कि उसे जेल में कितना कष्ट भोगना पड़ेगा।

मुबारिक : पण्डित जी, जवाहर जी को भी इस बात का बहुत दुख है कि उनकी खातिर आप को कष्ट पहुंच रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण लेना चाहें तो खिड़की खोल कर नीचे बाग में देख लें।

(खिड़की खुलती है)

अब आधी रात हो चुकी है, दस बजे से इसी तरह इधर उधर टहल रहे हैं......।"

नीचे बाग में जवाहर लाल नेहरू अपने आप से कह रहे थे—"......इस (सत्याग्रह के) मामले में पिता जी और मैं एक मत नहीं। वह मेरे लिए बड़े दुखी हैं—पर मैं मजबूर हूं—सत्याग्रह सभा ने स्वतंत्रता के लिए जो महा यज्ञ शुरू किया है, उस में मैं भी अपने हिस्से की आहुती जरूर डालूंगा—दूसरा कोई चारा नहीं......"

---

(८)

जगह जगह लोगों ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई। "स्वदेशी" का प्रचार जोरों पर था। घर घर चरखे चलने लगे। लंकाशायर और मानचैस्टर के कपड़े के कारखाने बंद होने लगे। गांधी जी ने कहा था: "जब कम से कम पांच लाख चरखे प्रतिदिन नियम पूर्वक चलने लगेंगे तो विदेशी सरकार यहां से कूच कर जाएगी।"

सरकारी स्कूलों और कचहरियों का बहिष्कार होने लगा। अंग्रेजी ला एण्ड आर्डर की लोगों ने धज्जियां उड़ा दीं। लोगों के सिरों पर लाठियां और गोलियां बरसती थीं, तो उनके मुखसे 'वंदे मातरम्' और 'महात्मा गांधी की जय' निकलता था। देशभर की जेलें सत्याग्रहियों से भर गईं संसार भर की आंखें भारत की इस 'सत्य-अहिंसा' की अनुपम लड़ाई की ओर लगी हुई थीं।

सरकार ने 'फूट डालो और राज करो' की विषैली नीति अपनाई। स्वतन्त्रता की लड़ाई समुद्र की तरंगों की तरह कभी उभरती कभी डूबती १९४२ तक आ पहुँची।

महात्मा गांधी जी ने जब देखा कि विदेशी सरकार भारत को स्वतंत्रता देने में टाल मटोल करती चली जा रही है, तो उन्होंने मजबूर हो कर "भारत छोड़ों" का चमत्कारी नारा लगाया। उन्हों ने कहा: "मैंने कांग्रेस को जिन्दगी या मौत की बाजी पर लगा दिया है......।"

भारत की जनता जैसे पहले ही से तैयार बैठी थी। उसने भी "करो या मरो" का प्रण धारण किया। उधर भारत सरकार ने अगले हो

रोज सारे नेता कैद कर लिए। और जनता पर अपना दमन चक्र पूरी शक्ति से घुमा दिया। शायद वह समझती थी कि, "अब चूके तो गए।"

कई शहरों और गावों में गोली चली। कई स्थानों पर हवाई हमले भी किये गये। चोरों और डाकुओं को छुट्टी देकर देशभक्तों को जेलों में ठोंसा गया।

जनता ने बिना किसी नेता के ही इन अत्याचारों का डटकर मुकाबला किया। कई पुलिस थाने, रेलवे स्टेशन और सरकारी इमारतें जलाई गईं, रेल पटरियां उखाड़ दी गईं। एक बार फिर—"सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है……" की गूंज गलियों, बाजारों में सुनाई देने लगी।

छोटे छोटे बच्चों ने "वानर सेना" की टोलियां बना कर पुलिस वालों को परेशान किया। वह आंधी के झोंके की तरह एक ओर से अचानक आ निकलते। दो चार चुस्त नारे लगाते और बगूले की तरह निकल जाते। पुलिस वाले हाथ मलते रह जाते।

पं० जवाहर लाल नेहरू ने जेल से छूटने पर कहा था :—

"……१९४२ के जन आंदोलन पर मुझे बड़ा गर्व है……जनता ने बड़ी बहादुरी के साथ विदेशी सरकार के अत्याचारों का मुकाबिला किया है……।"

और उधर भारत की पूर्वी सीमा पर नेता जी सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिंद फौज ने उद्‌घोष किया : "दिल्ली चलो।"

"भारत छोड़ो" और "दिल्ली चलो", से भारत सरकार का सिंहासन डोलने लगा। लाठी, गोली और फूट डालो की नीति उपनिवेशवाद का दामन न थाम सकी। इसलिए उन्होंने इस उपमहाद्वीप पर से अपनी सत्ता का जाल उठा लेने का फैसला कर लिया, पर साथ ही देश का बटवारा भी कर दिया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक बार कहा था :–

"……अंग्रेज लोग एक न एक दिन भारत से चले जाएंगे, पर उस दिन भारत में साम्प्रदायिकता की दलदल फैली होगी।……खून की नदियां बह रही होंगी……अकाल, भुखमरी और रोग सोग फैला होगा……।"

गुरुदेव युगद्रष्टा थे।

---

(९)

आखिर गुलामी की लम्बी काली रात का अंत हुआ। असंख्य शहीदों की कुर्बानियां रंग लाईं।

१५ अगस्त, ४७ की प्रभात स्वतन्त्रता का शुभ संदेश लाई। लाल किले पर स्वतन्त्र भारत का 'तिरंगा' चढ़ाते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा :– "अनगिनत कुर्बानियां देकर हम ने आज़ादी हासिल की है।......इस आज़ादी की रक्षा के लिये हमें और भी कुर्बानियां देनी पड़ेंगी......हम सब को मिलकर गरीबी, बीमारी और बेकारी को दूर करना है......आज़ादी का फल हम सब का सांझा है .....।"

पच्चीस वर्ष बीत जाने पर हम देखते हैं कि देश ने उन्नति अवश्य की है, पर तसवीर की दूसरी ओर एक ऐसे आदमी का चित्र दिखाई देता है जो कंकाल मात्र रह गया है––उसकी स्त्री किसी असाध्यरोग से पीड़ित है, उसके बच्चे भूख से बिलबिला रहे हैं.........। एक सिसकती सी आवाज सुनाई दे रही है : 'लखपति करोड़पति बन गया है, और गरीब बिलकुल ही कंगला हो गया है। कच्चे मकान में रहने वाला झोंपड़े में जा बसा है––झोंपड़े वाला फुटपाथ पर जा बैठा है और फुटपाथ वाला......?

इस लिये आज फिर वही पहला प्रश्न चिन्ह सामने आ जाता है—कस्मै देवाय ?—यह आजादी किस के लिए ??

- आया उन लोगों के लिए, जो काला धन धड़ल्ले से कमाते चले जा रहे हैं ?
- या उन लोगों के लिये, जो खाने पीने की चीजों और दवाइयों तक में मिलावट करने से नहीं चूकते ?
- या उन लोगों के लिये, जिनके द्वारा बनवाये हुये पुल और पुशते बिना वर्षा और बाढ़ के ही बह जाते हैं ?
- या उन लोगों के लिये. जो रिशवत लेना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते हैं ?
- या उन लेखक-खलीफाओं के लिये, जो साहित्य सेवा के नाम पर सब कुछ समेटते चले जा रहे और जिनके बारे में ही किसी ने लिखा था :

  "रात को पी ली और सुबह कर ली तौबा,
  रिंद के रिंद रहे हाथ से जन्नत न गई।"
- या उन विद्यार्थियों के लिए, जो हुल्लड़ बाजी या छुरे बाजी से परीक्षाएं पास करना चाहते हैं ?



धरती डोगरों की

—शिव नरेन्द्र

एक पहाड़ी गीत है डुग्गर का जिसके बोल कुछ इस प्रकार हैं—कि गोरी तुम स्वर्ग की बातें न करो और अपने देश का यश गाओ ।*

स्वर्ग किसी ने देखा हो या नहीं पर कवियों और लेखकों ने स्वर्ग की जो कल्पना की है उसका रूप अगर कहीं मिलता है तो अपने इस डुग्गर देश में ही । स्वर्ग में अगर सुन्दर मनमस्त नज़ारे हैं, अमृत के समान जल है, कल्प वृक्ष सा वृक्ष है तो अपने इस सुन्दर डोगरा देश में । ऊंची सर सब्ज़ पर्वत मालायें, देवताओं की भान्ति अल्हड़, भोले और कर्म शील मानव अपसराओं से भी सुन्दर संगमरमर की मूरतें लजाने वाली नारें, गीतों के मीठे बोल, वीरों की गाथाएं, गोरियों के दिलकश बोल और ऊंची बांसुरी की सुरीली तान जिन को डोगरी में 'भाख' कहा जाता है । यह सब स्वर्ग ही नहीं स्वर्ग से भी कहीं बढ़ कर है ।

इस धरती पर एक तरफ साम्बा की कण्डी का इलाका है, तो दूसरी तरफ रामबन, भद्रवाह जैसी सब्ज़ पर्वत मालायें । इस धरती पर कहीं सरुईं सर, मानसर की भीलें हैं तो कहीं उधमपुर की ढक्कियां । कहीं हमीरपुर, नूरपुर की ठण्डी छाया है तो कहीं जम्मू शहर की धूप से चिलमिलाती सड़कें । डुग्गर के गावों में ठण्डे मिट्ठे पानी के चश्में जिन का जल अमृत के समान होता है जिन्हें 'बावली' कहते हैं अपने जल से शीतलता प्रदान करते हैं ।

---

*सुर्गे दी गल्ल नि ला अड़िये,
जस अपने देसै दा गा अड़िये । —किशन स्मैलपुरी

यह धरती शान्ति और अमन के पुजारियों की धरती है। यहां पर आदमी तो आदमी जानवर भी शान्ति के प्रतीक हैं। जम्मू शहर के बारे में एक कथा मशहूर है कि यहां शेर और बकरी को एक साथ एक ही घाट पर पानी पीते देख राजा जम्बू लोचन ने नगर बसा दिया। इस देश में सिर्फ शान्ति ही नहीं, अगर जरूरत पड़े तो यह अमन के पुजारी काल का रूप भी बन जाते हैं। किसी की हिम्मत है जो इस भारत मां की तरफ बुरी नज़र से देखे, डोगरों में इतना दम है कि बुरी नज़र से देखने वालों की आंखें निकाल लें। दोस्तों के लिए अगर यह डुग्गर वासी दोस्त से भी कहीं बड़ कर हैं तो दुश्मनों के लिए यह चण्डी का रूप।

दूर सुदूर चीन की धरती तक डोगरों की वीरता के कारनामें गूंज रहे हैं। जनरल ज़ोरावर सिंह और शेरे डुग्गर महाराजा गुलाब सिंह की वीरता कौन नहीं जानता (दूसरे महायुद्ध के समय भी डोगरा वीरों ने सात समुद्र पार तक अपनी धाक जमा दी थी। कहीं भी वीरों की चर्चा चलती है तो डोगरों का नाम सब से पहले आता है।

यह स्वर्ग रूप डुग्गर देश तपस्वियों और आन मान के लिए जान देने वालों की धरती है। मृत्यु के अधिपति शिव भोले की यह भूमि और सृष्टि की पालक मां वैष्णों की धरती। यहीं पर कैलाश पर्वत पै शंकर भोले तपस्या कर रहे हैं। जोरों जुल्मों के खिलाफ क्रान्ति उठाने वालों में बाबा जित्तो का नाम नहीं भुलाया जा सकता। लाल क्रान्ति, हां खून के रंग से धरती लाल हो उठी थी और जित्तो के बलिदान ने लोगों को यह बतला दिया था कि ज़ोरो जुल्म के खिलाफ मरमिट जाना भी डोगरे भली भान्ति जानते हैं।

दूर हम्मीरपुर, नूरपुर, कांगड़ा से लेकर हिमाचल के चम्बा से चलते हुए भद्रवाह, डोडा और फिर उधमपुर की ढक्कियां उतर कर जम्मू का मैदान आ जाता है। फिर साम्बा से होते हुए कठुए से पार पठानकोट तक इस डुग्गर देश की सीमा हैं। इसके एक तरफ कश्यप मुनि की धरती कश्मीर है तो दूसरी तरफ पांच दरियाओं का देश पंजाब। इधर हिमाचल है तो उधर चीन की सीमा।

डुग्गर की धरती के ऊपर और नीचे सब पदार्थ हैं। एक तरफ पाडर के स्थान पर इन्दरपुरी की मणियां यानी नीलम की खानें हैं। तो दूसरी तरफ समय की सब से बड़ी मांग पैट्रोल के भण्डार, सुरुइंसर के स्थान पर मिलते हैं। कालाकोट में कोयले जैसा जरूरी खनिज निकलता है। तो चनैनी में

बिजली के भण्डार हैं जो डुग्गर की धरती को कारखानों से मालामाल करने वाले हैं। फलों से लदा हुआ यह देश है, सेब, नाशपाती, आम और शायद ही दुनिया का कोई फूल हो जो यहां नहीं होता। सब प्रकार के रस यहां पर हैं। ज्ञान और साहित्य के भण्डार इस डुग्गर देश में भरे हुए हैं। डोगरों की अपनी भाषा और साहित्य है। हर पत्थर, हर झरने का एक गीत है। एक कहानी है। कवियों और लेखकों में एक से एक बढ़ कर एक है। दत्तू, हरदत्त और रामधन जैसे साहित्य प्रेमियों की सींची हुई, क्यारी में एक से एक बढ़कर साहित्य सुगन्घी बिखेरने वाले फूल खिले हैं। चंचलो, कुंजू की प्रेम गाथा और उनका किस्सा प्रेम काव्यों में अपनी सानी नहीं रखता। डुग्गर में अगर महलों में रहने वाले साहित्यकार लेखक और कवि हैं तो गांव का किसान भी साहित्य और ज्ञान का उतना ही प्रेमी है।

वीरों, रन्धीरों, सब्ज पर्वत मालाओं, झर-झर करते झरनों, सुन्दर बांकी गोरियों और अल्हड़ भोले मानवों के इस देश के गुण बखानने लगे और यश गाने लगें तो कलम न रुके। मैं बस सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ :—

"सुर्गैं दी गल्ल नि ला अड़िये, जस अपने देसैं दा गा अड़िये।"



कहो कैसी तबीयत है ?

—डा० अयूब 'प्रेमी'

आज देश के बहुत बड़े उपन्यासकार की शादी की सालगिरह थी। नगर के सभी बड़े बड़े साहित्यकार, फिल्म अभिनेता और अभिनेत्रियों को आमंत्रित किया गया था। कोठी कुछ देर पहले जगमगा रही थी। अब भी चहल-पहल और हंगामे का दृश्य चेतना के बाह्य धरातल पर पैर अड़ाने की कोशिश कर रहा था। खाली कुर्सियों पर रूपहली हंसी और गुलाबी मुस्कानें चिपकाये चेहरे झलक झलक जाते थे। उन चहरों की विभिन्न मुद्राएं और भंगिमाएं अभी तक साफ साफ सुनाई दे रही थीं। शराब के दौर के समय मोटे पतले हास व्यंग्य का लुंजपुंज हिस्सा कुमकुमों की रोशनी के साथ बेहूदे रूप में बार बार झूल जाता था। ड्राइंगरूम में अब सन्नाटा कस गया है। मैं भाभी के हाथ को रोक रहा हूँ—"बस भाभी बस......अब न पिलाइये। देखिये तो ये बिलकुल निढ़ाल हो चुके हैं.........इन्हें सम्भालिए।"

"अजी छोड़िये भी। सुबह आठ बजे तक ये खुद सम्भल जायेंगे। उन्होंने बड़ी लापरवाही के साथ कहते हुए सोफे पर लिटा दिया, मुझे दो साल पहले की एक रात याद आती है। दिल को न जाने कैसा कैसा लगने लगता है.........। मैंने स्लीपिंग सूट से अपने जिस्म को लपेटते हुए पूछा था—"भई बताओ मैं कहां सोऊं ?"

तब उसने कहा था—"यार इतनी जल्दी सोने की क्या पड़ी हुई है ? अभी तो तुम से ढेर सारी बातें करनी हैं। तब कहीं सोने का सवाल उठेगा।"

"मेरे यार तुम्हें मालूम नहीं कि मैं कितना थका हुआ हूं।" और मैं

जमुहाई लेते हुए उसके ऊपर गिरते गिरते जैसे तैसे बचा था, क्योंकि पास की कुर्सी मेरे हाथों में आगई थी। वह पलंग पर लेटा हुआ अपने नये उपन्यास की हस्तलिपि को उलट रहा था। वह उसका बैडरूम था और उस कमरे में सिर्फ दो ही बिस्तर थे—पति-पत्नी के। उसने मेरी हालत पर हंसी का हल्का सा ठहाका मारते हुए स्टूल पर रखी हुई बोतल से अपने गिलास में उंडेल ली थी। मेरे गिलास में डालने को ही था कि मैंने उसका हाथ थाम लिया।

ब्लेक नाइट मुझे किक कर चुकी थी फिर भी मैं अपने होश में रहने की कोशिश कर रहा था। खाने के बाद तो व्हिस्की आदमी को पीने लगती है। अतः ज्यादा पीना एक तरह से असभ्यता के दायरे में चला जाना है। हां, वह भी खूब रंगीन रात थी जबकि एक पब्लिशर को साथी साहित्यकारों के छोटे मित्रवर्ग ने पार्टी दी थी। होटल में बैठे सभी नवलेखक अपने पीने की डींग मार रहे थे। पब्लिशर बड़ा घुटा पिटा और सीजंड आदमी था। मंटो के मित्रों में से एक। वह इन मियांमिट्ठुओं की बातें सुन कर मुस्करा रहा था। व्हिस्की के पैग शुरू हो गये। साथ में कबाब, प्याज़ और चीज़ पकौड़े फलों में खीरा और सेब। मेरे कान में पब्लिशर महोदय ने धीरे से कहा था—"खीरा ज़्यादा खाते चलो।" मैंने वैसा ही किया था। एक नये कवि दुबले पतले जिन के कंधे पर सलीब का वज़न लदा होने के कारण व्यक्तित्व झुक कर दोहरा हो गया था। दूसरे नये कवि तथा कहानीकार जिन के जीवन में अर्थ रीत गया था। तीसरे नये आलोचक जो द्वीप की तरह कट कर अकेलेपन का अनुभव कर रहे थे। एक साहित्यकार और थे जिनके चेहरे की मुद्राएं ऊब की ध्वनि पैदा कर रही थीं जो अस्वीकृति और विद्रोह के अवतार थे। ये सज्जन हर बार खाने वाले लोगों की ओर हिकारत की नज़र से देखते जा रहे थे। साथ ही रोब चिपका रहे थे कि अगर कोई उनको निचोड़े तो जिस्म से केवल व्हिस्की की धारें छूटने लगेंगी। हम सभी ने बराबर बराबर पैग लिए थे। लेकिन आखरी पैग ने उन्हीं साहब को सब से पहले ऐसा किक किया कि वे खाने की टेबुल पर कै करने लगे थे। टेबुल पर सर टिका कर बठ गये। बार बार एक हिचकी और उसका पीछा करती हुई कै की पिचकारी जो उनके सूट को भिगोती हुई गन्दा किये दे रही थी। देखते देखते दूसरे नव लेखक भी आउट हो गये थे। पार्टी में जो वीभत्स रूप पैदा हो गया था तो भूख भी हिरण हो गई थी। किस का खाना और कैसा खाना। नीचे होटल के पास ही टैक्सी खड़ी थी। लेकिन आउट होने वाले नवलेखक नं० २ मित्र को घर पहुँचाने के लिए बस का प्रबन्ध करते फिर रहे थे। टैक्सी वाला पूछ रहा था—

"जनाब बस किस लिए चाहिए ?" इसी समय नवलेखक नं० ३ भारी सी गाली देते हुए मारने दौड़े ही थे कि पास ही गन्दे नाले में छपाक की आवाज़ हुई। अब तो वे मानो झेलम पार कर रहे थे, क्योंकि उन्हें नं० २ की पत्नी को दौड़ कर लाना था और मित्र की जिन्दा लाश को सौंप देना था। नं० २ अब सड़क पर लेटते हुए नज़र आ रहे थे। दो नवलेखक बहस कर रहे थे कि सार्त्र उन का बाप था। इसके लिए तर्क चल रहे थे लेकिन लंगड़े तर्क। तीसरे ने इस बहस में थोड़ी सी दिलसस्पी दिखाई और हंसते हुए निष्कर्ष खींचते हुए कहने कगा—

"अरे यार क्यों झगड़ रहे हो ? सार्त्र तुम्हारा बाप नहीं तुम्हारा बाप तो मैं हूं।"

इतने में ही स्टूल से गिलास गिरा था और कमरे में उसकी आवाज़ मानो दर्द बिखेरती हुई गूंज गई थी। मैंने चौंक कर उसे देखा था। वह अभी तक होश में था। जिस प्रकार वह उपन्यासकार के रूप में मौलिक बना रहा उसी तरह इस समय भी उसकी सत्ता में मौलिकता थी। ऐसी सुन्दर मौलिकता जो आकर्षक ही नहीं बल्कि जाल में फंसाने वाली भी। वैसे चेतना हमेशा एक मौलिक वस्तु ही है। उसने मेरा हाथ पकड़ कर अपनी पत्नी के बिस्तर पर बिठा लिया। मैंने कहा था—"भई यह ठीक नहीं। मैं भाभी के बिस्तर पर नहीं सोऊंगा। वे जब दिल्ली से लौट कर आयेंगी तो बिस्तर की दुर्दशा देख कर दु:खी होंगी।" उसने आग्रह के स्वर में कहा था—"तुम्हें मेरे पास यहीं सोना होगा। सोते सोते मुझे बातें करने की आदत जो है।" मैंने गुदगुदे बिस्तर में घुसते हुए एक अजीब सा रोमांच अनुभव किया था। मेरे जिस्म की एक २ रग अनुभव कर रही थी जैसे गुलाब की पंखड़ियों से बने हुये लिहाफ में न केवल इत्र की सुगन्ध है बल्कि भाभी के जिस्म की गंध भी बसी हुई है। गंध जो नाक के रन्ध्रों में मादकता का झोंका उठा रही थी। मेरे मुख से निकल पड़ा था—"भाभी का बिस्तर तो बहुत गर्म है।"

उसने एक दीर्घ नि:श्वास छोड़ते हुए कहा था—"गर्म तो था लेकिन अब मेरे लिये उसमें वह गर्मी नहीं रही।" थोड़ी देर सूना रहने के बाद फिर वह अपने को एक्सपोज़ करने लगा था—"दिल्ली में रहते हुये तुम्हारी भाभी का यही गर्म बिस्तर मुझे गुनाह के लिये विवश कर देता था। उस समय मुझे होश नहीं रहता था। तुम्हारी भाभी भी तो राजेश को इतना पिला देती,

इतना पिला देती कि ग्राखिरकार हम दोनों उसके जिस्म को जैसे तैसे उठाते ग्रौर लाश की तरह बिस्तर पर पटक देते। उसे रात भर जकड़ती हुई बेहोशी घेरे रहती। तुम्हारी भाभी मेरा हाथ पकड़ कर ले जाती ग्रौर मैं विवश लाचार सा मन्त्रमुग्ध उसके गर्म बिस्तर में घुस जाता.........। लेकिन यार ग्रब लगता है जैसे मैंने बहुत बड़ी भूल की है। एक ऐसा गुनाह किया है कि चाहे राजेश मुझे माफ भी कर दे लेकिन ईश्वर मुझे कभी भी माफ नहीं करेगा।'

"लेकिन तुम तो प्रोग्रेसिव हो, यह ईश्वर कहां से ग्रा टपका ?" मैं प्रश्न कर तो गया लेकिन मुझे बाद में खुद ऐसा लगा जैसे यहां इस समय इस प्रश्न की ग्रावश्यकता न थी। थोड़ी देर के बाद वह बहुत गम्भीरता के साथ कहने लगा था—

"मैं बहुत दूर तक सोचता गया हूँ ग्रौर लगा है कि चेतना के दो धरातल हैं—एक कामनाग्रों वाला धरातल जो वासना, उद्वेग, सौन्दर्यानुभूति, ज्ञान ग्रौर ग्रानन्द शाक ग्रादि को उगाता है। दूसरा तलवर्ती धरातल जो यथार्थ व्यक्तित्व की सृष्टि करते हुए विश्वमयता पदा करता है। इसी तलवर्ती धरातल पर मुझे लगता है कि जो कुछ है, वह है ग्रौर वह जो कुछ है; श्रेष्ठतम है, जो प्रत्येक दिन की मौत से ग्रमृत पाता रहता है। इसी को मैं ईश्वर कहता हूँ ग्रौर जब मैं ज्यादा पी लेता हूं तभी यह कम्बख्त ईश्वर मुझे दबोच लेता है। सतह पर नहीं तल मे ग्रौर ग्रतल में जहां मेरी पुकार स्वयं मेरी पत्नी भी नहीं सुन सकती। कोई नहीं सुन सकता। लेकिन इस दबोचे जाने पर भी मैं दूसरे दिन के लिये उससे थोड़ा सा ग्रमृत चुरा ही लेता हूँ जिसे पीकर मैं मर मर कर ही जी रहा हूं।"

"वास्तव में यह मर मर कर ही जी रहा है। तभी तो........."

"क्या कहा ग्रापने ?"

"कुछ नहीं भाभी।"

"कुछ कहा तो था ग्रापने। शायद यही कहा होगा कि ग्राज कल की ग्रौरतें भी कैसी होती हैं ?"

मेरे मुंह से निकल पड़ा—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।" मेरे उत्तर को सुनकर उन का चेहरा खिल उठा। इधर मेरे भीतर एक ग्राग की सी लपट उठी ग्रौर पिघलती गर्मी के रूप में बहती सी मालूम हुई। मैं सोफे पर बैठ

गया। मुझे इस अद्वैत एकांत में घबराहट सी होने लगी। मैंने गिलास उठाया और पीने को ही था कि भाभी ने छीन लिया मैं देखता रह गया तब तक भाभी ने बोतल और गिलास दोनों मोज़ेक के फर्श पर दे मारे। अब मैं एक औरत का भयानक सा चित्र देख रहा था। कितना अन्तर्विरोध था भाभी के व्यवहार में। मानो वह पूरी तरह से बदला लेना चाहिती थीं—

शराब से ?

नहीं।

उपन्यासकार पति से ?

नहीं।

फिर क्या अपने से ?

शायद।

मुझे उनकी दीवानगी पर तरस आगया। मुझे रोशनी पीले नायलोन के दुपट्टे की तरह हिलती हुई मालूम हुई। दूसरे क्षण लगा कि भाभी ने मेरा हाथ पकड़ा है और मुझे सहारा देते हुये बैडरूम की तरफ ले जा रही है।...... अब कमरे की चौखट के पार......। भाभी का......नरम नरम......गर्म गर्म महकता बिस्तर......। मैं लेट गया। फिर ऐसा लगा कि सामने भाभी ने बैठ कर खूब पिया और फिर स्विच आफ। अंधेरा छा गया। वे मेरे पास मुझ से लिपट कर रोने लगीं। उनके सुबकने के बुलबुले ध्वनिबिन्दु बन कर मेरे कानों में घुसते हुये फूट फूट जाते। भावा वेश में 'राजेश' 'राजेश' की फुस-फुसाहट अब वे बड़बड़ा रही थीं—"प्यारे राजेश तुम दूसरी शादी कर लो...... मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। मैंने तुम्हें धोखा दिया है। मैं कुलटा हूं—पापिन हूं। मुझे सज़ा दो......मेरा गला घौंट दो" और और सचमुच मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने मेरे हाथ उठाकर अपने गले पर रख दिये हैं। मैं सोच रहा था कि मित्रघात करने वाले हर आदमी के लिए यही ठीक सज़ा है।

अचानक मेरे हाथ गर्दन के चारों ओर संडासी की तरह कड़ें होते गये... कड़े होते गये जब तक कि दिमाग में एक झटका सा लगा और जकड़ता हुआ सन्नाटा छा गया।............

सुबह जब होश आया तो ड्राईंगरूम के सोफे पर बैठी मेरे सामने भाभी मुस्कराती हुई पूछ रही थीं—"कहो कैसी तबीयत है ?"

भाभी सचमुच उस समय दो चेहरे वाली नागिन की तरह लगी थीं मुझे।



आज़ादी के २५ कदम

प्रधान मन्त्रियों का आह्वान

—देवी सिंह नरूका

आज से २५ वर्ष पूर्व १५ अगस्त सन्, १९४७ को हमारा देश २०० वर्ष की विदेशी दासता से मुक्त हुआ। स्वतन्त्रता संग्राम में न जाने कितने लोगों ने अपनी जानें निछावर कर दीं जिससे उस समय की भावी संतानें अर्थात् हम लोग एक स्वतन्त्र देश में सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई तथा राष्ट्र के नवनिर्माण का कार्य उन्होंने स्वर्गीय श्री जवाहर लाल नेहरू को सौंप दिया जिन्होंने १७ वर्ष तक अनेक कठिनाइयों और उतरा-चढ़ाव के बावजूद देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया। उनके पश्चात् स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री तथा शास्त्री जी के बाद राष्ट्र के जहाज के कैप्टिन का पद प्रियदर्शिनी देवी इंदिरा गांधी को सौंपा गया।

भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्र का सर्वोच्च व्यक्ति यद्यपि राष्ट्रपति हैं किन्तु वास्तविक शक्ति प्रधानमन्त्री के हाथों में होती है। समय समय पर प्रधान मन्त्री सरकार की नीति के बारे में जनता को अवगत कराते रहते हैं। इन सब में महत्वपूर्ण अवसर १५ अगस्त का है जब प्रधान मन्त्री ऐतिहासिक लालकिले से भाषण करते हुए समस्त राष्ट्र को कदम से कदम मिला कर प्रगति के पथ पर बढ़ने का आह्वान करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में प्रधान मन्त्रियों के स्वतन्त्रता दिवस के भाषणों के अंश प्रस्तुत हैं जो समय समय भारतवासियों को मंजिल तक पहुँचने के लिये प्रेरणा देते रहे हैं :—

"आज एक शुभ और मुबारक दिन है। जो स्वप्न हमने वर्षों से देखा था, वह कुछ हमारी आंखों के सामने आ गया। चीजें हमारे कब्जे में आईं। दिल हमारा खुश होता है कि एक मंजिल पर हम पहुँचे। यह हम जानते हैं कि हमारा सफर खतम नहीं हुआ अभी बहुत मंजिलें बाकी हैं। लेकिन, फिर भी, एक बड़ी मंजिल हमने पार की और यह बात तय हो गई कि हिन्दुस्तान के ऊपर कोई गैर हकूमत अब नहीं रहेगी।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९४७)

"हमें खुद बड़ा होना पड़ेगा। हमें खुद उस रास्ते पर चलना पड़ेगा, जो महात्मा गांधी ने हमें दिखाया था। क्या चीज है हिन्दुस्तान? हिन्दुस्तान एक बहुत जबरदस्त चीज है जो कि हजारों वर्ष पुरानी है। लेकिन आखिर में हिन्दुस्तान आज क्या है, सिवाय इसके कि जो आप हैं और मैं हूं और जो लाखों और करोड़ों आदमी हैं जो इस मुल्क में बसते हैं। अगर हम भले हैं, अगर हम मजबूत हैं तो हिन्दुस्तान मजबूत है और अगर हम कमजोर हैं तो हिन्दुस्तान कमजोर है। हिन्दुस्तान हम से कोई अलग चीज नहीं है, हम हिन्दुस्तान के एक छोटे टुकड़े हैं। हम उसकी औलाद हैं और इसी के साथ याद रखिये कि हम जो आज सोचते हैं और जो कार्रवाई करते हैं, उससे कल का हिन्दुस्तान बनता है। बड़ी जिम्मेदारी आप हम पर और हिन्दुस्तान के रहने वालों पर है।"

(जवाहर लाल नेहरू—सन् १९४८)

आज कल हमारे यहां एक विधान परिषद है, हमारी काँस्टीट्यूएण्ट असेम्बली है, जो आइन्दा भारत का विधान और आईन बना रही है। चन्द महीनों में हमारा देश एक नई पोशाक, नये कपड़े पहनेगा, एक रिपब्लिक का नया जामा पहनेगा और एक नया विधान आयेगा। ठीक है, उसको उचित बनाना है। लेकिन आखिर में देश कायदे और कानूनों से और जो कागज पर लिखा जाये उससे नहीं बनता। देश बनता है, देश की जनता की दिलेरी और हिम्मत से और काम करने की शक्ति से। कानूनदां लोग कानून लिखते जाते हैं और विधान बनाने वाले विधान बनाते हैं। लेकिन असल में इतिहास लिखा जाता है, बहादुर आदमियों के हाथों से, दिलों से और दिमागों से। सवाल यह है कि आप में और हम में कितनी हिम्मत है, इस भारत के इतिहास को, अपने खून से, अपने आंसुओं से, अपनी मेहनत और अपने दिमागों से लिखने की। अगर हम में वह है तो विधान भी ठीक होगा और सब ठीक होगा। अगर हम

में वह ताकत और शक्ति नहीं, हम कमजोर हैं, छोटी छोटी बातों में पड़ते हैं और आपस में सहयोग नहीं करते तो हम निकम्मे लोग हैं। तब फिर क्या विधान हमको बचायेगा या कागज पर लिखा और कोई कानून।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९४९)

"तो ये बड़े-बड़े सवाल हमारे सामने हैं। शरणार्थियों का सवाल, बंगाल के शरणार्थियों का सवाल, खाने का, बड़े-बड़े और सवाल, इन सब के पीछे असल सवाल यानी मुल्क की आर्थिक उन्नति का सवाल। कैसे हम इन्हें हल करगे? हम और आप मिल कर ही कर सकते हैं। न अलग से आप कर सकते हैं, न अलग से गवर्नमेंट कर सकती है और मैं आप से कहता हूं आप को हक है कि गवर्नमेंट के जो ऐब हों, कमजोरियां हों उनकी तरफ आप तवज्जोह दिलाइये, उनकी आप निन्दा कीजिये और और वक्त आने पर आप गवर्नमेंट को निकाल दीजिये और बदलिए। आप को पूरा हक है, मुबारक हो आपको यह करना। लेकिन यह बात आप याद रखिये कि आप को दो बातों को मिलाना नहीं चाहिए, धोखा नहीं खाना चाहिए कि आप गवर्नमैंट की नीति की निंदा करने में या एतराज करने में कोई ऐसा काम करें, जिससे हिन्दुस्तान की जड़ कमजोर होती हो, बुनियाद कमजोर होती हो। इस का ख्याल आप को रखना है क्योंकि आम तौर से लोग इस बात का ख्याल नहीं रखते हैं। गवर्नमैंट आती है और जाती है। हम लोग आते हैं और जाते हैं। हम लोगों के भी काम करने के जमाने धीरे धीरे खतम होते जाते हैं।

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९५०)

अभी कुछ दिनों में एक बड़ा चुनाव होने वाला है, और आपके पास तरह २ की बातें रखी जायेंगी, कही जाएंगी। मैं उसमें नहीं जाता और न मुनासिब है कि जाऊं सिवाय इसके कि इस मौके पर मैं उम्मीद करता हूँ कि आप सारे मुल्क के लोग शांति से, सहयोग से और अकल से काम लेंगे। कोई झगड़ा फसाद नहीं, कोई झूठ फरेब नहीं क्योंकि चुनाव के वक्त पर झूठ फरेब बहुत चलता है और धोखे बाजी भी, उसमें आप नहीं पड़ेंगे न औरों को पड़ने देंगे। जो चुनाव यहां होने वाला है, दुनियां के इतिहास में एक जबरदस्त चीज है क्योंकि आज कल की दुनियां में किसी देश में प्रजातंत्रवादी चुनाव में १७-१८ करोड़ लोग नहीं पड़ते, तो इतनी बड़ी बात है। एक बड़ा इम्तिहान हमारे लिए है। इस इम्तिहान में अगर हम कामयाब हुए तो हमारी शक्ति बहुत बढ़ेगी,

नहीं हुए तो हम कुछ कमजोर होंगे और ऐसे मौके पर कमजोर होंगे जबकि काफी खतरे हैं।

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९५१)

"हम एक बड़े मुल्क के रहने वाले हैं। जबर्दस्त मुल्क है, जबर्दस्त उस का इतिहास है, बड़े मुल्क के रहने वाले बड़ दिल के होने चाहिए। बड़े रास्ते पर हमें चलना है, झुक के नहीं, गलत बातों पर नहीं, चाल बाजी से नहीं। शान से हमने हिन्दुस्तान को आज़ाद किया, शान से हमें आगे बढ़ना है, शान से हमें यह जो हिन्दुस्तान की आज़ादी की मशाल है, उसको लेकर चलना है और जब हमारे हाथ कमजोर हो जाएं तो औरों को देना है, ताकि नौजवान हाथ उस को उठायें, और हम अपना काम पूरा करके चाहे खाक में मिल जायें लेकिन जब तक हाथ में जिस्म में, शरीर में ताकत और बल है उस वक्त तक ताकत को इस मुल्क को आगे बढ़ाने में, इस मुल्क के करोड़ों आदमियों की खिदमत करने में इस्तेमाल करें, काम में लाएं और जब ताकत खत्म हो जाये, तो हमारा काम भी खत्म हुआ। तब फिकर नहीं हमारा क्या होता है, और लोग आएंगे।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९५२)

"चन्द रोज हुए मैं पाकिस्तान उनकी दावत पर गया था और वहां की हुकूमत ने और वहां की जनता ने बहुत मुहब्बत से मेरा स्वागत किया। मेरे दिल पर इस का जबर्दस्त असर हुआ, खासकर जनता की मुहब्बत का। करीब वही हाल था, जैसे हिन्दुस्तान के हिस्सों में आप हमारे भाई, बहन और बच्चे मुझ से प्यार और मुहब्बत करते हैं। वही नक्शा मैंने कराची शहर में देखा, फिर मैंने महसूस किया कि आखिर मैं किस गैर मुल्क में आया? आखिर इसमें और हमारे मुल्क में कौन बड़ा फर्क है? बहुत सारे वही पुराने चेहरे, बहुत सारे पुराने दोस्त, पुराने साथी, यहां से भागे हुए बहुत सारे लोग, जिनको यहां देखा था। तस्वीर वही थी, कुछ जरा फर्क था। गरज कि मैंने महसूस नहीं किया कि मैं कोई बड़े गैर मुल्क में हूं। एक वह चीज थी, वह तस्वीर थी और फिर थोड़े दिन बाद मुमकिन है, गलत फहमी से लोगों को जोश आए और तस्वीर बदले।"

(जवाहरलाल नेहरू—१९५३)

"अगर हिन्दुस्तान को पूरे तौर से आज़ाद होना है, तो हमें बहुत कुछ बातें करनी हैं। हिन्दुस्तान को अपने उन करोड़ों आदमियों की बेरोजगारी दूर करनी है, गरीबी दूर करनी है और याद रखिये हमारे बीच जो दीवारें हैं,

मजहब के नाम से, जाति के नाम से या किसी प्रान्त, सूबे या प्रदेश के नाम से, उन्हें भी दूर करना है और जो एक दूसरे के खिलाफ हमें जोश चढ़ता है, उससे जाहिर होता है कि हमारे दिल और दिमाग पूरे तौर से आज़ाद नहीं हुए हैं, चाहे ऊपर से नक्शा कितना ही बदल जाये। इसी तरह की कई बातों से हमारी तंग ख्याली जाहिर होती है। अगर हिन्दुस्तान के किसी गांव में किसी हिन्दुस्तानी को, चाहे वह किसी भी जाति का है या अगर उसको हम चमार कहें हरिजन कहें, अगर उसको खाने पीने में, रहने चलने में कोई रुकावट है तो वह गांव अभी आजाद नहीं है, गिरा हुआ है।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९५४)

"तो फिर एक अजीब बात है कि कोई साहब हम से गोवा की निस्वत पूछे कि आप ऐसा क्यों चाहते हैं कि वह हिन्दुस्तान में मिल जाए? हिन्दुस्तान में मिलने का सवाल क्या? क्या किसी ने नक्शा नहीं देखा हिन्दुस्तान और दुनिया का? क्या किसी ने यह नहीं देखा कि वह कहां है? वह हिन्दुस्तान का एक टुकड़ा है। कौन उसे अलग कर सकता है?

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९५५)

जहां तक हमारी गवर्नमैण्ट का ताल्लुक है, वह आप की खादिम है। जब हिन्दुस्तान के लोग उसे अलग करना चाहें, वह अलग होगी। लेकिन इस तरह की बातों से, इस तरह की धमकियों से तो वह राय नहीं कायम करेगी, न करती है और न करेगी। जो लोकसभा और पार्लियामेण्ट का हुकम है, उस पर अमल होगा क्योंकि वह तमाम मुल्क का कानून होगा और वह इस तरह बदलेगा नहीं। हर एक को समझ लेना चाहिए कि लोकसभा या स्टेट्स रिआर्गेनाइजेशन बिल के बारे में जो फैसला हुआ है, वह पत्थर की लकीर है और वह उससे डर नहीं सकती, चाहे जो कुछ भी हो जाये। सीधी बात यह है। मैं जहां तक कहता था। वह बात शायद कम हो? आप मुझे इज्जत बख्शें मुझे प्रधान मन्त्री बनायें। आपने मुझे इज्जत बख्शी, लम्बी चौड़ी बातें भी कह देता हूं। लेकिन आखिर मैं एक इन्सान हूं। मैं एक बात कहूं या मेरी गवर्नमेंट एक बात कहे वह और चीज है। लेकिन जब पार्लियामेंट कोई बात कहती है, तो वह न मेरी है, न उनकी है, न आप की, वह हिन्दुस्तान की बात है और हिन्दुस्तान की बात के सामने हर एक को झुकना है।"

(जवाहरलाल नेहरू—१९५६)

"आखिर हिन्दुस्तान को कौन बढ़ायेगा ? कोई बाहर से आकर तो उसे नहीं बढ़ायेगा ? आप और हम सब मिलकर ही उसे बढ़ा सकते हैं। किसी गवर्नमेंट के हुक्म से मुल्क नहीं बढ़ते। खाली कानून से भी नहीं बढ़ते। मुल्क आगे बढ़ते हैं, कौम की ताकत से, कौम की एकता से, जुर्रत से। हमारे सामने बहुत से बच्चे बैठे हैं। मुबारक हो उनको यह दिन। मुबारक हो उनका आज़ाद हिन्द, जिसमें वह बढ़ रहे हैं और बढ़कर वे इस मुल्क की खिदमत करेंगे और मुल्क को आगे बढ़ाएंगे। इस वक्त जो बारिश हुई है वह भी आप को मुबारक हो। इस वक्त जो बारिश हुई है, इससे मुझे खुशी हुई। शायद आप में से बाज लोग जरा घबराये हों, उन्हें पानी से तर हो जाने की कुछ फिक्र हुई हो। लेकिन उस बारिश को देख कर मुझे खुशी हुई है। इस मुल्क के और हमारे आप के दिलों के सरसब्ज होने की वह एक निशानी थी।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९५७)

"गौर करने की बात है, हमारे जो नौजवान आज कल हैं, अच्छे हैं, एक जबरदस्त नजारा भविष्य का उनके सामने है। इस हिन्दुस्तान का चमकता हुआ भविष्य जिसका बोझा वे उठायेंगे। आगे चलायेंगे जिसके लिए उन्हें आजकल तैय्यार होना है, स्कूल में, कालेज में या जहां कहीं वे हों। लेकिन बाज उन में भी बहक जाते हैं, इन बड़ी बातों को भूल जाते हैं और छोटी छोटी बातों में फंसते हैं, छोटे झगड़ों में पड़ते हैं और इससे अपने को बेकार करते हैं और मुल्क की भी कोई खिदमत नहीं करते। यह हमें सोचना है, ये सवाल बड़े हैं। हमें सोचना है और समझना है कि हम किधर जा रहे हैं ? जाहिर है कि अगर इतनी हजार मुसीबतों का सामना करके हम यहां पहुँचे, जहां आज कल हैं जो किसी की धमकी से किसी की कमजोरी से यह काम तो नहीं छूटेगा, इस काम को तो जारी रखना है और हिम्मत से जारी रखना है, चाहे कितनी ही रुकावटें आएं, कितनी ही मुसीबतें आएं और हम चाहे कमजोर भी हो जायें, तो हमें अपनी इस कमजोरी को निकाल कर, पकड़ कर फेंक देना है और सिर ऊंचा करके फिर आगे बढ़ना है।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९५८)

"दूसरी बात यह है कि आइन्दा हमारा ध्येय क्या था, मकसद क्या था ? वह आर्थिक है, सामाजिक है। हिन्दुस्तान से गरीबी निकालनी है। ये सब बातें कही जाती हैं और सही हैं, लेकिन आखिर किस गज से आप इन बातों को नापेंगे ? एक गज़ गांधी जी ने हमें बताया था और हमने स्वीकार किया कि किस तरह से हिन्दुस्तान के आप लोग आगे बढ़ते हैं। खास लोग बढ़े हुए हैं। उनकी

कोई खास फिकर नहीं करनी है। वह अपनी देखभाल भी कर लेते हैं। जब जरूरत हो ऊंची आवाज से शिकायत भी कर सकते हैं, लेकिन जो आप लोग हैं, जो अक्सर खामोश लोग हैं और खासकर जो हमारे लोग गांव में रहते हैं, उन की देखभाल कौन करे ? उनको उठाए ? क्योंकि याद रखिए, दिल्ली शहर हिन्दुस्तान का और दुनिया का एक खास शहर है और आप और हम जो दिल्ली में रहते हैं वह एक माने में खुश नसीब हैं, लेकिन दिल्ली शहर हिन्दुस्तान नहीं है, हिन्दुस्तान की राजधानी है। हिन्दुस्तान तो लाखों गांवों का है और जब तक हिन्दुस्तान के यह लाखों गांव नहीं उठते, नहीं जागते, आगे नहीं बढ़ते तो दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास हिन्दुस्तान को आगे नहीं ले जायेंगे। इस लिये हमेशा हमें अपने सामने इन लाखों गांवों को रखना है। किसी तरह से वे बढ़ें, किस तरह से वे बढ़ेंगे ?"

(जवाहरलाल नेहरू—१९५९)

"जाहिर है कि हम अपने मुल्क को गिरने नहीं देंगे। वह जमाना गया, जब यह मुल्क गिर जाये और हमारे लोग इसको बर्दाश्त करें। इसलिए दूसरा ही रास्ता हमारे लिये है और वह यह कि सिर उठा कर मजबूती से कदम से कदम मिला कर हम एकता से आगे बढ़ें। इसके अलावा और कोई चारा नहीं है और जो इसके रास्ते में आये, उसको हम रास्ते से हटायें क्योंकि हमें बर्दाश्त नहीं है कि हम छोटी मोटी बातों में हिन्दुस्तान की क़िस्मत को बेच दें और खराब कर दें। लेकिन यह मेरे हाथ में तो नहीं है। आपने मुझे चन्द दिनों के लिये प्रधान मंत्री बनाया है। मैं आया हूँ, चला जाऊंगा और मुझ में हजार कमजोरियां हैं। असल में, हिन्दुस्तान की ताकत है तो हिन्दुस्तान की जनता में है, आप लोगों में है और आप ऐसे जो करोड़ों आदमी हिन्दुस्तान में हैं आये हैं। आपको इसे समझना है और आज के दिन समझना है खास तौर से कि आप का और हम सब का क्या कर्तव्य है, किस तरह से यह जो एक बेश कीमत चीज हिन्दुस्तान की आज़ादी हमारे हाथ में है, जिसके जरिये हम सारे हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ आदमियों को उठायेंगे, रख सकते हैं। कहीं अपनी कमजोरी से यह हमारे हाथ से फिसल न जाए, कहीं निकल न जाये। ये कोई चन्द अफसरों की, मन्त्रियों की, प्रधान मन्त्रियों की बातें नहीं हैं, जो मैं आप से कह रहा हूँ। यह हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमियों की, एक-एक गांव की बात है। इसलिए मैंने आप से कहा है कि हम पंचायती राज चाहते हैं। एक एक पंचायत में वहां के लोग, पंच, सरपंच तगड़े हों। वे आज़ाद हों और अपने गांव की

ग्रौर मुल्क की हिफाज़त करें। इस तरह से सारे मुल्क में लोग करें। यह बात मैं ग्रापको याद दिलाना चाहता हूं, क्योंकि कर्त्तव्य ग्राप का है मुल्क ग्राप का है। हम ने कुछ दिन खिदमत की, कभी गलत कभी सही, हां एक साफ दिल से मैंने कोशिश की, लेकिन जो काम हमने ग्रपने ग्राप बगैर मदद के उठाया, वह बड़े से बड़ा ग्रादमी नहीं उठा सकता है।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९६०)

"पंचवर्षीय योजनायें ग्राईं, एक एक योजना हमारी कौम का कदम हो गया। दो बड़े कदम उठे ग्रौर पूरे हुए ग्रब हम तीसरे के शुरू में हैं। हमें उम्मीद है, इस के खतम होने पर सारा हिन्दुस्तान काफी ग्रागे बढ़ेगा ग्रौर ग्रपनी रक्षा करने की ग्रौर ग्रपनी खुशहाली लाने की उस की ताकत बहुत बढ़ जाएगी, क्योंकि हर कौम का पहला काम होता है ग्रपनी ग्राज़ादी की रक्षा करना। बद किस्मती से हमारे सामने भी खतरे ग्राते हैं, ग्राये हैं, हमारी सरहदों पर, सीमाग्रों पर तो हमें हमेशा तैय्यार रहना है ग्रपने देश की हिफाजत करनी है।"

(जवाहर लाल नेहरू—१९६१)

"सारी दुनिया बदल रही है। इंसान बदल रहा है। नई नई ताकतें ग्राती हैं ग्रौर ग्रगर हम इसको न समझें तथा ग्रपनी भलाई, दुनियां की भलाई के लिए इन का इस्तेमाल न करें तो हम पिछड़ जायेंगे। हम खाली ऐंठते ग्रौर लम्बी लम्बी बातें करते रहे तो दुनिया ग्रागे बढ़ जायेगी। इसलिए हमें समझना है कि हम एक बदलती हुई दुनिया में, बदलते हुये हिन्दुस्तान में रहते हैं ग्रौर ग्रगर हम उसके साथ तेजी से नहीं बदलते तो हम पीछे रह जायेंगे। हमें बदलना है, हमें विज्ञान को बढ़ाना है, हमें मेहनत करके इस मुल्क में नये तरीके निकालने हैं, कारखाने बनाने हैं, खासकर खेती की तरक्की करनी है क्योंकि वह हिन्दुस्तान की जड़ है। यहां के किसान उसकी पीठ हैं या ज़ड़, ग्राप चाहे जो कहें। वे ग्राजकल के ग्रौजारों का इस्तेमाल करते हैं ग्रौर ग्राजकल के हल चलाते हैं। यह नहीं होना चाहिये कि वे हजार वर्ष पुराने ग्रौजार चला रहे हों। दुनिया बदल गई ग्रौर खेती एक हजार वर्ष पुरानी रही तो हम पिछड़ जायेंगे। हमें बदलना है, हम बदल रहे हैं।"

(जवाहरलाल नेहरू—सत् १९६२)

"मैं फिर से ग्राप को सोलहवीं सालगिरह के लिये मुबारकबाद देता हूं ग्रौर उम्मीद करता हूँ कि ग्राप इस दिन को याद करेंगे। ग्रभी तो ग्राजाद

हिन्द एक बच्चा है। एक मुल्क के लिये सोलह वर्ष की उम्र क्या है? यों तो हमारा देश एक पुराना देश है। यह ज्यों ज्यों बढ़े उसकी ताकत बढ़े, इसका चरित्र अच्छा हो, मज़बूती हो, सिर ऊंचा हो और दुनिया में सिर ऊंचा करके आगे बढ़े। किन्तु बातों को आप याद रखिये और खास कर इसको कि हमारे देश में जो लोग रहते हैं, चाहे जिस हिस्से में वह रहते हों, चाहे जो उनका धर्म हो, सब हमारे भाई बहन हैं और सभी को मिलकर साथ चलना है। जो इस बात को भूल जाता है वह देश की सेवा नहीं करता।"

(जवाहरलाल नेहरू—सन् १९६३)

"हमारा राष्ट्र सब से बड़ी परीक्षा से गुजर रहा है। हमारे सामने बड़ा कठिन समय उपस्थित हुआ था, लेकिन इस में एक लाभ भी हुआ। सारी दुनिया ने देखलिया कि भारत के हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और अन्य लोग एक राष्ट्र के रूप में किस प्रकार दृढ़ संकल्प होकर कार्य कर सकते हैं। रणक्षेत्र में सभी संप्रदाय के वीरों ने मातृभूमि के लिए अपने प्राण न्योछावर किये हैं और दिखला दिया है कि वह पहले भी भारतीय हैं और अन्त में भी भारतीय हैं।

(लाल बहादुर शास्त्री—सन् १९६४)

"मैं आप से कहूंगा कि जिस झंडे के नीचे हम और आप खड़े हैं और बैठे हैं। आज इसकी रक्षा और हिफाजत का सवाल है। इसकी शान बनाये रखनी है, इसको कायम रखना है। हम रहें या न रहें लेकिन यह झंडा रहना चाहिए और देश रहना चाहिए और मुझे विश्वास है कि यह झण्डा रहेगा, हम और आप रहें या न रहें लेकिन भारत का सिर ऊंचा होगा। भारत दुनिया के देशों में एक बड़ा देश होगा और शायद, भारत दुनियां को कुछ दे भी सके।"

(लाल बहादुर शास्त्री—सन् १९६५)

"हमने समाजवाद का मार्ग अपनाया है क्योंकि गरीबी मिटाने का और कोई रास्ता नहीं है। प्रजातन्त्र हमारे समाजवाद की नींव है। प्रजातन्त्र में व्यक्तियों को कई अधिकार मिलते हैं। इन अधिकारों के साथ कर्त्तव्य भी हैं। हमारा सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि हम राष्ट्र को प्रगति के मार्ग पर बढ़ने में हर संभव सहायता दें। हमने कई विकास कार्यक्रम चालू किये हैं, इन सब का उद्देश्य गरीबी को दूर करना है। हमें गरीबी के खिलाफ लड़ाई लड़नी है। मैं अपने देशवासियों से अपील करती हूं कि वह इस लड़ाई का मुकाबला मिल कर करें।"

(इंदिरा गांधी—सन् १९६६)

"भारत में हिंसा का कोई स्थान नहीं है। यदि जल्दी तरक्की करनी है, तो हमें साम्प्रदायिकता, भाषावाद और जातीयता से संघर्ष करना है। प्रत्येक प्रान्त की प्रगति की बात समझ में आती है किन्तु कोई व्यक्ति अथवा प्रान्त अकेला प्रगति नहीं कर सकता। हमारे सामने हमेशा एक संगठित हिन्दुस्तान की तस्वीर होनी चाहिए। गत वर्षों में हमने कई चुनौतियों और मुश्किलों का सामना किया है, हमेशा हमने उन पर विजय प्राप्त की। आज खाद्यान्न की कमी की समस्या है, किसी एक राज्य में नहीं किन्तु देश के अनेक हिस्सों में। खाद्यान्न की कमी ने हमारे सामने नई समस्यायों में और दिमाग में संदेह पैदा कर दिया है। हमें याद आता है कि जब हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ तो, लोग संदेह से देखते थे कि क्या हम स्थायी सरकार बनाने तथा देश की एकता कायम रखने में कामयाब होंगे। देश के विभाजन के पश्चात कश्मीर पर आक्रमण हुआ, बाद में गांधी जी की हत्या की गई। हमारे बड़े नेता एक एक कर हमें छोड़कर चले गये किन्तु इसके साथ ही भारत के लोगों की ताकत बढ़ी। बहुत सारे लोग जो हिन्दुस्तान के हर कोने में रहते हैं। वह राष्ट्र की वास्तविक ताकत है।"

(इंदिरा गांधी—सन् १९६७)

"जब हम कर्मचारियों में अनुशासन हीनता की बात करते हैं तो मैं कहना चाहती हूं कि उद्योगपति और धनी व्यापारी भी अपनी जिम्मेवारी से बच नहीं सकते। यदि वह अधिक मुनाफा कमाने तथा बड़ी बड़ी तनख्वाहें लेते रहे तो अनुशासन नहीं रहेगा। मैं उनसे अपील करती हूँ कि वह इस बारे में विचार करें और हल निकालें। हमें धनवान और गरीबों के बीच की खाई को दूर करना है। यदि हम देश में खुशहाली चाहते हैं तो हमें व्यक्तिगत लाभ के बजाय राष्ट्र के लाभ को महत्व देना चाहिए। हमें त्याग की भावना को अपनाना है। अधिक उत्पादन हमारा ध्येय होना चाहिए। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। तब ही अनुशाशन और जिम्मेदारी की भावना का विकास होगा। हमारे में सहयोग की भावना का भी विकास होगा। हमारे में सहयोग की भावना का भी विकास होना चाहिए। हमें एक क्षण के लिए भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारा मूल उद्देश्य गरीबी को मिटाना है।"

(इंदिरा गांधी—सन् १९६८)

"यह गांधी शताब्दी का वर्ष है। हमें गांधी जी के कार्यक्रमों की याद ताजा ही नहीं रखनी है किन्तु उनके आदर्शों और मूल सिद्धांतों को भी याद

करना है तथा नई पीढ़ी को उस का ज्ञान कराना है। निकट भविष्य में ही एक महान् व्यक्ति हमारे देश में आयेंगे। आप सबने खान अब्दुल-गफ्फार खां का नाम सुना होगा। वह गांधी जी के सबसे बड़े शिष्य थे। हमारे देशवासी उन्हें सीमांत गांधी कहते थे तथा खूब प्यार और आदर की दृष्टि से देखते थे। मुझे कोई संदेह नहीं है कि वह जब हिन्दुस्तान में आयेंगे तब हम उनका उतने ही प्यार से स्वागत करेंगे।"

(इंदिरा गांधी—सन् १९६९)

"एक दूसरी समस्या भी है, वह है साम्प्रदायिकता। इस देश की बहुत सी खूबियां हैं, लेकिन शायद इसकी सब से बड़ी खूबी और शक्ति यह रही है कि इसने आधुनिक युग में ही नहीं बल्कि बहुत प्राचीन समय से, धर्मों को समानता दी है और सब धर्मों की अलग अलग विचारधाराओं का आदर किया है। यही विचारधारा हमारे देश की है कि हम दूसरों को अपने देश में पनाह दें—चाहे जो भी उनके विचार हों। क्या हम कह सकते हैं कि यमुना तो भारतीय है और लाल किला भारतीय नहीं है? सत्य एक है, लेकिन उस तक पहुँचने के कई रास्ते हो सकते हैं। यह बात हमने हमेशा से स्वीकार की है। इस को जब हम भूलेंगे तो कमजोर होंगे। इसको याद रखेंगे तो हमारी शक्ति बढ़ेगी और हम सभी काम और तेजी से कर सकेंगे।

(इंदिरा गांधी—सन् १९७०)

"मैं भारत की जनता को इस बात के लिए बधाई देना चाहती हूं कि बाहर के लोग भारत के बारे में जो भविष्यवाणियां करते थे, उन्हें भारतीय जनता ने झूठ सिद्ध कर दिया है। हमें डर दिखाये गये पर पिछले चुनावों में जनता ने जो कुछ किया वह किसी व्यक्ति के लिये नहीं बल्कि एक कार्यक्रम के लिये किया था।............हम न तो तलवार निकालते हैं, और न गलत नारे ही लगाते हैं। लेकिन दुनिया के देश इस बात को न भूलें कि हम किसी की धमकी से डरते नहीं हैं और किसी भी स्थिति का सामना करने को तैय्यार हैं।"

(इंदिरा गांधी—सन् १९७१)



बांगला देश की अलख जगाने.........

—विष्णुकान्त शास्त्री

बांगला देश के मुक्ति-युद्ध का पहला दौर पाकिस्तानी फौज के बर्बर अत्याचारों के कारण खून और आंसू, आग और धुंए, बलिदान और दमन की कहानी बन कर रह गया। मई ७१ के अन्त तक यह स्पष्ट हो गया कि मुक्ति-युद्ध लम्बा चलेगा। बांगला देश के संग्रामी मनोबल को तोड़ देने के लिए नये नादिरशाह टिक्काखां ने अवामी लीग, NAP आदि के नेताओं, कार्यकर्त्ताओं के साथ साथ बुद्धिजीवियों, प्राध्यापकों, लेखकों, पत्रकारों, कलाकारों आदि को भी अपने रोष का प्रमुख लक्ष्य बनाया। ये ही लोग तो पहले बांगला देश की स्वायत्तता और अब स्वाधीनता के लिये सामान्य जनता को भड़का रहे थे। सामान्य जनता तो आततायी शासकों के मतानुसार पहले सप्ताह के 'कत्ले आम' से ही काबू में आ चुकी थी। उनका ख्याल था कि अब अगर इन सिरफिरों को नेस्तनाबूद और काफिर हिन्दुओं को जलावतन किया जा सके तो फिर इस्लाम के नाम पर पाकिस्तानी हुकूमत सदियों तक बांगला देश में बरकरार रह सकती है। जैसे जैसे वे अपने शैतानी इरादे को अमल में लाते गये, वैसे वैसे भारत का आकाश लाखों की संख्या में आने वाले निःसंबल शरणार्थियों के आर्त्तनाद और हाहाकार से गूंजने लगा।

× × ×

देश के सभी विचारशील लोगों की तरह ही कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति के कार्यकत्ताओं के सामने प्रश्न था, "इस चुनौती का मुकाबला कैसे किया जाय ?" अपने सीमित साधनों और कार्यकर्त्ताओं की

मनोरचना एवं क्षमता के अनुसार समिति ने निश्चय किया कि मुक्तियोद्धाओं और बुद्धिजीवियों की यथासंभव सक्रिय सहायता के अतिरिक्त भारत और संसार के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों के माध्यम से शिक्षित जनगण के समक्ष बांगला देश और उसके बुद्धिजीवियों पर किये जा रहे अकथ्य पाकिस्तानी अत्याचार की सही तस्वीर पेश कर बांगला देश के प्रति उनका नैतिक एवं भौतिक सहयोग प्राप्त करने का उद्योग हमें करना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए बांगला देश के मुक्ति युद्ध पर तथ्य संवलित छोटी बड़ी कई पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर विश्व के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों को भेजी गयीं। बांगला देश से आये हुए विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं विद्यालय स्तर के शिक्षकों की वर्गीकृत तालिकाएँ बनाकर विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा संस्थाओं में उनकी अल्पकालिक नियुक्ति का प्रयास किया गया। देश-विदेश के बहुत से विश्वविद्यालयों से सहायता के साथ साथ ऐसा शिष्टमंडल भेजने का आमंत्रण भी मिला जो बांगला देश के मुक्ति-युद्ध की वस्तुस्थिति को विस्तार-पूर्वक बौद्धिकों के समक्ष ठीक ठीक रख सके। समिति के कर्मठ एवं सुयोग्य मंत्री प्रो० दिलीप चक्रवर्त्ती पहले से ही इस प्रकार के शिष्टमंडलों को भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भेजने की योजना बना रहे थे, अतः ये आमंत्रण सहर्ष स्वीकार कर लिये गये। निश्चय किया गया कि पहला शिष्टमंडल इलाहाबाद, अलीगढ़, दिल्ली, आगरा, लखनऊ, गोरखपुर, बनारस और पटना जाये। इस शिष्टमंडल के नेता थे चटगाँव विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० अजीजुर्रहमान मल्लिक। इसके सदस्य थे चटगाँव विश्वविद्यालय के बँगला विभाग के रीडर डा० अनीसुज्जमान, बांगला देश के एम० पी० ए० सुबिद अली (जो केवल अलीगढ़ और दिल्ली में ही शिष्टमंडल के साथ रह सके), समिति के उपमंत्री प्रो० सौरीन्द्रनाथ भट्टाचार्य, कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो० अनिल सरकार, डा० अनिरुद्ध राय एवं प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री। बन्धुओं की शुभ-कामनाओं के साथ हम लोग भारत-बांगला-देश की मैत्री को दृढ़ करने वाली इस सद्भावना यात्रा पर १० जून १९७१ को निकल पड़े।

× × ×

११ जून ७१। इलाहाबाद स्टेशन पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र-कल्याण विभाग के डीन श्री रफीक हुसेन तथा इतिहास विभाग के अध्यक्ष श्री ओ० पी० भटनागर ने बड़ी आत्मीयता के साथ हम लोगों का स्वागत किया। भटनागर जी ने ही आग्रहपूर्वक पत्राचार कर शिष्टमंडल को आमंत्रित किया था। हम लोग विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में ठहराये गये। भोजन

के समय वाइस-चांसलर डा० भाटिया पधारे। डा० मल्लिक तथा सभी सदस्य उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुए।

भोजन के बाद और लोग तो विश्राम की मुद्रा में आ गये किन्तु मैं अपने मित्रों से मिलने-जुलने के लिए निकल पड़ा। दिलीप दा ने कह रखा था कि विश्वविद्यालय के बाहर के बुद्धिजीवियों, लेखकों, कलाकारों से भी शिष्ट-मंडल की बातचीत होनी चाहिए और इसकी व्यवस्था की जिम्मेदारी विशेष रूप से मुझे सौंपी गयी थी। कलकत्ते से ही मैं पं० उमाशंकर शुक्ल, डा० रघुवंश, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, श्री अमृत राय आदि को इस शिष्टमंडल के बारे में लिख चुका था। शुक्ल जी को फोन किया तो उन्होंने बताया कि कल सुबह साढ़े नौ बजे हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से शिष्टमंडल का स्वागत होगा और उसमें इलाहाबाद के प्राय: सभी प्रमुख बौद्धिक आमंत्रित है। कुछ देर रघुवंश जी और रामस्वरूप जी के साथ गपशप की। वे लोग बांगला देश की क्रान्ति के बारे में बहुत आस्थावान् थे। हम लोग साथ साथ ही विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में पहुँचे।

४ बजे वाइस चांसलर डा० भाटिया की ओर से शिष्टमण्डल के सम्मान में चाय पार्टी थी। विश्वविद्यालय के अधिकांश विभागाध्यक्ष तथा अधिकारी आये हुए थे। डा० मल्लिक का परिचय विशिष्ट विद्वानों से कराया गया। फिर सब लोग दो-दो, तीन-तीन की टुकड़ियों में बँट कर चाय पान के साथ २ बांगला देश की वर्तमान स्थिति आदि के बारे में चर्चा करते रहे। इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० गोवर्धन शर्मा एवं अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष श्री यदुपति सहाय से मेरी अच्छी बातचीत हुई। समागतों में श्री आर० के० नेहरू और उनकी पत्नी श्रीमती राजेन्द्र नेहरू, डा० ताराचन्द वगैरह भी थे।

४–३० बजे नार्थ हॉल में सभा शुरू हुई। कक्ष खचाखच भरा था। वाइस चांसलर डा० भाटिया सभापति थे। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में बांगला देश के मित्रों को आश्वस्त किया कि संकट की इस घड़ी में सारा भारत उनके साथ है और यह आशा प्रकट की कि बांगला देश शीघ्र ही स्वतंत्र होगा। डा० मल्लिक ने पिछले २३ वर्षों के राजनीतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में बांगला देश के शोषण और संघर्ष का इतिहास प्रस्तुत किया और यह संकल्प घोषित किया कि यह लड़ाई स्वाधीनता की लड़ाई है, हम अन्तिम दम तक लड़ेंगे और इन्शाअल्ला अपनी कुर्बानियों से तथा भारत जैसे मित्र राष्ट्रों की सहायता से स्वतंत्र होकर रहेंगे। बौद्धिकों के सहयोग की कामना करते हुए उन्हों ने यह

भी कहा कि बांगला देश की स्वतन्त्र सरकार को विधिवत् मान्यता मिलनी चाहिए। डा० मल्लिक बहुत ही प्रभावशाली और कुशल वक्ता है। तथ्यों और तर्कों से परिपूर्ण उनके विषय प्रतिपादन ने श्रोताओं पर गहरी छाप छोड़ी। उनके बाद डा० अनीसुज्जमान ने बांगला देश के मुक्ति संघर्ष में बौद्धिकों...... विशेषत: प्राध्यापकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करने के बाद विस्थापित प्राध्यापकों की दुरवस्था का वर्णन किया। सौरीन बाबू ने कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति के कार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया और सहायता की अपील की। उनके बाद स्थानीय एम० पी०, श्री एस० एन० मिश्र, ऐडवोकेट बोले। उन्होंने अहमान्यतापूर्ण स्वर में बताया कि लोकसभा बांगला देश के प्रश्न को लेकर कितनी चिन्तित है, बजट में हम लोगों ने उसकी सहायता के लिए साठ करोड़ रुपयों की व्यवस्था की है। बांगला देश को मान्यता देने पर विश्वयुद्ध छिड़ जा सकता है, इस लिए सरकार अभी मान्यता देने के पक्ष में नहीं है। फिर उन्होंने मजाक सा करते हुए कहा कि यद्यपि मैं बिना फीस लिये सलाह नहीं देता तथापि बांगला देश से आये मित्रों को मुफ्त सलाह दूंगा कि वे भारत में न घूम कर अमेरिका, रूस, इंगलैण्ड आदि देशों में जायें। मुझे उनका अहंकार भरा स्वर बहुत खराब लगा। संयोग से उनके बाद ही मेरा नाम पुकारा गया।

मैं जरा आवेश में ही बोला। श्री मिश्र के दावों और भयों को अतिरंजित बताते हुए मैंने कहा कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों ने अतीत में भी बहुत से कठिन मौकों पर सरकारी और विरोधी दलों के प्रचार से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर सही बात निर्भीकतापूर्वक कही है। उन्हीं के जाग्रत विवेक से मेरा निवेदन है कि बांगला देश के मुक्ति-संग्राम को पूरी मदद पहुँचाने के अनुकूल वातावरण बनाने में वे सहयोग दें। बांगला देश की नवगठित स्वतंत्र सरकार को बिना कूटनीतिक मान्यता दिये हम मुक्ति-योद्धाओं को कोई बड़ी मदद नहीं दे सकते। अतः बांगला देश को मान्यता देना हमारा पहला कर्त्तव्य है और फिर आवश्यकता होने पर सशस्त्र हस्ताक्षेप कर बांगला देश से आये लाखों शरणार्थियों को स्वतंत्र बांगला देश में भेजना हमारा दूसरा कर्त्तव्य है। नहीं तो उनकी बाढ़ में ये साठ करोड़ रुपये ही नहीं, हमारी पूरी आर्थिक प्रगति बह जायेगी। विश्व युद्ध यदि वियतनाम के प्रश्न पर नहीं छिड़ा तो बांगला देश के प्रश्न पर छिड़ेगा, यह सोचना ठीक नहीं है। फिर इस सम्भावना के भय से हम अपने आर्थिक ढाँचे को चरमराने और सम्मान को धूलिसात् होने तो नहीं दे सकते। हमारा राष्ट्रीय गौरव और हित इसी में है

कि स्वतंत्र बांगला देश की प्रतिष्ठा में हम पूरी तरह मुक्ति-योद्धाओं का साथ दें। श्रोताओं ने कई बार तालियां बजा कर मेरा प्रबल समर्थन किया।

मेरे बाद श्रीमती राजेन्द्र नेहरू बोलीं। उन्होंने बहुत ही मीठी भाषा में हम लोगों की भावनाओं का आदर करते हुए कहा कि भारत सरकार की धैर्यपूर्ण नीति का अर्थ दुर्बलता कतई नहीं है। हम अपने अतिथियों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अन्ततोगत्वा यदि पाक फौजों का मुकाबला करने की स्थिति अनिवार्य हो गयी तो हम वह भी करेंगे। बांगला देश को अब अधिक समय तक कोई शक्ति गुलाम बना कर नहीं रख सकती।

प्रो० भटनागर ने धन्यवाद देते हुए आश्वासन दिया कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अधिकारी, प्राध्यापक और विद्यार्थी बांगला देश की मुक्ति के लिए और वहाँ के विस्थापित प्राध्यापकों की मदद के किए अपना पूरा सहयोग देंगे।

सभा बहुत सफल रही। प्राध्यापकों और विद्यार्थियों ने सभा के बाद हम लोगों को घेर लिया। देर तक बांगला देश की स्थिति के बारे में वे लोग सवाल पूछते रहे, अपना समर्थन करते रहे। हम लोगों को बहुत खुशी हुई।

× × ×

इलाहाबाद का विख्यात कॉफी हाउस। डा० मल्लिक तो सभा के बाद अपने आवास में लौट गये थे किन्तु अनीस को लोगों ने नहीं छोड़ा। अनोपचारिक चर्चा के लिए उसे मित्र-गण कॉफी हाउस ले आये। मैं तो साथ था ही। डा० रघुवंश, डा० विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नरेश मेहता, विश्वंभर मानव, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, ओंकार शरद आदि अनीस से बांगला देश के लेखकों-कवियों के बारे में पूछते रहे। अनीस बहुत पुलकित हुआ। उसने मुझ से रात को कहा कि उसे धारणा नहीं थी कि इलाहाबाद के बौद्धिक बांगला देश की समस्या के बारे में इतने जागरुक और सहानुभूति-सम्पन्न होंगे। मैंने कहा, कल देखना, हिन्दुस्तानी एकेडेमी की गोष्ठी कैसी होती है। विश्वविद्यालय की सभा में तो फिर भी औपचारिकता थी, यहाँ के साहित्यकारों में बांगला देश के मुक्ति-युद्ध के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं, सहभागिता की भावना है। उसने कहा, मुझे भी ऐसा ही लग रहा है।

× × ×

१२–६–७१। सुबह साढ़े आठ बजे वाइस चांसलर साहब से बांगला देश के विस्थापित प्राध्यापकों की समस्या पर बातचीत हुई। उन्होंने कहा कि वे यू० जी० सी० और भारत सरकार के शिक्षा तथा विदेश मंत्रालयों को लिखेंगे कि अस्थायी रूप से बांगला देश के कुछ प्राध्यापकों को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नियुक्त करने की अनुमति दी जाये। प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों के सहयोग से कुछ धनराशि भी एकत्र कर भिजवाने का वचन उन्हों ने दिया। डा० मल्लिक उनके रुख से सन्तुष्ट हुए, बोले, हम लोगों की यही अपेक्षा थी आप से।

साढ़े नौ बजे हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से शिष्टमण्डल के सम्मान में साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों की गोष्ठी थी। प्रो० आर० सी० देव, फिराक गोरखपुरी, अमृत राय, नरेश मेहता, लक्ष्मीकान्त वर्मा, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, साही, गोपेश, जगदीश गुप्त आदि बहुत से साहित्यकार बन्धु जुटे थे। डा० मल्लिक ने बांगला देश के बुद्धिजीवियों की भूमिका पर तथा अनीस ने बांगला देश के नये संघर्षशील साहित्य पर छोटी किन्तु सारगर्भ वक्तृताएं दीं। मैंने बांगला देश की कुछ कविताओं का हिन्दी अनुवाद सुनाया। फिराक साहब, देव साहब, साही जी, रघुवंश, जगदीश गुप्त, अमृत राय आदि ने बांगला देश के प्रति शुभकामनाएं अर्पित कीं और भारतीय जनता एवं बुद्धिजीवियों की ओर से पूरे समर्थन का विश्वास दिलाया। समाजवादी नेता श्री राजनारायण ने भी इस गोष्ठी में बांगला देश का जोरदार समर्थन किया। इस गोष्ठी की सुचारु व्यवस्था का सारा श्रेय पं० उमाशंकर शुक्ल और डा० सत्यव्रत सिन्हा को है जिन्होंने बहुत ही कम समय में इनता अच्छा आयोजन कर अपनी संगठन-कुशलता का प्रमाण दिया। पन्त जी उन दिनों इलाहाबाद में थे नहीं और महादेवी जी बहुत अस्वस्थ थीं, फिर भी उन्होंने डा० मल्लिक को और उनके माध्यम से बांगला देश को अपनी शुभ कामनाएँ भेजी थीं।

शाम को श्रीमती राजेन्द्र नेहरू ने शिष्टमण्डल के सदस्यों को चाय पर बुलाया। श्री आर० के० नेहरू ने अपने कूटनयिक अनुभवों के आधार पर डा० मल्लिक से देर तक बात चीत की। वे इस पक्ष में थे कि बांगला देश को सब प्रकार की पूरी सहायता दी जानी चाहिए। श्रीमती राजेन्द्र नेहरू बांगला देश के लिए चन्दा एकत्र करने के कार्य में जुटी हुई थीं। उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि इलाहाबाद में एकत्र राशि का एक अंश बांगला देश के बुद्धिजीवियों के सहायतार्थ वे कल वि० वि० बा० दे० सहायक समिति को भेजेंगी।

रात को इलाहाबाद के बंगाली समाज की ओर से श्री अनुकूल चन्द्र बनर्जी के घर प्रीति गोष्ठी और उसके बाद 'भोज' का आयोजन था। कल रात को भी श्री बग्गा ने, हम लोगों को 'डिनर' दिया था। इलाहाबाद के बंगाली सुसंस्कृत एवं सुसंगठित हैं। काफी संख्या में संभ्रान्त बंगाली नागरिक एकत्र हुए थे। नेहरू दम्पति एवं अमृत राय भी आमंत्रित थे। डा० मल्लिक, सौरीन दा आदि तो बोले ही मित्रों के आग्रह से मैं भी बंगला में ही बोला। राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक विभाजन के बावजूद बंगाल की सामान्य संस्कृति एक और अविभाज्य है, बांगला देश की हाल की घटनाओं ने इसे असन्दिग्ध रूप से स्पष्ट कर दिया है। श्री अमृत राय भोज के बाद भी हम लोगों से रात के साढ़े ग्यारह तक गपशप करते रहे। बांगला देश के प्रति उनके मन में जो सद्भाव है उसे सक्रिय रूप देने के लिए वे बांगला देश के मुक्त अंचलों की यात्रा करना चाहते थे। हम लोगों ने उनके इस मनोभाव का स्वागत किया और उन्हें कलकत्ते आने का आमंत्रण भी दिया।

दूसरे दिन (१३-६-७१ को) सुबह प्रो० भटनागर ने हम लोगों को अपने घर चाय पिलायी। बिलकुल सहज पारिवारिक वातावरण। श्रीमती भटनागर ने तिलक लगाकर और सफल होने का आशीर्वाद देकर हम लोगों को विदा दी। सब को यह आत्मीयता बहुत अच्छी लगी। हम लोगों को विदा देने के लिए बीसियों मित्र स्टेशन आये। इस में कोई सन्देह नहीं कि इलाहाबाद के बुद्धिजीवियों में विशिष्ट शालीनता है जो उन्हें एक ही साथ प्रिय और सम्मान्य दोनों बनाती है। इलाहाबाद के समाचार पत्रों ने भी दोनों दिनों के हम लोगों के आयोजनों के विस्तृत, सचित्र विवरण प्रकाशित किये थे। डा० मल्लिक ने कहा कि इलाहाबाद के शुभारंभ से भरोसा होता है कि यह सद्भावना यात्रा सफल रहेगी। हम सब उनके साथ सहमत थे।

× × ×

अलीगढ़ स्टेशन पर प्रो० वाइस चांसलर डा० शफी, डा० निजामी, अलीगढ़ विश्वविद्यालय के जन सम्पर्क अधिकारी श्री इकराम उल्ला खां तथा और भी बहुत से प्राध्यापक आये हुए थे। शहर के कुछ बंगाली सज्जन भी बांगला देश के विद्वानों के आकर्षण से खिंचे चले आये थे। बड़े शिष्टाचार के साथ हम लोगों का स्वागत हुआ।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय का अतिथि भवन इलाहाबाद वि० वि० के अतिथि भवन से कहीं ज्यादा अच्छा है। अधिक सजे हुए और आराम देह

कमरे। जून की सख्त गर्मी और भीड़भाड़ ने यात्रा को कष्टप्रद बना दिया था। स्नान और विश्राम ने बड़ी राहत पहुँचायी।

वाइस चांसलर डा० अलीम साहब हम लोगों के साथ भोजन करने पधारे। वे बहुत शान्त, सौम्य, संयत सज्जन लगे। बड़ी आवभगत के साथ हम लोगों को भोजन कराया गया। डा० अलीम हम लोगों के साथ कुछ देर तक लान में बैठे भी किन्तु अपनी तरफ से उन्होंने डा० मल्लिक के स्वास्थ्य के बारे में ही पूछताछ की, मौसम की कुछ चर्चा भी की। न तो बांगला देश के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ पूछा, न औरों की बातों पर कोई प्रतिक्रिया प्रकट की। हम सब लोगों को यह बात अर्थपूर्ण लगी कि प्रो० वाइस चांसलर तथा अन्य अधिकारी भी औपचारिकता तो पूरी निभाते रहे किन्तु बांगला देश के बारे में विशेष पूछताछ उन्होंने भी नहीं की।

स्थानीय लोगों के चले जाने के बाद हम लोगों की आपसी परामर्श-गोष्ठी बैठी। हम लोगों की सूचनाओं के अनुसार अलीगढ़ वि० वि० के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों का एक हिस्सा कट्टर साम्प्रदायिक होने के कारण बांगला देश के मुक्तियुद्ध का विरोधी था। पाकिस्तान द्वारा बहु प्रचारित इस मिथ्या का भी यहाँ की मानसिकता पर काफी असर था कि बंगालियों के अत्याचार से उर्दू भाषियों की रक्षा के लिए ही पाकिस्तानी सरकार को कड़ा कदम उठाना पड़ा। अतः यह तै हुआ कि कल की सभा में डा० मल्लिक विस्तारपूर्वक बोलें और पाकिस्तानी अपप्रचार का खंडन कर बांगला देश के न्यायोचित पक्ष को निर्भीकतापूर्वक उपस्थित करें।

× × ×

१४–६–७१ जलपान के बाद हम लोग अलीगढ़ विश्वविद्यालय देखने निकले। हम लोगों के साथ श्री इकराम उल्ला खां थे। मैंने अपनी तरफ से उनसे उर्दू में बात करनी चाही किन्तु उन्होंने धड़ल्ले से संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बोल कर मुझे चकित कर दिया। मुझे तब और सुखद आश्चर्य हुआ जब उन्होंने बताया कि उन्होंने अपने बच्चों को हिन्दी के माध्यम से ही शिक्षा दिलायी है और कुरानशरीफ भी हिन्दी में ही पढ़ायी है। गोरे चिट्टे हँसमुख इकराम खां बहुत ही जल्दी हम सब के स्नेह-भाजन हो गये।

सर सैयद अहमद ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के स्वप्न को बृहदाकार ठोस रूप देने में कोई कोर कसर नहीं रहने दी थी। स्वतन्त्रता के

बाद उसे केन्द्रीय विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त हुआ। आजकल भारत सरकार उस पर दो करोड़ रुपया प्रति वर्ष से अधिक खर्च कर रही है। स्वाधीनता के बाद अलीगढ़ विश्वविद्यालय का द्रुत गति से विस्तार हुआ है। पुराने विक्टोरियन भवनों के साथ ही बिलकुल आधुनिक शैली के लम्बे चौड़े महा विद्यालयों और छात्रावासों की दिनोंदिन बढ़ती कतारें दर्शकों को प्रभावित कर देती हैं। हम लोगों ने पहले सर सैयद का वास-भवन देखा, फिर पुराना विक्टोरिया हॉल, नया पुस्तकालय, मैडिकल कॉलेज, इंजीनियरिंग कालेज, आर्ट्स फैकल्टी, साईंस फैकल्टी आदि का परिदर्शन किया। सर सैयद और उनके बेटे, पोते के मकबरे भी देखे। बहुत ही सादे......बिलकुल अनलंकृत......किन्तु महिमामण्डित। डा० मल्लिक और अनीस ने उनके सामने जियारत की। मैंने भी उनकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना की।

नया पुस्तकालय भवन विशाल और भव्य है। भारतीय इस्लामी संस्कृति, साहित्य और इतिहास का सबसे बड़ा ग्रन्थ-भंडार यहां सुरक्षित है। डा० मल्लिक इतिहास के अधिकारी विद्वान हैं। उन्होंने और डा० अनीस ने भी पुस्तकाध्यक्ष रिजवी साहब से मुसलमानों के पुनर्जागरण में बंगाल की देन से सम्बद्ध कई दुर्लभ ग्रन्थों के बारे में पूछताछ की और उन्हें कुछ ऐसी सामग्री यहाँ मिली, जिसे वे लोग अप्राप्य समझते थे।

शाम को सभा हुई। उपस्थिति करीब १०० के रही होगी। छुट्टियों के कारण बहुतेरे छात्र अपने अपने घर चले गये थे। जो थे भी उन्हें आमंत्रित नहीं किया गया था। बात यह थी कि कुछ दिनों पहले बांगला देश के प्रश्न को ले कर छात्रों के दो दलों में मारपीट हो चुकी थी। जमाते इस्लामी और मुस्लिम लीग से प्रभावित छात्र बांगला देश के आन्दोलन को कुफ्र और इस्लाम के प्रति गद्दारी मानते थे जबकि राष्ट्रीयतावादी और प्रगतिशील विचार के विद्यार्थी इसे मुक्ति आन्दोलन मानते थे। अतः अधिकारी नहीं चाहते थे कि परस्पर विरोधी विचार के विद्यार्थी सभा में आयें, उन्हें भय था कि बांगला देश के प्रश्न पर वे फिर टकरा जा सकते हैं। अतः सभा में केवल निमंत्रित प्राध्यापकों एवं विशिष्ट जनों का ही समावेश हुआ था।

डा० मल्लिक यहां बहुत ही अच्छा बोले। उन्हें इस बात का आभास था कि वे अधिकांशतः संरक्षणशील......एक हद तक कट्टरपंथी मुस्लिम बुद्धि-जीवियों के समक्ष बोल रहे हैं। अतः वे बहुत सावधान थे। उन्होंने अपने व्याख्यान में तर्क और भावना का अद्भुत समन्वय किया। पाकिस्तान के

निर्माण में बंगाली मुसलमानों के योगदान की चर्चा करने के अनन्तर उन्होंने विस्तारपूर्वक सप्रमाण बताया कि इस्लाम की दुहाई देते रहने के बावजूद पाकिस्तानी शासकों ने तेईस वर्षों तक बंगाली मुसलमानों का कैसा भयंकर आर्थिक शोषण किया, उनके लोकताँत्रिक आन्दोलनों को किस बेरहमी से कुचला, उनकी भाषा और संस्कृति को नष्ट कर उन्हें बौना और गुलाम बना देना चाहा। पाकिस्तान को खण्डित शेख मुजीब ने नहीं, अयूब–याहिया जैसे फौजी तानाशाही और भुट्टो क्यूम जैसे श्रेष्ठतावादी पश्चिमी पाकिस्तानी राजनीतिज्ञों की अन्ध स्वार्थ-परायण हठबुद्धिता ने किया हैं। बिहारी मुसलमानों पर बंगालियों के अत्याचार की बात को अत्याधिक अतिरंजित और मनगढ़न्त बताते हुए डा० मल्लिक ने कहा कि २६ मार्च ७१ को दिये गये वक्तव्य में याहिया खां ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया था, न विदेशी पत्रकारों ने इस प्रकार की घटनाओं का संकेत ही अपने संवादों और लेखों में दिया था। यह बंगाली मुसलमानों को दुनिया की नजरों में गिराने के लिए किया जाने वाला झूठा अपप्रचार मात्र है।

फिर उन्होंने २५ मार्च के बाद पाकिस्तानी फौज के द्वारा किये गये कत्लेआम का लोमहर्षक विवरण दिया। ढाका विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों, छात्रों, ई० पी० आर० ई० बी० आर० के जवानों और साधारण निरीह जनता के ऊपर तीन दिनों तक जो अन्धाधुन्ध अत्याचार हुआ...... बंगाली मुस्लिम स्त्रियों पर जो बड़े पैमाने पर बलात्कार हुआ उसका वर्णन करते करते उन का गला रुंध गया। फिर उन्होंने दृढ़ कंठ से बताया कि अब बंगाली जनता इस्लाम के नाम पर छली नहीं जा सकती। जो अपने व्यक्तिगत जीवन और राष्ट्रीय व्यवहार में घोर इस्लाम विरोधी हैं, उनसे हम इस्लामी भाईचारे की बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। पाकिस्तानी फौजी जनरलों और राजनीतिक नेताओं को इस्लाम से कुछ लेना देना नहीं है, वे अपने स्वार्थ के लिए इस्लाम के नाम का दुरुपयोग भर करते हैं। बांगला देश की मुक्ति का युद्ध मानवता की मुक्ति से जुड़ा हुआ है। बांगला देश साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता का घोर विरोधी है। क्योंकि वह उनके विषैले फल चख चुका है। स्वतंत्र बांगला देश धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक, समाजवादी देश होगा। हम भारत की जनता और सरकार से अपने मुक्ति-युद्ध में पूरे सहयोग की आशा रखते हैं क्योंकि उन का आदर्श भी यही है।

सभा की शान्ति और एकाग्रता से यह स्पष्ट था कि डा० मल्लिक के व्याख्यान का गहरा प्रभाव पड़ा है किन्तु सुनने वालों की भीतरी प्रतिक्रिया क्या

हुई, इस को हम लोग नहीं जान पाये क्योंकि श्रोताओं में से कोई कुछ नहीं बोला। न किसी ने कोई सवाल ही पूछा, न भाषण ही दिया। वाइस चांसलर डा० अलीम ने जरूर अपने अध्यक्षीय भाषण में स्वतंत्र बांगला देश का समर्थन किया और यह आश्वासन दिया कि विस्थापित प्राध्यापकों में से कुछ को अलीगढ़ विश्वविद्यालय में अस्थायी रूप से नियुक्त करने की चेष्टा की जायेगी।

सभा के बाद चाय पार्टी थी। हिन्दी विभाग के डा० कुंवर पाल सिंह से मेरी अच्छी पटरी बैठ गयी। उन्होंने विस्तार से बताया कि बांगला देश के समर्थन में पूरी तरह आवाज उठाने वाले मुस्लिम छात्रों प्राध्यापकों की संख्या बहुत कम है। केवल वामपंथी विचारधारा के मुस्लिम बुद्धिजीवी ही बांगला देश का समर्थन कर रहे हैं। साधारण मुसलमान पाकिस्तान के बंटने और कमजोर हो जाने की संभावना से दुःखी है। उनके साथ यहां के प्रोफेसर्स क्लब में गया। उसका भवन और लान अच्छा है। वातावरण भी बहुत जीवन्त था, बहुत से प्राध्यापक वहाँ गपशप कर रहे थे या ताश आदि खेल रहे थे। काश, कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी ऐसा ही क्लब होता।

रात को शानदार डिनर था। चांसलर नवाब छतारी तथा सभी विभागाध्यक्ष पधारे थे। यहीं अपने नये सहयोगी सुबिद अली से मेरा परिचय हुआ। वह उसी समय कलकत्ते से वहाँ पहुँचा था। डिनर का वातावरण बहुत सौहार्द्यपूर्ण था किन्तु चर्चा सामान्यतः स्वास्थ्य, भोजन और मौसम की ही होती रही।

१५–६–७१ नौ बजे अलीगढ़ नगर के धर्म-समाज कालेज में जनसभा थी। उपस्थिति साढ़े तीन सौ के करीब रही होगी। प्रिन्सिपल गुप्त अध्यक्ष थे। राजनीति विभाग के डा० गहराना ने शिष्टमण्डल का स्वागत किया। डा० मल्लिक और डा० अनीस थोड़ा थोड़ा बोले। विस्तार से आज सुबिद अली बोला। डा० मल्लिक और अनीस सदा अंग्रेजी में बोलते रहे किन्तु सुबिद ने व्याख्यान उर्दू में दिया। यद्यपि वह काफी अच्छी उर्दू बोल लेता है, फिर भी लिंग, वचन की कुछ गलतियां तो होती ही हैं। उसकी वक्तृता में राजनीतिक नेता का लहजा था। उसने बांगला देश के आन्दोलन का ऐतिहासिक क्रम प्रस्तुत किया और स्वतंत्र बांगला देश के स्वप्न को सत्य बनाने के बंगाली जाति के संकल्प को सब प्रकार की सहायता देने की अपील की। लोगों ने उसे काफी पसन्द किया। मैं भी बोला। मैंने और बातों के साथ ही साथ इस बात पर भी जोर दिया कि इस समय पाकिस्तानी नीति भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगा कराने

की ही है। अलीगढ़ में कुछ समय पहले दंगा हो भी चुका है। हर भारतीय को चाहे वह किसी भी धर्म या राजनीतिक दल का क्यों न हो, पाकिस्तानी चाल को सफल नहीं होने देना चाहिए। हिन्दू मुस्लिम सद्भाव ही बांगला देश को नैतिक समर्थन देने की आधारशिला है। पाकिस्तान के दो राष्ट्रों वाले सिद्धान्त को सदा के लिए दफना कर ही हम नये बांगला देश के निर्माण में सहायक हो सकते हैं। सभा काफी जमी। अलीगढ़ की सामान्य जनता में बांगला देश के प्रति गहरी सहानुभूति है, यह साफ हो गया।

अलीगढ़ की खातिर तवाज़ह में कोई कमी नहीं थी। सच कहा जाये तो इलाहाबाद से हम लोगों का कहीं अधिक स्वागत सत्कार अलीगढ़ में हुआ, पर यह भी महसूस होता रहा कि इसमें औपचारिकता अधिक है, आन्तरिकता कम। बांगला देश के प्रति अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अधिकांश प्राध्यापक चुप्पी साधे रहे। विद्यार्थियों से तो हम लोग मिल ही नहीं पाये। यदि विश्व-विद्यालय में छुट्टियाँ नहीं होतीं तो बांगला देश के बारे में प्रबुद्ध, संरक्षणशील भारतीय मुस्लिम मानस क्या सोचता है, यह और अधिक स्पष्ट होता। जो हो, अलीगढ़ से बिदा होते समय हम लोगों को इस बात का सन्तोष था कि डा० मल्लिक का विचारोत्तेजक व्याख्यान बहुतों के मन की दुविधा और भ्रान्ति को दूर करने में समर्थ हुआ होगा।

× × ×

१५–६ की रात को ही हम लोग दिल्ली पहुँचे। स्टेशन पर दिल्ली विश्व-विद्यालय के एक अधिकारी के साथ स्वयं दिलीप दा प्रतीक्षा कर रहे थे। दिल्ली विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में हम लोगों का डेरा जमा। दिलीप दा इलाहाबाद–अलीगढ़ की उपलब्धियों के समाचार से बहुत खुश हुए। वे साउथ एवेन्यू में ठहरे हुए थे अतः दूसरे दिन सुबह विचार-विमर्श करने की बात कह कर जल्दी ही चले गये।

१६–६–७१ दिल्ली राजधानी है और बहुत ही व्यस्त है। यहाँ किसी को किसी के बारे में उतनी ही दिलचस्पी रहती है, जितनी उसके अपने लिए जरूरी है। कहाँ अलीगढ़ का मध्ययुगीन शिष्टाचार से ओतप्रोत राजसी आतिथ्य, कहाँ नौकरशाही बरतने वाली दिल्ली की काम चलाऊ यांत्रिक व्यवस्था। यहाँ वाइस चांसलर, प्रो० वाइस चांसलर की तो बात ही जाने दीजिये रजिस्ट्रार, असिस्टेंट रजिस्ट्रार भी भोजन के समय पूछताछ करने नहीं

आये। केवल भोजन-प्रबन्धक (केटरर) सज्जन ही अपनी ओर से औपचारिकता निभाते रहे।

जो हो, दिल्ली हम लोगों के लिए सब से महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। शिक्षा मंत्री श्री सिद्धार्थ राय अपनी विदेश-यात्रा से अभी तक नहीं लौटे थे। बिना उन से मिले विस्थापित प्राध्यापकों और शरणार्थी-शिविर-विद्यालयों की योजना के बारे में कोई निर्णय नहीं हो सकता था, अतः हमें प्रतीक्षा करनी थी और इस समय का सदुपयोग बांगला देश के पक्ष में वातावरण के निर्माण की दृष्टि से करना था।

केन्द्रीय सरकार के मन्त्रियों, अधिकारियों, विभिन्न विश्वविद्यालयों के वाइस चांसलरों, प्राध्यापकों आदि से मिलने-भेटने की सांझी जिम्मेदारी तो थी ही, प्रेस कांफ्रेंस तथा साहित्यकार-कलाकार-गोष्ठी के आयोजन की जिम्मेदारी विशेष रूप से मुझे सौंपी गयी थी। आज शाम को चार बजे दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से सभा का आयोजन था। तब तक समय ही समय था। मैं अपने काम पर आज ही से जुट गया।

सब से पहले गया राजेन्द्र यादव-मन्नू भंडारी से मिलने। वे लोग मेरी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। पहले तो कुछ देर तक कलकत्ते की और मन्नू जी के नये उपन्यास 'आप का बंटी' की चर्चा होती रही, फिर साहित्यकार गोष्ठी के सम्बन्ध में विचार विमर्श हुआ। कई और मित्रों से फोन पर बात चीत की। श्रीकान्त वर्मा, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, सुरेश अवस्थी आदि से भी मैं मिला। सब ने बांगला देश के प्रति पूरी सहानुभूति दिखायी और प्रस्तावित गोष्ठी में आने का वचन दिया। कुछ अच्छे सुझाव भी दिये। मैं आश्वस्त हुआ।

शाम को दिल्ली विश्वविद्यालय में अच्छी सभा रही। समागतों में अधिकतर प्राध्यापक ही थे, कुछ अधिकारी भी थे। वाइस चांसलर डा० स्वरूप सिंह दिल्ली में नहीं थे अतः प्रो० वाइस चांसलर डा० वी० पी० दत्त ने अध्यक्षता की। डा० मल्लिक ने संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली व्याख्यान में बताया कि बांगला देश अपनी आजादी के लिए सशस्त्र संघर्ष कर रहा है। हमारा विश्वास है कि भारत की महान् जनता और सरकार हमारे इस मुक्ति-युद्ध को अपना पूरा समर्थन देगी। प्रो० दिलीप चक्रवर्ती ने कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति की गतिविधि का परिचय दिया और विस्थापित प्राध्यापकों

ग्रौर बुद्धिजीवियों की सहायता के लिए ग्रपील की। दिल्ली स्कूल ग्राफ इकानामिक्स के डाइरेक्टर श्री तपन राय चौधरी, प्रो० नकवी, प्रो० रुद्र दत्त ग्रादि ने बहुत उत्साह के साथ बांगला देश को हर सम्भव सहायता देने के लिए विश्वविद्यालय एवं भारत सरकार से ग्रनुरोध किया। ग्रध्यक्ष डा० वी० पी० दत्त ने ग्राश्वासन दिया कि विश्वविद्यालय इस दिशा में शीघ्र ही निर्णय करेगा कि विस्थापित विद्वानों में से कुछ की सेवाग्रों का ग्रस्थायी उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। हिन्दी विभाग से सिर्फ डा० उदयभानु सिंह ही सभा में ग्राये थे।

मित्रों का यह विचार था कि शिष्टमण्डल को प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से ग्रवश्य मिलना चाहिए। प्रो० समर गुह, एम० पी० ने भेंट की व्यवस्था करने का जिम्मा लिया। श्री तपन राय चौधरी, श्री सेन गुप्त, एम० जी०, भी हम लोगों की बड़ी सहायता कर रहे थे।

१७–६ ग्रभी हम लोग नाश्ता ही कर रहे थे कि राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, सेवा राम शर्मा एवं उन की श्रीमती जी तथा ग्रजित कुमार, डा० मल्लिक, ग्रनीसुज्जमान, सुबिद ग्रली ग्रादि से मिलने ग्रा गये। ग्रच्छी बात-चीत रहीं। डा० मल्लिक योग्य व्यक्ति हैं। व्याख्यान देने में जितने दक्ष हैं, बातचीत करने में भी उतने ही पटु हैं। ग्रपने उद्देश्य के प्रति गंभीर ग्रास्था होने के कारण ग्रौर युक्तियुक्त वार्तालाप करने के कारण वे सामने वालों को प्रभावित कर देते हैं। राजेन्द्र यादव ग्रादि सभी उन के प्रति सम्मान का भाव ले कर लौटे।

इससे साहित्यकार सभा का काम सुगम हो गया। डा० निर्मला जैन के यहां डा० नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी ग्रजित कुमार ग्रादि के सहयोग से यह निश्चय किया गया कि किसी एक व्यक्ति या संस्था की तरफ से इस सभा का ग्रायोजन न कर दिल्ली के साहित्यकारों, कलाकारों की ग्रोर से इसका ग्रायोजन किया जाये तथा स्थान का भाड़ा बचाने के लिए रवीन्द्र भवन के लान पर सभा बुला ली जाये। व्यवस्था ग्रादि के लिए कुछ समय हाथ में रहना ग्रच्छा है, यह सोच कर २१ तारीख की सन्ध्या के समय यह सभा करने का निर्णय किया गया।

वहाँ से मैं गया शिक्षा विभाग के उच्च ग्रधिकारी श्री जीवन नायक से मिलने। शिष्ट मंडल के ग्रन्य सदस्य कुछ देर से पहुँचे। मालूम पड़ा इस बीच वे लोग प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से मिल ग्राये। डा० मल्लिक

ने बताया कि मेरे निकलने के बाद ही भेंट के निश्चित समय की सूचना मिली अतः मुझे सूचित नहीं किया जा सका। डा० मल्लिक प्रसन्न थे क्योंकि बात-चीत अच्छी तरह हुई थी और इन्दिरा जी ने विस्थापित विद्वानों की व्यवस्था करने का वचन दिया था।

श्री जीवन नायक ने ध्यान पूर्वक हम लोगों की बात सुनी। हमारी योजनाओं पर विचार करने का और उन्हें शिक्षा मंत्री के समक्ष अनुकूल सम्मति के साथ उपस्थित करने का वचन दिया।

अब मेरे सामने प्रेस कान्फ्रेंस के आयोजन की समस्या थी। दिनमान के कार्यालय में श्री रघुवीर सहाय से मिला। उन्होंने प्रेस क्लब के लोगों से मिलने की सलाह दी। हां, २१ तारीख की सभा की सूचना हिन्दी-अंग्रेजी के पत्रों में निकलवा देने का आश्वासन दिया।

रात को शिष्टमण्डल के सम्मान में उपवित्त मन्त्री के० आर० गणेश के निवास स्थान में 'डिनर' था। वहां युवा तुर्क नेताओं और मंत्रियों का अच्छा जमघट था। नन्दिनी सत्पथी, रघुनाथ रेड्डी, के० एन० सिंह, शशि भूषण, अमृत नाहटा, सत्यपाल कपूर आदि उपस्थित थे। वे लोग मुख्यतः डा० मल्लिक से बांगला देश की स्थिति के बारे में प्रश्न पर प्रश्न करते रहे। डा० मल्लिक ने उन सब के उत्तर अच्छी तरह दिये। अन्त में उन्होंने पूछा कि अब आप लोग बताइये कि भारत सरकार इस सम्बन्ध में क्या करने जा रही है। पहले तो उन लोगों ने इस प्रश्न को टाल देना चाहा किन्तु मैंने इस प्रश्न को और इससे निकलने वाले अन्य प्रश्नों को आग्रहपूर्वक दुहराया तो श्री के० आर० गणेश ने कहा कि हम लोग शीघ्र ही कड़ा कदम उठाने वाले हैं, वह कदम क्या होगा, कब उठाया जायगा, यह अभी नहीं बताया जा सकता किन्तु उससे बांगला देश के समर्थकों को सन्तोष होगा।

फिर प्रेमपूर्वक भोजन हुआ। यहीं दिल्ली के प्रमुख पत्रकार श्री गिरीश माथुर से भी मेरा परिचय हुआ। उनसे मैंने आग्रह किया कि आप लोग प्रस क्लब की ओर से डा० मल्लिक को दिल्ली के पत्रकारों से बातचीत करने के लिए आमन्त्रित कर लीजिये। उन्होंने अपने मित्रों से बातचीत कर मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। २०-६ की अपराह्ण वेला में प्रेस के साथ चाय पर डा० मल्लिक की बात चीत का कार्यक्रम तै हो गया। मुझे खुशी हुई कि मेरी दोनों जिम्मेदारियां अब अच्छी तरह पूरी हो जायेंगी।

रात को हम लोग जब अपने आवास में मिले तो आज की उपलब्धि से बहुत खुश थे। अनिरुद्ध और अनिल प्रति दिन की रिपोर्ट रात को लिखते और टाइप करते थे। अगले दिन का समन्वित कार्यक्रम भी वे ही लोग बनाते थे। पर आज हम सब देर तक लान पर बैठे बैठे गपशप करते रहे। स्वाधीन बांगला देश के सपने देखते रहे।

× × ×

१८-६, आज का सारा दिन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलने जुलने में ही लग गया। सभाओं द्वारा प्रचार और वातवरण का निर्माण तो होता है किन्तु काम आगे बढ़ता है विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से ही। केन्द्रीय सरकार के नेताओं के साथ तो बातचीत चल ही रही थी, हम लोगों ने सोचा दिल्ली-प्रशासन के अधिकारियों से मिल लेना भी उचित होगा। हम लोगों का काम राजनीतिक दल निरपेक्ष काम था। अतः सभी दलों से हमें सहयोग मिल रहा था।

अभी हम लोग जल पान ही कर रहे थे कि आकाशवाणी से श्री अशोक मनसुखानी आ गये डा० मल्लिक की बातों को रिकार्ड करने के लिए। डा० मल्लिक की अंग्रेजी वार्ता रिकार्ड कर लेने के बाद उनसे यह अनुरोध किया गया कि वे पाकिस्तान की साधारण जनता के लिए उर्दू में भी अपनी वार्ता दें। उसके लिए फिर उन्हें बुलाया गया।

ठीक दस बजे डा० मल्लिक दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजय कुमार मल्होत्रा से मिलने गये। उनके साथ मैं भी था। और मित्र दूसरे कार्यों पर चले गये थे। विजय जी जनसंघ के हैं, बांगला देश के प्रति उन के मन में बहुत सहानुभूति है, वे बहुत प्रेम से मिले। उन्होंने कहा कि २५०००) रुपये की राशि हम दे सकते हैं किन्तु केन्द्रीय सरकार यदि आग्रह करे कि यह सहायता केन्द्रीय सहायता समिति के माध्यम से होनी चाहिए तो थोड़ी मुश्किल होगी। विस्थापित बुद्धिजीवियों की भारत में यथासम्भव समुचित देख रेख होनी ही चाहिए। उन्होंने कुछ प्राध्यापकों की नियुक्ति के बारे में भी विचार करने का आश्वासन दिया। उनके रूप, गुण और व्यवहार से हम लोग बहुत प्रभावित हुए।

वहां से हम लोग गये ले० गवर्नर आदित्यनाथ झा से मिलने। महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा के पुत्र और डा० अमरनाथ झा के छोटे भाई श्री आदित्यनाथ झा मुझे तो प्रशासक कम और प्राध्यापक अधिक प्रतीत हुए। इन

के परिवार में दो पीढ़ियों से सब लोग वाइस चांसलर होते रहे हैं। ये भी वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर रह चुके थे। वैदुष्य और उनके सहजातगुण प्रबोध और विनय इनमें प्रचुर मात्रा में लगे। हम लोगों को पता ही नहीं चला कि हम लोग किसी राजपुरुष से मिल रहे हैं, लगा एक सेवा-निवृत्त वाइस चांसलर अपने से उम्र में छोटे और कष्टग्रस्त वाइस चांसलर से बड़े भाई के स्नेह के साथ मिल रहा है। उन्होंने प्रतिमास कुछ न कुछ सहायता भिजवाते रहने का और कुछ प्राध्यापकों को भी दिल्ली प्रशासन के कॉलेजों में लेने का वचन दिया।

दोपहर को हम लोग जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय गये। वाइस चांसलर किसी आवश्यक कार्य से बाहर चले गये थे। इतिहास विभाग की अध्यक्ष डा० रमला थापड़ डा० मल्लिक से बहुत सम्मान पूर्वक मिलीं। जब डा० मल्लिक लण्डन विश्वविद्यालय में थे तब वे वहां शोध कार्य कर रही थीं। उन्होंने बताया कि डा० मल्लिक के तत्कालीन सहयोगी डा० गुजराल और डा० मीनाक्षी सेन गुप्त भारत सरकार के गजट विभाग में हैं। डा० मल्लिक उनसे भी मिले। मित्रों से बातें करते समय वे पुरानी यादों में खो गये और थोड़े समय के लिए वर्त्तमान का दुःख दर्द भूल गये। स्नेही मित्रों से बहुत दिनों बाद मिलना कितना सुखद होता है।

शाम को भी एक शुभ संयोग घटा। दिल्ली विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डा० स्वरूप सिंह से हम लोग मिलने गये। डा० मल्लिक को देखते ही उन्होंने पूछा, बताइये, इसके पहले हम लोग कहां मिले हैं? थोड़ी देर तक दोनों अनुमान भिड़ाते रहे, बाद में अचानक दोनों को याद आया कि दोनों लण्डन में साथ साथ थे। मल्लिक साहब इतिहास में शोध कर रहे थे और स्वरूप सिंह जी अंग्रेजी साहित्य में, इस लिए दोनों में घनिष्टता तो हुई नहीं थी किन्तु हीरालाल सिंह दोनों के मित्र थे और उनके यहां वे लोग कई बार मिले थे। अब तो वातावरण में हृद्यता आ गयी। डा० स्वरूप सिंह ने कहा, "डा० मल्लिक दूसरे प्राध्यापकों की बात तो होती रहेगी, पहले बताइये कि क्या आप यहाँ आ सकते हैं?" डा० मल्लिक थोड़ा सा अकचकाये। डा० स्वरूप सिंह ने कहा, 'देखिये, मेरे पास एक अच्छा काम है, जिसमें आप को विशेष मेहनत भी नहीं करनी पड़ेगी। क्या आप दिल्ली विश्वविद्याल के विजिटिंग वाइस चांसलर होना पसन्द करेंगे? अवश्य ही इसके लिए श्रीमती मल्लिक की अनुमति पहले आपको लेनी होगी।" इस मीठे परिहास ने सब को हंसा दिया। फिर

प्राध्यापकों की अस्थायी नियुक्ति के बारे में अच्छी बात चीत हुई। डा० सिंह ने विश्वविद्यालय की एक गाड़ी भी डा० मल्लिक की सेवा के लिए नियोजित कर दी।

वहां से डा० मल्लिक प्रगतिशील राष्ट्रीयतावादी नेता नूरुलहसन एम० पी० साहब से मिलने गये। उनकी बात चीत में हम लोग शामिल नहीं हुए।

रात को भोजन के बाद लान पर आज भी देर तक गपशप होती रही। डा० मल्लिक आज मित्रों से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए थे। देर तक लण्डन विश्वविद्यालय की चर्चा करते रहे। कुछ जरूरी काम के कारण आज सौरीन दा कलकत्ता लौट गये।

१९–६ आज जलपान के समय पांचजन्य के सम्पादक देवेन्द्र जी पधारे। डा० मल्लिक और अनीस से देर तक बात चीत करते रहे। एक तरह से उन्हों ने उन लोगों का इंटरव्यू ही ले लिया। मजहब से संस्कृति को अधिक व्यापक एवं बड़ा मानना बंगाली मुलमानों के लिए कैसे संभव हुआ, इस विषय पर काफी चर्चा हुई।

कलकत्ते से हम लोग दस की रात को चले थे। तब से अनवरत काम करते ही रहे। आज पहला दिन था जब हम लोगों को थोड़ा सा फुर्सत का समय मिला था। वैसे मैं पूर्वाह्न में डा० नगेन्द्र से थोड़ी साहित्यिक बातचीत और राजेन्द्र यादव से साहित्यकार सभा के बारे में विचार विमर्श कर आया था।

भोजन के बाद डा० मल्लिक कुछ देर तक अपने संस्मरण सुनाते रहे। मुझे लगा कि उन्हें अपने घर की याद सता रही है। कैसा परिवर्तन ला दिया था इतिहास ने उनके जीवन में। कल वे चटगांव विश्वविद्यालय के तेजस्वी, प्रभावशाली वाइस चांसलर थे और आज अनिश्चित भविष्य से जूझ रहे थे ताकि उनके देश को सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार मिले। चटगाँव विश्वविद्यालय को उन्हों ने मुक्तिवाहिनी का गढ़ बना दिया था। खूंख्वार लड़ाई के बाद ही पाकिस्तानी फौज चटगाँव वि० वि० पर पुनः अधिकार कर सकी थी। भरा हुआ घर छोड़कर बीबी बच्चों के साथ जो कपड़े पहने हुए थे उन्हीं को ले कर उन्हें वहां से हटना पड़ा था। बाद में उन्हें समाचार मिला था कि पाक फौज ने उनके मकान को लूट कर पुस्तकालय में आग लगा दी थी। अन्त में वे बोले जब तक काम करता रहता हूँ, तब तक ठीक रहता हूं, नहीं तो परिवार

ग्रौर देश की चिन्ताएँ व्याकुल कर देती हैं। हम लोगों ने उनकी बात की सच्चाई ग्रौर पीड़ा को महसूस किया। ग्रनीस भी गमगीन हो गया था। वह स्वभाव से ही कुछ गंभीर है। ग्रनिल ग्रौर ग्रनिरुद्ध का स्नेहपूर्ण, विनोदपूर्ण साथ न होता तो वह ग्रस्वस्थ ही हो जाता। सुबिद ग्रली जरूर ग्रलमस्त था पर संकट इतना बड़ा था कि उसकी मस्ती भी भाप बन कर उड़ गयी थी। ग्रनिल, ग्रनिरुद्ध ग्रौर मैं......तीनों चेष्टा करते रहते थे कि यथासंभव ग्रपने सम्मानित एवं प्रिय मित्रों को उदास न होने दें।

दिल्लीं में नवस्थापित बांगला देश मिशन के श्री ग्रमजद ग्रली ग्रपराह्न में डा० मल्लिक से देर तक परामर्श करते रहे।

शाम के बाद हम सब लोग लाल किले में "प्रकाश ग्रौर ध्वनि का कार्य-क्रम देखने गये। इतिहास को रोचक ग्रौर नाटकीय बनाने में ग्रायोजकों को पर्याप्त सहायता मिली है। शाहजहां से शुरू कर जवाहरलाल नेहरू तक लाल किले के गौरव के उत्थान-पतन की गाथा प्रकाश ग्रौर ध्वनि के सहारे गीतों, घोषणाग्रों, सैनिक ग्राक्रमण की ध्वनियों, सभाग्रों के नारों ग्रौर व्याख्यान ग्रादि के टुकड़ों को रंगबिरंगे ग्रालोक से संयुक्त कर प्रभावशाली ढंग से कही गयी है।

ग्रपने ग्रावास लौट कर ले० गवर्नर झा तथा श्री विजय मल्होत्रा को दिये जाने वाले ग्रावेदन पत्रों के प्रारूप बनाये। भोजन के बाद लान पर बैठ कर पिछले दिनों के काम-काज की समीक्षा ग्रौर ग्रगले कार्यक्रमों की योजना बनाते रहे। ग्रन्य विश्वविद्यालयों से लिखा पढ़ी ग्रादि का काम ग्रनिरुद्ध ग्रौर ग्रनिल ही करते हैं। उन्होंने बताया कि चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय जाने की बात नहीं बन पायी। ग्रब यहाँ से हम लोग ग्रागरा ही जायेंगे। हम सब एक परिवार की तरह हो गये थे। डा० मल्लिक भी लान की बैठकों में बड़ा रस लेने लगे थे। उनके मानसिक तनावों को कुछ तो हँसी मजाक से भरी गपशप ग्रौर कुछ रात की ठंडी हवा (जो सब समय नहीं चलती थी।) कुछ न कुछ मात्रा में दूर कर देती थी।

२०–६ सुबह जलपान के समय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के डा० दशरथ ग्रोझा एवं डा० रमानाथ त्रिपाठी डा० मल्लिक ग्रादि से बात-चीत करने के लिए पधारे ग्रौर बांगला देश के प्रति ग्रपनी हार्दिक सद्भावना व्यक्त कर गये।

दिन भर हम लोग लिखा पढ़ी एवं अगले कार्यक्रमों की व्यवस्था में जुटे रहे।

शाम को प्रेस क्लब आफ इंडिया में डा० मल्लिक के साथ शिष्ट मण्डल को चाय पर आमंत्रित किया गया था। श्री गिरीश माथुर ने अपना उत्तर-दायित्व अच्छी तरह निभाया था। दिल्ली के सभी महत्त्वपूर्ण पत्रकार उपस्थित थे। डा० मल्लिक की प्रारम्भिक संक्षिप्त वार्त्ता के बाद पत्रकार बन्धु देर तक भिन्न भिन्न दृष्टियों से प्रश्न पूछते रहे। प्राध्यापक के लिए प्रश्नों का चुस्त उत्तर देना अपेक्षाकृत रूप से आसान काम है। यह कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा।

उसके बाद करोल बाग के बंगाली समाज द्वारा आयोजित एक सभा में डा० मल्लिक, अनीसुज्जमान और सुबिद अली के अच्छे व्याख्यान हुए। यहीं से बांगला देश मिशन के राजनयिक श्री शहाबुद्दीन और उनकी पत्नी के अनुरोध पर हम लोग उनके घर गये। शहाब साहब पाक दूतावास में सेकेंड सेक्रेटरी थे, अब वे बांगला देश के दिल्ली मिशन का काम काज देख रहे हैं। शहाब डा० मल्लिक के विद्यार्थी थे और उनकी पत्नी डा० अनीस की छात्रा थीं अतः वातावरण में बड़ी अपनायता थी। शहाब ने अपनी लड़कियों के नाम रखे हैं, अजन्ता, इलौरा। इतिहास के विद्यार्थी के अनुकूल ही है ऐसा नामकरण। लगता है कि क्रमशः बंगाली मुसलमान अरबी फारसी नामों के साथ संस्कृत बंगला नाम भी अपने बच्चों के लिए चुनने लगेंगे। यह प्रवत्ति बहुत ही स्वागत योग्य है। इससे हिन्दू-मुसलमान की पृथक्ता की भावना कम होगी।

२१–६ आज के सभी अखबारों में डा० मल्लिक की कल की भेंटवार्त्ता प्रमुख संवाद के रूप में प्रकाशित हुई थी। इससे हम लोगों को बड़ी खुशी हुई। आज हम लोगों को दिल्ली वि० वि० का अतिथि-भवन छोड़ना पड़ा क्योंकि पहले हम लोग दिल्ली में २०–६ तक ही रहने वाले थे। श्री सिद्धार्थ शंकर राय के विदेश अँटक जाने के कारण हम लोगों को अपना निवास काल बढ़ाना पड़ा। हम सब अलग अलग मित्रों के यहाँ चले गये। मैं अपने कलकत्ते के पुराने बन्धु श्री लक्ष्मी निवास झुंझुनवाला के घर चला गया, जिन्होंने मुझे बहुत स्नेह-पूर्वक रखा।

दोपहर को हम लोग नेहरू विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्री पार्थ-सारथी से मिले। उनसे बात करते ही लगा कि वे बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं, तेजस्वी, मितभाषी किन्तु सहायता के लिए तत्पर। प्रो० वाइस चांसलर श्री

मूनिस रजा के साथ उन्होंने सहानुभूति पूर्वक हम लोगों की बात सुनी और यथा-सम्भव सहयोग देने का वचन दिया।

अनिरुद्ध ने बताया कि वे लोग इसी बीच इन्दिरा जी के निजी सचिव श्री हक्सर से मिल चुके थे। नेहरू विश्वविद्यालय से हम लोग श्री नूरुल हसन से मिलने गये। आज भी डा० मल्लिक ने उनसे कुछ गोपनीय चर्चा की। श्री नूरुल हसन इन्दिरा जी के बहुत विश्वासभाजन हैं। अतः उनका सहयोग हम लोगों के कार्य के लिए बहुत उपकारी है।

वहां से डा० मल्लिक अनिल और अनिरुद्ध के साथ केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री सिद्धार्थ राय से मिलने गये और मैं अनीसुज्जमान और सुबिद्ध अली के साथ रवीन्द्र भवन गया जहाँ ६ बजे से साहित्यकारों, कलाकारों की सभा होने वाली थी। डा० मल्लिक सिद्धार्थ बाबू से बात कर उस सभा में आने वाले थे।

रवीन्द्र भवन के लान में ही एक तरफ छह कुर्सियाँ लगा दी गयी थीं। सभापति और प्रमुख वक्ताओं के लिए, शेष बन्धुगण घास पर ही बैठने वाले थे। छः बजे के पहले ही से साहित्यकार, कलाकार बन्धु आने लगे थे। साहित्य अकादमी की जनरल कौंसिल की बैठक चल रही थी। मेरे अनुरोध पर डा० माचवे ने छः बजने के पाँच मिनट पहले ही अपनी बैठक समाप्त कर दी और इस तरह डा० सुनीति कुमार चटर्जी, डा० हरेकृष्ण मेहताब, श्री उमा शंकर जोशी, श्री क० ना० सुब्रह्मण्णम, डा० उदयनारायण तिवारी जैसे वरिष्ठ विद्वान् एवं साहित्यकार भी उस सभा में सम्मिलित हो गये। मेरी इच्छा थी कि इस सभा का संचालन राजेन्द्र यादव या नामवर सिंह करते किन्तु सवा छह बजे तक जब वे लोग नहीं आये तब डा० सुनीति कुमार चटर्जी को सभापति बना कर मैंने ही सभा का कार्य शुरू कर दिया। उपस्थिति काफी अच्छी थी। दिल्ली के बहुत से प्रमुख लेखक और कलाकार उत्साहपूर्वक आये थे। पहले डा० अनी-सुज्जमान बांगला देश की क्रान्ति में साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों के योगदान पर बोले। वे अभी बोल ही रहे थे कि डा० मल्लिक वगैरह भी आ गये। मेरा मन और आश्वस्त हो गया। सुबिद अली यहाँ भी उर्दू में बोला। उसने पाकिस्तानी फौज के अत्याचारों का विस्तृत विवरण दिया। डा० मल्लिक ने अपने ओजस्वी भाषण में बांगला देश के मुक्तियुद्ध का सैद्धान्तिक पक्ष स्पष्ट किया। दिल्ली के साहित्यकारों की ओर से श्री कान्त वर्मा ने उन्हें आश्वासन दिया कि भारत के सभी लेखक कलाकार और बुद्धिजीवी बांगला देश के साथ हैं। सभा पति डा० चटर्जी ने बंगाली भाषा और संस्कृति के अविभाज्यदाय

को ही बांगला देश की मुक्ति के आन्दोलन के मूल में मुख्य प्रेरक शक्ति बताया। सभा बहुत अच्छी रही। समागतों में सर्व श्री विष्णु प्रभाकर, मोहन सिंह सैंगर, प्रभाकर माचवे, सुरेश अवस्थी, नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, अलकाजी, अम्लान दत्त, लक्ष्मीनारायण लाल, भारत भूषण अग्रवाल, निर्मला जैन, रमानाथ त्रिपाठी, गोविन्द केजरीवाल, शिवकुमार गोयल आदि २ अस्सी, पचासी लेखक, कलाकार बन्धु तो थे ही। पटना के डा० गोपाल राय भी उन दिनों वहीं थे, वे भी इस सभा में आ गये थे। इस आयोजन से पूरे शिष्ठमण्डल को बहुत सन्तोष हुआ।

सिद्धार्थ बाबू से भी डा० मल्लिक की अच्छी तरह बात चीत हुई। उसका सुफल कितना होगा, यह तो भविष्य ही बतायेगा।

२२–६ डा० मल्लिक को आज उर्दू में रेडियो वार्ता देनी थी। वे अंग्रेजी में बोलते गये, मैं बंगला लिपि और सरल उर्दू भाषा में लिखता गया। फिर उनसे उसके उच्चारण का पूर्वाभ्यास भी कराया। श्री सुबिद अली आज कलकत्ते लौट गये।

साढ़े दस, पौने ग्यारह बजे हम लोग जामिया मिल्लिया इस्लामिया के वाइस चांसलर प्रो० मुजीब से मिलने गये। मुजीब साहब वृद्ध हो गये हैं। उन्होंने सहानुभूति तो दिखायी किन्तु विशेष कुछ करने का आश्वासन नहीं दिया। अपने अर्थाभाव की ही चर्चा करते रहे। उनका यह भी मत था कि बांगला देश के बारे में भारत सरकार ने और भारतीय जनता ने बहुत जोश दिखा कर बांगला देश का भला नहीं किया। उनके रुख से हम लोग आश्वस्त नहीं हो सके।

लौटते समय साढ़े तीन बजे रेडियो स्टेशन पहुँचने की बात पक्की कर मैं साहित्य अकादमी में उतर गया, मित्रों से गपशप करने की दृष्टि से। साढ़े तीन बजे रेडियो स्टेशन पहुँचा तो मालूम पड़ा कि तबीयत खराब हो जाने के कारण डा० मल्लिक ने अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया है। मुझे चिन्ता हुई, मैंने तपन दा को फोन किया। उन्होंने बताया कि लगातार मेहनत और गर्मी के कारण डा० मल्लिक को कमजोरी महसूस हो रही थी, चक्कर भी आ रहे थे अतः डाक्टर की सलाह के अनुसार उन्हें विश्राम करना उचित लगा कल भी आगरा वे जायेंगे या नहीं इस का निश्चय रात को करेंगे। रात को मैंने फोन किया तो अनिरुद्ध ने बताया कि सर की तबीयत सुधर गयी है और कल की

यात्रा पूर्व योजना के अनुसार ही होगी। दिल्ली में बिताये ये सात दिन चिर-स्मरणीय रहेंगे।

२३–६ आज सुबह सवा सात की गाड़ी से आगरा जाना था अतः लक्ष्मी निवास जी और उनके परिवार से विदा लेकर पौने सात बजे ही स्टेशन पहुँच गया। डा० मल्लिक वगैरह पांच मिनट पहले ही आ गये थे। मल्लिक साहब का स्वास्थ्य ठीक ही था, सिर्फ थकावट, गर्मी और दुश्चिताओं के कारण वे कल अपराह्न को परेशान हो गये थे। फिर भी हम लोगों ने सावधानी के लिहाज से गोरखपुर, बनारस, पटना की यात्रा रद कर दा। आगरा, लखनऊ के बाद सीधे कलकत्ता जाना ही तै हुआ।

आगरा स्टेशन पर हम लोग उतरे तो कोई लेने ही नहीं आया था। फोन करने पर वाइस चांसलर साहब ने बताया कि उन्हें हम लोगों के पहले के पत्र तो मिले थे किन्तु आने का तार नहीं मिला था। असुविधा के लिए खेद प्रकाश करते हुए उन्होंने अपने पी० ए० को शीघ्र ही भेजा और हम लोगों के आवास की अनुकूल व्यवस्था करवा दी।

वाइस चांसलर शीतल प्रसाद जी बुजुर्ग सज्जन थे। उन्होंने हम लोगों के कार्य-क्रम के निर्धारण के लिए डा० राम विलास शर्मा एवं डा० हरिहर नाथ टंडन को बुलवाया। इन दोनों विद्वानों का मुझ पर स्नेह रहा है। दूसरे दिन शाम को साढ़े चार बजे फैकल्टी के सदस्यों तथा पत्रकारों के साथ चाय-गोष्ठी तथा छह बजे विश्वविद्यालय के लॉन पर जन-सभा के आयोजन का निश्चय हुआ। शीतल प्रसाद जी ने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया कि आज शाम और कल सुबह के समय का सदुपयोग हम लोग आगरा, फतह पुर सीकरी के ऐतिहासिक स्थानों के निरीक्षण द्वारा करें। उन्होंने विश्वविद्यालय की एक गाड़ी भी हम लोगों की सेवा में नियुक्त कर दी। यह सौजन्य हम लोगों को अच्छा लगा।

× × ×

२४–६ दूसरे दिन शाम को चाय के बहाने बांगला देश के बारे में अंतरंग चर्चा होती रही। वाइस चांसलर साहब ने डा० मल्लिक तथा शिष्ट मण्डल के सदस्यों का स्वागत करते हुए बाँगला देश के प्रति अपनी पूरी और सच्ची सहानुभूति व्यक्त की। मैंने बताया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति को बाहर से सब से पहले आगरा विश्वविद्यालय द्वारा प्रेषित दस हजार रुपये का चैक मिला था। अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने और बांगला

देश की व्यथा आप सब के सामने रखने के लिए ही हम लोग यहां आये हैं। डा० मल्लिक ने अपनी संक्षिप्त वार्ता में बांगला देश के मुक्ति युद्ध के कारण और स्वरूप का परिचय दिया। फिर प्रश्नोत्तरों की झड़ी सी लग गयी। देश की जनता में बांगला देश के प्रति कितनी ममता, जिज्ञासा और चिन्ता है, इन प्रश्नों से यही स्पष्ट होता रहा। डा० मल्लिक के उत्तर बड़े माकूल होते हैं।

जन-सभा की उपस्थिति चार सौ के लगभग थी। अध्यक्ष शीतल प्रसाद जी के स्वागत भाषण के बाद डा० मल्लिक और डा० अनीसुज्जमान ने पाकिस्तानी शोषण और अत्याचार के विरुद्ध संग्रामरत बांगला देश के राजनीतिक, सांस्कृतिक विश्वासों की विस्तृत चर्चा की और आशा प्रकट की कि भारत की जनता पूरी तरह इस मुक्ति संग्राम का समर्थन करेगी। भारत-बांगला देश के पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता पर मैं भी बोला। श्रोताओं की प्रतिक्रियाएं बहुत अनुकूल थीं।

पं० जगन्नाथ तिवारी, डा० रामविलास शर्मा, डा० हरिहरनाथ टंडन जैसे गुरुजनों एवं राजेन्द्र रघुवंशी, घनश्याम अस्थाना जैसे बन्धुओं से थोड़ी बहुत साहित्य चर्चा भी हो गयी।

रात की गाड़ी से हम लोग लखनऊ के लिए रवाना हो गये।

२५–६ लखनऊ विश्वविद्यालय के अर्थ शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा० वीर बहादुर सिंह, कम्यूनिस्ट नेता श्री रमेश सिन्हा तथा कुछ और सज्जन हम लोगों के स्वागतार्थ लखनऊ स्टेशन पर आये हुए थे। यहाँ हम लोग राजकीय अतिथि भवन में ठहराये गये।

आज ग्यारह बजे ही लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों की सभा आयोजित की थी। हम लोग जल्दी जल्दी तैयार हो कर वहां पहुँचे। छुट्टियों के कारण उपस्थिति अधिक नहीं थी, फिर भी सत्तर के करीब प्राध्यापक तो रहे ही होंगे। डा० वीर बहादुर सिंह, डा० जी० सी० मिश्र, डा० हरिकृष्ण अवस्थी आदि ने हम लोगों का स्वागत किया। वाइस चांसलर साहब लखनऊ के बाहर गये हुए थे। डा० मिश्र की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही शुरू हुई। डा० मल्लिक ने बांगला देश की राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण कर बताया कि सम्मानपूर्ण जीवन के लिए बांगला देश के सामने एक ही रास्ता था मुक्ति युद्ध का। हम ने उसे चुन लिया है। सारे संसार की और विशेषतः भारत की सक्रिय सहायता की हम अपेक्षा करते हैं। उन के

व्याख्यान के बाद कुछ प्रश्नोत्तर भी हुए। बांगला देश से समागत विस्थापित प्राध्यापकों, शिक्षकों की समस्या और उसे सहृदयतापूर्वक सुलझाने के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति की प्रस्तावित योजना पर मैं बोला। मैंने लखनऊ के शिक्षाविदों से अपील भी की कि वे अपना पूरा सहयोग हमें दें।

शाम को ५ बजे डा० मल्लिक को स्थानीय पत्रकारों ने सूचना विभाग के कक्ष में आमंत्रित किया था। दिल्ली की ही तरह लखनऊ के पत्रकार भी बहुत सहयोग-परायण निकले। वास्तव में बांगला देश के मुक्तियुद्ध के प्रति भारतीय जनता में इतनी व्यापक सहानुभूति थी कि पत्रकार बन्धु उसके सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचना देने के किसी अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। यहीं बन्धुवर ठाकुर प्रसाद सिंह से भी मुलाकात हुई, जो अस्वस्थ होते हुए भी बांगला देश के प्रतिनिधियों से मिलने के लिए चले आये थे।

साढ़े छह बजे उत्तर प्रदेश की उपमंत्री बेगम हबीबुल्ला के यहां चाय-गोष्टी के साथ ही साथ विशिष्ट नागरिकों की बैठक भी थी। हिन्दी के प्रमुख कथाकार भगवतीचरण वर्मा और यशपाल जी भी पधारे थे। अमृत लाल नागर सूकरखेत गये हुए थे तुलसी पर उपन्यास लिखने की सामग्री बटोरने अतः वे नहीं आ सके थे। डा० मल्लिक और अनीसुज्जमान थोड़ा थोड़ा बोले और फिर सभागतों से बात चीत करते रहे। बड़ा अच्छा आत्मीयतापूर्ण वातावरण था। मेजर जनरल हबीबुल्ला साहब भी बांगला देश के बड़े समर्थक लगे।

२६–६ आज के सभी स्थानीय अखबारों में कल की प्रेस-गोष्ठी का अच्छा विवरण आया था। आज ही हम लोगों को लौटना था। डा० वीर बहादुर सिंह, रमेश सिन्हा, प्रेम खन्ना, श्री त्रिपाठी वगैरह स्टेशन तक पहुँचाने आये। लखनऊ में इलाहाबाद की सी आन्तरिकता और अलीगढ़ की सी अर्थ-साध्य अतिथि परायणता दोनों मिलीं। सभी साथी विशेषत डा० मल्लिक बहुत प्रसन्न थे... 'हम फिदाए लखनऊ हैं, लखनऊ हम पँ फिदा' ... की सी स्थिति समझ लीजिये।

अब हम लोग घर लौट रहे थे। सभी के चेहरों पर सन्तोष की आभा थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम लोगों की यह यात्रा उत्तर भारतीय जनता......विशेषतः बुद्धिजीवियों के मध्य बांगला देश के प्रति सहानुभूति, सद्भाव को प्रगाढ़ करने में बहुत दूर तक सफल रही थी। इलाहाबाद, अलीगढ़, दिल्ली, आगरा, लखनऊ प्रत्येक नगर के समाचार पत्रों में हम लोगों की गति-

विधि के विस्तृत विवरण प्रकाशित हुए थे। बांगला देश की समस्या को दलगत राजनीति से मुक्त रखकर उच्च बौद्धिक धरातल पर उजागर करने के हमारे प्रयास की सराहना भी विवेकशील व्यक्तियों ने की। बांगला देश के विस्थापित बुद्धिजीवियों के अस्थायी पुनर्वासन के लिए केन्द्रीय सरकार तथा विविध विश्व-विद्यालयों के अधिकारियों से बातचीत कर अपनी कई योजनाओं के लिए आर्थिक सहयोग पाने की तथा कुछ विशिष्ट विद्वानों की अस्थायी नियुक्ति की हमारी चेष्टा का कुछ सुफल हुआ ही, तथा कुछ और होगा, इसका हम सब को विश्वास था। जून की सख्त गर्मी में की गयी लगातार यात्रा और दौड़ धूप ने, मुलाकातों, वक्तृताओं और वार्ताओं ने चाहे जितना थकाया हो, कहीं मन में यह भाव भी जगाया कि हम लोग इतिहास की महान् क्रान्ति के निष्क्रिय दर्शकों की नहीं, सक्रिय सहयोगियों की भूमिका अदा कर रहे हैं।

मनुष्य अपनी इकाई में तो छोटा ही है। समष्टि के साथ मिलकर किसी बड़े उद्देश्य से जुड़ कर ही वह बड़ा हो पाता है। जब किसी बड़ी चुनौती को स्वीकार कर आदमी उससे पूरी शक्ति से भिड़ जाता है, तब उसे अपने नये रूप का, अपने में ही छिपी नयी विशेषताओं का परिचय मिलता है। बाँगला देश के इस मुक्तियुद्ध ने बंगाली चरित्र को... विशेषत: बंगाली मुस्लिम चरित्र को काफी बदला है। कम से कम अभी तो ऐसा ही लगता है। उसकी लपेट में आ जाने के कारण मुझे भी उस परिवर्तन ने छुआ इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

हम बांगला देश की अलख जगाने निकले थे और निष्ठापूर्वक यह कह सकते हैं कि हमने अपना काम पूरी लगन के साथ किया।



गणतन्त्रोत्तर लोक साहित्य—नई दिशा

—रामनारायण उपाध्याय

आज से सौ सवा सौ वर्ष पूर्व जब अंग्रेजी राज्य की नींव इस देश में अच्छी तरह जम गई, तब यहां शासन करने एवं धर्मप्रचार के उद्देश्य से जो अंग्रेज आई० सी० एस० अधिकारी एवं ईसाई मिशनरी यहां आये, उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें इतिहास के अध्ययन में रुचि भी थी और जो यहां के लोक जीवन और संस्कृति को समझना चाहते थे। अपने उद्देश्य की सफलता के लिए भी उनके लिए यहां की भाषा और साहित्य को समझना आवश्यक था। इसी भावना से प्रेरित होकर उपरोक्त दो वर्गों के द्वारा हमारे देश में लोक साहित्य के कार्य का श्रीगणेश हुआ।

उन्होंने जो कार्य किया उसमें से कुछ तो ऐसा था जिसे "म्युजियम इंट्रेस्ट संग्रहालय" वृत्ति का परिचायक कहा जा सकता है। कुछ ऐसा था जिसे उन्हों ने पटवारी और रेवेन्यू अधिकारी जैसे अपने मातहत कर्मचारियों के जरिये सम्पन्न करवाया। उस में विस्तार तो है लेकिन गहराई नहीं है। लेकिन जिन्होंने स्वयं लोक जीवन से आत्मसात होकर इसको किया उसमें आज भी लोक साहित्य के कार्य को मार्ग दर्शन देने की क्षमता है।

सच पूछा जाय तो लोक साहित्य के कार्य को लोक साहित्य से प्रभावित हो कर करने का श्रेय श्री रामनरेश त्रिपाठी को है। आपको इस कार्य की प्रेरणा भी मनोरंजक ढंग से मिली। बात यह हुई कि एक बार जब आप रेल से यात्रा कर रहे थे, इतने में ग्रामीण स्त्रियों का एक दल अपने नौकरी पर जाने वाले

आदमियों को पहुँचाने स्टेशन आया। जैसे ही ट्रेन चली तो स्त्रियां गा रही थीं—

"रेलिया सवती, मोर पिया ले कै भागी"

अर्थात्—"रेल सौत बन कर मेरे पिया को ले कर भाग गई।"

रेल को सौत कहने की इस अद्भुत कल्पना पर आप मुग्ध रह गये। आप को लगा कि ग्रामीणों के पास तो इस तरह के साहित्य का अक्षय भण्डार होना चाहिये। उसी को एकत्रित करने की धुन में सन् १९२६–२८ तक करीब दस हज़ार मील की यात्रा करके और करीब तीन चार हज़ार रुपया खर्च करके, आप लगभग १५,००० लोक गीत एकत्रित करने में सफल हुए। आपके द्वारा किया गया यह कार्य अपने ढंग का अकेला था। आपने गांवों के उबड़ खाबड़ रास्तों में रुके लोक साहित्य के रथ को अपने बलिष्ठ कंधों से खींच कर शहरों के साफ समतल मैदानों में खड़ा कर दिया। आपके द्वारा सम्पादित "कविता कौमुदि" (भाग ५) को यदि लोक साहित्य का दिशा दर्शक ग्रन्थ कहें तो भी अत्युक्ति नहीं है। समुद्र की तरह फैले गांवों के हृदय में डुबकि लगाकर जब आपने वहां से असंख्य गीत रत्नों को एकत्रित कर उन्हें हिन्दी साहित्य के रत्न पारखियों के समक्ष रखा तो उसके आलोक से सारा हिन्दी जगत अलौकित हो उठा और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री राहुल सांकृत्यायन, पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी और श्री कृष्णदास जैसे अनेकों विद्वानों ने मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा करते हुए इस कार्य को प्रोत्साहित किया।

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने तो एक यायावर की तरह समूचे देश की यात्रा कर, न सिर्फ विभिन्न जनपदों के गीत संग्रहित किये वरन् उनका अंतर प्रान्तीय अध्ययन कर उसे एक विशुद्ध साहित्यक विधा के रूप में हिन्दी साहित्य के समकक्ष खड़ा किया। इस के बाद इस देश में लोक साहित्य की ऐसी बाढ़ आई कि छोटे से छोटे जनपदों में भी विभिन्न लोक भाषाओं पर काम हुआ और देखते देखते लोक गीतों के अनेकों संग्रह सामने आये। हिन्दी के कई पत्रों ने अपने लोक साहित्य विशेषांक निकाले और अनेकों पत्रिकाओं ने लोक साहित्य पर स्वतंत्र स्तम्भ देना प्रारम्भ किया। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित "आजकल" तो मानों लोक साहित्य का मुख पत्र बन गया था। उत्तर प्रदेश से "सम्मेलन पत्रिका", "ग्राम्या", "त्रिपथगा", "जनपद" और "ब्रजभारतीय", हरियाणा से "सप्त सिन्धु" तथा राजस्थान से "राजस्थान भारती" और "मरुभारती" ने इस दिशा में सहयोग दिया।

आजादी के बाद, लोक साहित्य की दिशा में जो कार्य हुआ उसका जिक्र करते हुए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है—"गांवों और जनपदों में सुदूर नदियों के काठों में, और पहाड़ों की गुफाओं में, शहद के छत्ते पर लगी हुई मधुमक्खियों की तरह जो जनता भरी हुई है वह राष्ट्रीय आलोक के फैलने से हमारी दृष्टि पथ में क्रमशः आ रही है और राष्ट्रीय चेतना का अभिन्न अंग बन रही है। काश्मीर की कृष्ण गंगा, और मरुद्वृधा की दो श्रेणियों से लेकर, दक्षिण कोसल की इन्द्रवती और शबरी नदियों के उपकंठों तक एक नये युग का आगमन हुआ है। किसी महावसन्त के प्राणवन्त फागुन हटे ने उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम की चारों दिशाओं को झकझोर डाला है। उसके कारण हमें अपने जीवन के चौमुखी सौन्दर्य को पहचानने और समझने की नई आंख मिल रही हैं। राजस्थानी लोक गीत, भोजपुरी लोक गीत, काश्मीरी लोक गीत, पंजाबी लोक गीत, गढ़वाली लोक गीत, मालवी लोक गीत, नियाड़ी लोक गीत, बाघेली लोक गीत, छत्तीस गढ़ी लोक गीत, सौरठी लोक गीत, आदि अनेक लोकगीतों के संग्रह कुछ ही वर्षों के भीतर सामने आये है।"

आजादी के बाद लोक साहित्य के कार्य में एक ऐसा मोड़ आया है जिससे यह कार्य महज गीतों के संकलन तक सीमित नहीं रह गया है वरन् अनेकों विश्व-विद्यालयों में उन पर खोज शोध अध्ययन होने लगे और ग्रामीण कहे जाने वाले लोक गीतों ने इस देश को अनेकों स्नातक प्रदान किये। साथ ही लोक गीतों के अंतर प्रान्तीय अध्ययन तथा लोक भाषा के शब्दकोष निर्माण कार्य ने उसे ऐसा व्यक्तित्व प्रदान किया कि उसने एक स्वतन्त्र साहित्यिक विद्या के रूप में उभर कर हिन्दी साहित्य के समकक्ष अपना स्थान बना लिया है। लोक भाषाओं के शब्दकोष निर्माण कार्य से एक और यदि सहायक नदियों की तरह, राष्ट्र-भाषा हिन्दी की समृद्धि का कार्य हुआ, तो अन्तर प्रान्तीय अध्ययन ने देश की भावात्मक एकता को भी बल प्रदान किया। लोक गीत चाहे किसी भी भाषा के हों, भावों की दृष्टि से वे एक और अभिन्न रहे हैं। चाहे मालवा की गोद में बच्चे का जन्म हो या महाराष्ट्र की, लोक गीतों की दुनिया में उनका एक जैसा स्वागत होता आया है और चाहे निमाड़ की बेटी विदा हो या राजस्थान की, लोक गीतों की आँखों से एक जैसे आँसू झरते आये हैं।

लोक साहित्य के कार्य को व्यापक पृष्ठ भूमि प्रदान करने का श्रेय "श्री देवेन्द्र सत्यार्थी", "श्री ठाकुर प्रसाद सिंह" "श्री गणेश चौबे", "श्री कृष्णदेव उपाध्याय", "श्री रामनारायण उपाध्याय", "श्री रामइकबाल सिंह राजेश",

"श्री गोविन्द चातक" और "श्री श्याम परमार जैसे उन अनेकों साहित्य साधकों को है जिन्होंने हिन्दी साहित्य के साथ साथ लोक साहित्य को विविध आयामों के माध्यम से हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत किया।

श्री सत्यार्थी जी के लिए लोक गीतों की एक-एक पंक्ति किसी शब्द कोष के एक-एक शब्द की तरह है जिनका उच्चारण करते ही, उससे सम्बन्धित अनेकों अर्थ खुल कर सामने आने लगते है। जैसे माली माल गूंथे, ऐसे उन्होंने, राष्ट्रभाषा हिन्दी के धागे में लोक भाषा के अनेकों सुन्दर गीतों को गूंथ कर हिन्दी साहित्य के सौन्दर्य में वृद्धि की है।

वे जब किसी कन्या की विदाई का गीत लिखने बैठते हैं तो अनेकों प्रान्तों के कन्या की विदाई के सम्बन्धित गीत, उनके आस पास एकत्रित होकर, उन्हें अपनी व्यथा कथा सुनाने लगते हैं। एक पंजाबी कन्या कहती है :—

"हे पिता मैं तो पंछी हूँ, मेरी उड़ान लम्बी है, मैं उड़ कर न जाने किस अज्ञात देश में चली जाऊंगी, मेरी गैरहाजरी में तुम्हारा चरखा कौन चलायेगा ?"

एक गुजराती कन्या कहती है :—

"हे पिता मैं तो हरे भरे जंगल की चिड़िया हूं, आज दादा जी के देश में हूं, कल परदेश चली जाऊंगी।"

एक अवधि कन्या कहती है .—

"हे पिता बाजार में सिन्दूर महंगा हो गया है, और चूनर अनमोल हो उठी है, इसी सिंदूर के कारण मैंने तुम्हारा देश छोड़ दिया है।"

एक मेरठ प्रदेश की कन्या कहती :—

"हे पिता जी आप का घर सीकों का बना है, उसे चिड़िया तोड़ कर चली गई।"

एक गढ़वाली कन्या कहती है :—

"हे पिता जी आप के कपड़े मैले क्यों हैं ? पानी से तो तालाब भरे हैं, हे भाई तुम्हारे गांव की गलियां अब मेरे लिए ऊंचे ऊंचे पर्वत हो गई हैं और तुम्हारा आंगन मेरे लिए परदेश हो गया।"

एक मैथिली कन्या कहती है—

"मैंने पूरवईन के हरे-भरे सरोवर की तरह मां को छोड़ा और बाबा के सुख मय राज्य को भी छोड़ कर अब मैं जा रही हूँ।"

और तब अपनी लाडली बेटी की विदाई में पिता इतने रोते हैं कि गंगा में बाढ़ आ जाती है और मां के रोने से धरती कांप उठती है।

श्री सत्यार्थी जी के द्वारा किये काम में, चाहे आनन्द के क्षण हों या व्यथा के उन दोनों का रंग उतर आया है।

श्री ठाकुर प्रसाद सिंह ने संथाली लोकगीतों का स्वातन्त्र अनुवाद कर लोक गीतों को हिन्दी कविता के पाँव पर खड़ा करने का एक नया प्रयोग किया है। देखिये उनके द्वारा अनुवादित एक संथाली लोक गीत, क्या किसी नई कविता से कम लगता है ?

पांच जोड़ बंसरी
वासन्ती रात के विव्हल पल आखरी
पर्वत के पार से बजाते तुम बन्सरी
बंशी स्वर धुमड़-धुमड़ रो रहा,
जी है उठ चलने को हो रहा
धीरज की गांठ खुली लो
लेकिन आधे आंचल पर पिय सो रहा,
मन पागल तोड़ रहा पंसरी
पांच जोड़ बंसरी।"

मैंने जब निमाड़ी लोक गीतों पर काम किया तो प्रत्येक गीत को उसके वातावरण के साथ उसका प्रारम्भिक परिचय देते हुए स्वतन्त्र रूप से रखा। जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है उती तरह प्रत्येक गीत का भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। और जब तक उसे उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल स्थान नहीं दिया जाता, तब तक उसका समूचा आनन्द नहीं लिया जा सकता। मैंने निमाड़ी लोक गीतों का अनुवाद ऐसी भावपूर्ण शैली में किया है कि जिससे उनका मूल रूप भी कायम रहे और वह काव्यमय भी हो।

मुझे लोक गीतों पर काम करने की प्ररेणा एक गीत की दो पंक्तियों से मिली। एक दिन मैं अपने गांव में बैठा था इतने में स्त्रियों का एक दल निम्न गीत की पंक्तियां गाते निकला :—

"शुक्र को तारो रे ईश्वर ऊंगी रह्यो
तेकी मखऽ टीकी घड़ाग्रो ।"

याने "यह जो ग्राकाश में शुक्र का तारा चमक रहा है ना ? उसकी मुझे बिन्दी घड़वा दो ।"

गीत की इस एक पंक्ति पर मैं मुग्ध रह गया। ग्रौर मुझे लगा कि जिन्होंने शिक्षा के नाम पर चार क्लास नहीं पढ़ी, ग्रौर यात्रा के नाम पर ग्रपने जिले की देहलीज नहीं लांघी, ऊनके पास विराट श्रृंगार की कैसी उदात्त कल्पना है। मैंने जब लोरी गीतों पर कार्य किया तो मैंने देखा छोटे छोटे बच्चों के लोक गीतों में भी श्री रविन्द्र नाथ ठाकुर जैसे विश्वकवि को प्रभावित करने की क्षमता है। रवी बाबू ने लोरी गीतों के बारे में कहा था :—

"ग्रभी-ग्रभी जोती हुई जमीन से जो गंध निकलती है, या शिशु के नवनीत, कोमल देह से जो स्नेह को उबाल देने वाली गंध है, उसे फूल, चन्दन, गुलाब जल, इत्र या धूप की गंध के साथ एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। सभी सुगंधों के मुकाबलों में उसमें एक ग्रपूर्व ग्रादिमता है उसी प्रकार लोरियों में एक ग्रपूर्व ग्रादिम सुकुमारिता है।"

विवाह गीतों के बारे में गुरु देव ने लिखा है :—"तुच्छता के संसार में खरीद फरोक्त की दुनिया में वर वधू भी तुच्छ है, किन्तु रस के नित्यालोक में वे राजा रानी है, उनके लिए ग्राज दीपों की माला संजोई गई है, फूलों की डोली सुसज्जित है ग्रौर वेद मंत्र से ग्राशीर्वाद करने के लिए चिरन्तन काल उपस्थित है। ये वर वधू जो सत्य है किसी राजा महाराजा से कम नहीं हैं।"

निमाड़ो लोक गीतों में ग्राप जीवन के इन सम्मस्त क्षणों का सूक्ष्मतम चित्रण पायेंगे।

श्री गोविन्द चातक ने जब गढ़वाली लोक गीतों पर काम किया तो उनमें हिमालय की गोद में बसे गढ़वाल का सम्मस्त सौन्दर्य उतर ग्राया है। क्या ग्राप विश्वास करेंगे कि यह नई कविता नहीं वरन् बाजूबन्द के नाम से प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के प्रेम संवाद है—

गीत की पंक्तियां हैं :—

"प्रेम का वृक्ष तू रोप दे, उसे पालना मेरे जिम्मे रहा"
"ऐसा प्रेम करना जिसमें पानी न छलके"

"बाल्य काल का प्रेम छूट जाता है, किन्तु कांक्षा नहीं जाती।"

"तू रास्ते पर ही मिल गई जैसे शिखर पर सूरज"

"नजदीक के प्रेम में नजरों का सहारा ही काफी"

"अपने रूप पर घमंड मत कर, केशर पुष्प मैं तुझसे बढ़ कर हूं"

इस तरह एक से एक बढ़ कर नवीन कल्पनाओं उपमाओं और प्रयोगों के साथ लोक साहित्य का कार्य स्वतन्त्रता के बाद बढ़ा जा रहा है आगे और आगे की ओर।



आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीक योजना

—डा० नरेश

प्रतीक का शब्दकोषीय अर्थ चिन्ह अथवा निशान है। साहित्य कोश के अनुसार, "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृष्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृष्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान, उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है*।" प्रतीक के अर्थों की विविधता को स्पष्ट करते हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त लिखते हैं कि, "अर्थों की यह विविधता प्रतीक शब्द की व्यापकता सिद्ध करती है। हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतीक शब्द का प्रयोग भी भिन्न प्रकार से हुआ है। हमारे सामाजिक या राजनैतिक जीवन में, हमारे गौरव का सूचक कोई रंग, आकृति या चिन्ह प्रतीक कहलाता है। जैसे किसी संस्था का व्यापारिक चिन्ह, किसी समाज की कोई मुद्रा या किसी राष्ट्र की ध्वजा पताका, कोई रंग या आकार। धार्मिक क्षेत्र में, पत्थर या धातु-मूर्तियां किसी परम-सत्ता के प्रतीक के रूप में पूजी जाती हैं। इसी प्रकार साहित्य क्षेत्र में किसी भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करने वाले शब्द प्रतीक कहलाते हैं†।" कवि, निश्चित ही, अपने भावों की सफल एवं सशक्त अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का सहारा लेता है। किसी अगोचर या अप्रस्तुत वस्तु का परिचय देने के लिए आवश्यक है कि, कवि गोचर या प्रस्तुत प्रतीक ढूंढे। प्रतीक की यह परम्परा वेदों से चली आ रही है। विश्व की प्रत्येक भाषा में प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है।

*-हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ४६१

†-डा० गणपति चन्द्र गुप्त : साहित्य निबंध : पृ० ५१८

सहज स्वभाविक था, कि आधुनिक हिन्दी कविता भी प्रतीकों का सहारा लेती। ऐस हुआ भी, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त है कि मध्ययुगीन कविता की अपेक्षा प्रतीकों पर अधिक बल दिया गया। यह तथ्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मध्ययुग ने ही आधुनिक युग को प्रतीक का मार्ग दिखाया। भक्ति साहित्य तो सारे का सारा टिका ही प्रतीकों पर है। यदि भक्ति के प्रतीकों को ध्यान में न रखा जाए तो सम्पूर्ण भक्ति साहित्य अश्लील कविता मात्र हो कर रह जाए। परन्तु यह भी सत्य है कि, प्रतीकों की व्यापकता के दर्शन आधुनिक हिन्दी कविता में ही होते हैं। इसी व्यापकता को विभिन्न वर्गों में विभक्त करके यहां उन का परिचय दिया जाएगा।

सांस्कृतिक - प्रतीक

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (ञ्) धातु से बनता है। इस का मूल अर्थ साफ या परिष्कार करना है। आज की हिन्दी में यह अंग्रेज़ी शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है। इस अर्थ में इसे सामाजिक प्रथा (कस्टम) का पर्याय भी कहा जाता है*। हमें यहां यही अर्थ अभीष्ट है। इस कोटि में वे प्रतीक आते हैं, जिन्हें हमारे कवियों ने भारतीय साहित्य, सभ्यता, संस्कृति एवं इतिहास से लिया है। इन प्रतीकों का सफल एवं स्पष्ट प्रयोग देश विशेष में रची जाने वाली कविताओं में ही सम्भव होता है। जैसे भारत में 'जयचन्द' देश द्रोह एवं विश्वास घात का प्रतीक है। भीष्म पितामह दृढ़ प्रतिज्ञा एवं ब्रह्मचर्य के प्रतीक हैं। राम आदर्श मानव के तथा रावण पापों का प्रतीक है। इस प्रकार रक्षाबंधन भाई-बहन के पवित्र प्रेम का प्रतीक है, सिन्दूर सुहाग का तथा आरती श्रद्धा एवं मंगल का। ऐसे प्रतीकों को आधुनिक हिन्दी कविता में यथेष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। निराला ने भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों को अपनाते हुए कहा :—

> निष्कम्प भाव्य प्रस्थान त्रयी पर संस्थापन।
> भारत के चारों ओर मठों का प्रस्थापन।

तथा दिनकर ने :—

> वन तुलसी का गंध लिए पुरवैया आती है।
> मन्दिर की घण्टाध्वनि युग युग का संदेश सुनाती है।

---

*-हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ८०१

प्रसाद ने भारत के इतिहास से रोमांचकारी प्रतीक चुन कर लिखा :—

पद्मिनी जली थीं स्वयं किन्तु मैं जलाऊँगी,
वह दावानल ज्वाला जिसमें सुल्तान जले ।

पूजा पाठ की भारतीय परम्परा से माला, आसन आदि प्रतीक लेकर मुकुटधर पाण्डेय अज्ञात प्रियतम की प्रतीक्षा में 'अधीर आंखें' लेकर बैठते हैं तो पाठक मनामुग्ध हो जाता है :—

हमारी आंखें बैठी हैं,
अधीरा बन कर के अनिमेष ।
पुतलियों का आसन है डाला,
छिपा कर रक्खी मुक्ता माला ।
खुले दरवाज़े पलकों के,
पधारोगे कब हे प्राणेश ।

धार्मिक प्रतीक :—

धार्मिक क्षेत्र में आकर प्रतीक बहुत ही महत्वपूर्ण हो गए । धर्म से सम्बद्ध कर्मकाण्ड का अर्थ बहुत ही विशिष्ट होता गया । विविध प्रकार के नाम, ईश्वर, स्वयंभू, खुदा, परमात्मा आदि ईश्वर के प्रतीक हो गए । गरुड़ विष्णु का, नन्दी बैल शिव का तथा हंस ब्रह्मा का प्रतीक बना । वेदों तथा पुराणों में वर्णित प्रतीक तो इतनी प्रचुर मात्रा में हैं कि उनको जाने बिना उन कथाओं का ठीक अर्थ समझना ही कठिन हो जाता है । गोपियों के विषय में यदि यह न जान लिया जाए कि वे 'आत्मा' की प्रतीक हैं तो पाठक उन धार्मिक कथाओं को उद्दाम वासना तथा भोगवादी कहानियों के अतिरिक्त और कुछ समझ ही नहीं सकता । अवतारों के विभिन्न चित्रों में यद्यापि रूप-साम्य नहीं होता तब भी देखने वाला तुरन्त बोल उठता है कि अमुक चित्र राम, कृष्ण या शिव का है। इस का कारण धार्मिक प्रतीक ही हैं । मुरली तथा मोर मुकुट कृष्ण का प्रतीक हैं, धनुष राम का, गले में सर्प, माथे पर चन्द्र, जटाओं में गंगा शिव के प्रतीक तथा शंख, पद्म, गदा विष्णु के ।

आधुनिक हिन्दी कवियों ने इन प्रतीकों के माध्यम से भी भावाभिव्यक्ति की है । काली भवानी को विनाश का प्रतीक माना गया है । काली का जो चित्र हमारे मस्तिष्क में उभरता है, वह एक ऐसी विराट् शक्ति का चित्र है

जिसके एक हाथ में खड्ग है तथा दूसरे में खप्पर। वह खड्ग से पापियों के शीश काट कर अपना खप्पर उनके रुधिर से भरती है। इस प्रतीक का सहारा लेकर निराला कहते हैं :—

लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूँगा मां।

'बंगाल का काल' में विनाशकारी भूख का मर्मस्पर्शी चित्र खींचने के लिए बच्चन भी इसी प्रतीक के माध्यम से कहते हैं :—

भूख भवानी डरावनी है
अगणित पद, मुख, कर वाली है,
बड़े विशाल उदर वाली है।

जय शंकर प्रसाद नई स्फूर्ति, नई चेतना एवं जागृति के लिए शैव भूमिका से प्रतीक चुन कर कहते हैं :—

शृंख और डमरू निनाद वस
सकल विश्व में गूँज उठा सा।

भारतीय जागृति तथा रीति-नीति की व्याख्या में उपनिवेश और यमपुर के प्रतीकों को चुन कर मैथिली बाबू लिखते हैं :—

उपनिवेश यमपुर न रहेंगे,
वहां न हम अपमान सहेंगे।

इसी प्रकार अन्य अनेक कवियों ने धार्मिक एवं सम्प्रदाय गत प्रतीकों से अपनी कविताओं को सशक्त एवं भावपूर्ण बनाया है।

दार्शनिक प्रतीक :—

भारतीय दर्शन के अगाध समुद्र से सीपियों जैसे प्रतीक चुन कर आधुनिक कवियों ने अपने बुद्धिजीवी होने का प्रमाण दिया है। दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग करने के लिए उन्होंने भारतीय दर्शन की बारीकियों को भली भांति समझा। जयशंकर प्रसाद की कविताओं में 'सर्ग का अग्रदूत' देवता का प्रतीक है। देवताओं के पास लुप्त होने की जो शक्ति है उसी का सहारा लेकर प्रसाद कहते हैं :—

आह सर्ग के अग्रदूत तुम
असफल हुए विलीन हुए

गांधी जी ने अंग्रेज़ी राज्य से मुक्ति पाने के लिए सत्याग्रह किया। इस धर्म-युद्ध में हज़ारों भारतीय गांधी जी के नेतृत्व में आगे बढ़े। अंग्रेज़ी राज्य 'दुशासन' बन गया तथा सत्याग्रह एवं अहिंसा का युद्ध 'महाभारत'।

उधर वे दु:शासन के बन्धु
युद्ध भिक्षा की झोली हाथ।
इधर ये धर्म बंधु नय सिंधु
शस्त्र लो, कहते हैं दो साथ।

प्रगति वादी कविता ने राजनैतिक दर्शन से भी प्रतीक लिए। 'लालसेना' 'लाल पताका' आदि प्रतीक 'मार्क्स दर्शन से तथा 'शान्ति सेना' आदि प्रतीक गाँधी-दर्शन से ग्रहण किए गए। देखिए :—

करने लगा मौत से लड़कर मनुज क्रान्ति की अगुआई।
अंगारों, गोली गोलों पर लाल-पताका फहराई॥

प्रकृति-प्रतीक :—

इन प्रतीकों को आधुनिक कवियों ने अनेक रूपों में ग्रहण किया। ये कवि कभी तो इस प्रकार प्रकृति से आत्मसात् कर गए, कि उन्हें वृक्ष की छाया को धरती पर पड़े देख कर, ऐसा प्रतीत हुआ जैसे इसे भी कोई नल सा निष्ठुर प्रेमी त्याग कर चला गया है। पन्त ने कहा :—

कहो कौन हो दमयन्ती सी तुम तरु के नीचे सोई।
हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या अलि नल सा निष्ठुर कोई ?

प्रकृति आधुनिक हिन्दी कवियों की सहचरी भी हुई, संगिनी भी, सखी भी तथा मां भी। प्रकृति के प्रति मोह ही 'छाया वाद' के नामकरण का उत्तरदायी है। ऐसी स्थिति में प्रकृति-प्रतीकों का बाहुल्य स्वभाविक ही था। छायावाद के पदार्पण के साथ ही इन प्रतीकों का, प्रचुर मात्रा में, प्रयोग होने लगा। महादेवी वर्मा ने :—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनी।
तारक मय नव वेणी बंधन, शीश फूल कर शशि का नूतन।

कहा तो पन्त ने :—

उषा का उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल निकास।

कहा। रांगेय राघव ने जनशक्ति के लिए ज्वालामुखी का प्रतीक चुना और कहा :—

ज्वाला मुखी में है शान्ति कहां
जाने वह किस दिन फूट पड़े।

प्रसाद के यहां 'किरण' अनुरागिनी बाला का प्रतीक होकर आई तथा वे बड़ी सहानुभूति से पूछने लगे :—

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज
रंगी हो तुम किस के अनुराग।

महादेवी के यहाँ उषा, संध्या, निशा सभी का प्रयोग प्रतीकात्मक ढंग से हुआ है। निराला ने 'कौन तम के पार रे कह' में प्रकृति - प्रतीकों के माध्यम से जीवन तथा जगत् के आध्यात्मिक सम्बन्ध को चित्रित किया है।

वैज्ञानिक प्रतीक:—

आधुनिक कवि उत्तरोत्तर जीवन के वास्तविक मूल्यों की ओर अग्रसर होते गए। बहुत देर तक भौतिकता के अटु सत्य की उपेक्षा, मानव से सम्भव भी न थी। प्रकृति पर अपनी भावनाओं को आरोपित करके, उसका मानवीकरण करके, कुछ समय तो बिताया जा सकता था, परन्तु इसी को जीवनाधार नहीं बनाया जा सकता था। कागज़ के फूल देखने में भले ही चित्ताकर्षक हों, सुगंधिपूर्ण नहीं हो सकते। बच्चन ने :—

आंख में हो स्वर्ग
लेकिन पांव धरती पर टिके हों।

कह कर धरती के जीवन की महत्ता बढ़ाई। बीसवीं शताब्दी विज्ञान का युग है। निरन्तर हो रही वैज्ञानिक प्रगति ने हमारे जीवन में अनेक परिवर्तन ला दिए हैं। हमारा सोचने का ढंग बदल गया है। कवि के अवचेतन में भी विज्ञान के नए नए आविष्कार उतरते चले गए। अन्ततोगत्वा उसकी

अभिव्यक्ति वैज्ञानिक क्षेत्र से प्रतीक ढूंढने लगी। प्रसाद के यहां वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग द्रष्टव्य है :—

परमाणु बाल सब दौड़ पड़े
जिसका सुन्दर अनुराग लिए।

केदारनाथ से संगीतात्मक वैज्ञानिक प्रतीक चुन कर कहा :—

आज अंग्रेज़ी पियानो
सांस धीमे ले रहा है।

उर्दू-प्रतीक :—

उर्दू कविता की लोक प्रियता तथा मुशायरों के प्रचलन से आधुनिक हिन्दी कवि भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन्होंने भी उर्दू कविता के शमा-परवाना, गुल, बुलबुल तथा जाम, मीना आदि, उन कतिपय प्रतीकों का प्रयोग किया जो इससे पूर्व हिन्दी कविता में लगभग अप्राप्य थे। शराब तथा नशे के प्रतीकों का प्रयोग प्रसाद के यहां देखिए :—

मादकता से आए तुम संज्ञा से चले गए थे।
हम व्याकुल पड़े बिलखते थे उतरे हुए नशे से।

रामकुमार चतुर्वेदी अपनी स्नेह की अभिव्यक्ति के लिए शमा तथा परवाना के प्रतीकों का सहारा लेकर कह उठे :—

दिए को लजा कर बुझाया गया है।
शलभ मुस्करा कर बुलाया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक हिन्दी कविता में मध्ययुगीन कविता में प्रयुक्त प्रतीकों की अपेक्षा अधिकाधिक नए क्षेत्रों को टटोला गया। इससे आधुनिक हिन्दी कविता का सम्मोहन भी बढ़ा तथा शक्ति भी आई और कवियों की अभिव्यक्ति को सफलता भी मिली।



कविता के आन्दोलन, 'तार सप्तक' और इतिहास की नज़र

[शब्द.लेख—डा० श्याम परमार]

[नयी कविता के बाद साठ में कविता की कई प्रवृत्तियां सामने आयीं। कुछ का रूप बना, कुछ का नहीं बना। किन्तु सातवें दशक में कई ऐतिहासिक प्रश्नों का पुनर्मूल्यांकन हुआ और अनेक बातें साफ हो गई।

'तार सप्तक' और उसके बाद की चीज़ों के सम्बन्ध में अब तक काफी लिखा जा चुका है। किन्तु उसकी पूर्व पीठिका अभी पूर्णत: स्पष्ट नहीं हुई है।

आज से कुछ वर्ष पूर्व (४ सितम्बर १९६५) श्री गिरिजा कुमार माथुर, डा० श्याम परमार और मुद्राराक्षस के बीच इस पिषय को लेकर एक चर्चा आयोजित की गई थी। चर्चा का आशय 'तार सप्तक' के धुन्धले सन्दर्भों को स्पष्ट करना और नयी प्रवृत्तियों पर बहस करना था। चर्चा टेप रेकार्ड कर ली गई थी। यहां उसी चर्चा का सम्पादित शब्दालेख दिया जा रहा है।]

चर्चा इस बात को लेकर शुरू हुई कि आज की कविता में कुछ नये आन्दोलन होते दिखायी दे रहे हैं। जिक्र हुआ ताज़ी कविता का—जिस का होना न होना कोई अर्थ नहीं रख पाया. विक्षुब्ध कविता का—जो आज की

कविता का कुछ मानों में विशिष्ट मूड सिद्ध हुई है और अकविता का—जो कविता के रूढ़ अर्थ से अलग एक 'ब्रेक-थ्रू' साबित हुई। मुद्राराक्षस ने कहा-- कविता के इन रूपों को देख कर पता चलता है कि हिन्दी कविता में समय-संक्रमण की स्थिति है।

गिरिजाकुमार माथुर से प्रश्न किया श्याम परमार ने—...आप तो प्रयोग-वाद और नयी कविता के आन्दोलनों के प्रारम्भिक सूत्रों से सम्बद्ध रहे हैं। क्या उस समय की स्थिति में आप को ऐसा कुछ लगता है जो आज के लिए 'रेलेवन्ट' हो ?

गिरिजा कुमार माथुर : संक्रामण आज ज़रूर है, क्योंकि नयी कविता के आन्दोलन का बंधा हुआ फ्रेम टूट गया है। सन्, ४० के आसपास छायावाद का फ्रेम भी इसी तरह टूटा था और कई वर्षों तक नयी धारा का कोई रूप नहीं बना था। 'तार सप्तक' में उस नयी प्रवृत्ति का पहला सबूत प्रस्तुत हुआ। लेकिन जिस तरह वह एक मोड़ था, कोई चेष्टापूर्ण संस्था-स्थापन नहीं, उसी तरह मुझे आज की स्थिति दिखती है। सही कविता, अकविता आदि को मैं आन्दोलन नहीं, बल्कि एक व्यापक ऐतिहासिक प्रवृत्ति के रूप में देखता हूँ। 'तार सप्तक' के प्रयोगकालीन युग की भंगिमा विवशता और 'फ्रसट्रेशन' से जूझने की भंगिमा थी। आज की भंगिमा व्यापक असंतोष और आक्रोश की भंगिमा है। उस समय का 'डिसइल्यूज़नमेन्ट' और स्थापित किये हुए को तोड़ कर कुछ नया बनाने की कामना आज जो प्राप्त नहीं हो सका उसके प्रति आक्रोश में बदल गये हैं। अकविता या विक्षुब्ध कविता को ही लीजिए, इस के मूल में स्थिति से जो व्यापक असंतोष की भूमिका है वह मूल्यवान है। कुछ कवियों में 'सेक्स' की विद्रूपता है, वह मुझे पसन्द नहीं। 'सेक्स' और नैतिकना के बदलते मूल्यों के प्रति सामाजिक 'कमिटमेन्ट' नहीं है। अकविता में आक्रोश की प्रवृत्ति है, खोखली नैतिकता के विरुद्ध आक्रमण है और अपने परिवेश के व्यापक असंतोष की अभिव्यक्ति है, उसी सीमा तक वह आज की सही अभिव्यक्ति है। इस विद्रूप और विकृत से अलग गम्भीर सतर पर यथार्थ की अभिव्यक्ति सन्, ४० के आसपास की गई थी, वही मूल्यवान थी।

परमार : आप के इस निष्कर्ष से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता। क्योंकि

उस समय की स्थिति में आज के मुकाबिले में बहुत फर्क था। कल का सत्य आज का सत्य कैसे हो सकता है? प्रायः इतिहासज्ञ या अतीत से स्वयं को मुक्त न कर पाने वाले पूर्वापर सत्य को, समय और आदमी के बदल जाने के बाद भी, तर्क-संगति देते रहते हैं। साहित्य-परक व्यवस्था ने शायद राजनीति से ही यह बात सीखी है, जब कि सचाई यह है समूची राजनीति नेतृत्व के अनुसार बदलती जाती है और अपने वक्त में उसकी अपनी दृष्टि ही सही घोषित की जाती है।

मुद्राराक्षस : असल बात यह है कि हर साहित्यान्दोलन के पीछे कुछ घटनाएं होती हैं जो वस्तुतः एकरसता से मुक्त होने एवं अभिव्यक्ति के रूढ़ प्रतिमानों से उबरने की कोशिशों से उत्पन्न होती हैं। ऐसा होना आवश्यक है, खास कर उन स्थितियों में जहां कथ्य, शिल्प और भाषा में ठहराव नज़र आने लगता है। तब प्रश्न पैदा होता है कि वे कौन से मूड्स अथवा अन्तर्निहित प्रवृत्तियाँ होती हैं जिन की वजह से लेखक इस बात के लिए प्रवृत्त होता है कि वह अन्वेषण करे ही?

परमार : मुझे लगता है, यह सवाल बहुत अंशों में 'तार सप्तक' के कवियों से असम्बद्ध नहीं है, और जैसा कि 'अज्ञेय' द्वारा संकलन की भूमिका में घोषित किया गया वे सभी 'राहों के अन्वेषी' थे तथा सभी उस 'परमतत्व की शोध' में लगे थे 'जिसे पा लेने पर कसौटी की ज़रूरत नहीं रहती, बल्कि जो कसौटी की ही कसौटी हो जाती है।' यह बात सन् १९४३ में लिखी गयी थी। इतिहास की दूरी चूंकि अब स्पष्ट है, इसलिए आज युद्ध, संक्रान्ति और विडम्बना के तात्कालीन मूड्स और स्थितियों के सन्दर्भ में, प्रयोग सम्बन्धी इस प्रश्न के साथ एक और प्रश्न भी स्वभाविक है। वह यह कि जिन दिनों 'तार सप्तक' के लिए कविताएं एकत्र की जा रही थीं, उन दिनों फासिज्म के विरुद्ध दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था और जीवन-मूल्य तेजी से विघटित हो रहे थे, तब क्या प्रयोग के हित में 'तार सप्तक' के कवियों की युद्ध-सम्बन्धी कोई सामान्य विचार धारा थी?

गिरिजा कुमार माथुर तटस्थ भाव से सिगरेट पीते रहे। चर्चा का सिलसिला युद्ध की ओर मुड़ता देख वे तनिक सावधान हुए। चीनी-आक्रमण के समय हम एक अनुभूति से गुज़र चुके थे। जिस दिन (चार सितम्बर, १९६५) हमारी यह चर्चा हुई भारत-पाक युद्ध के बादल घिर चुके थे। संयोग

की बात है कि चर्चा के दूसरे दिन हम पूर्णतः पाकिस्तान द्वारा लादे गये युद्ध की स्थिति में थे। दिल्ली और समूचे पंजाब में 'ब्लैक आउट' आरम्भ हो गया था। माथुर कुछ उत्तेजित लगे। बोले : बात दरअस्ल ऐसी नहीं थी। जरूरी नहीं कि हम युद्ध की प्रतिक्रिया को दूसरे महायुद्ध के पश्चात् पाश्चिमी साहित्य में उदित प्रवृत्तियों के रूप में ही देखें। हमें तब तक प्रत्यक्ष युद्ध स्थितियों का बोध ही नहीं हुआ था। आज तीन वर्ष में दो बार हो चुका है। सन् ४० से लगाकर ५१ तक की अवधि में जो संक्रमण, स्वप्न-भंग और विघटन संवेदनाएं पश्चिम में विकसित हुईं, वैसी हमारे देश में उन दिनों सम्भव नहीं थी। हां कुछ संवेदनशील प्रबुद्ध लेखकों पर युद्ध का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय चेतना के रूप में उत्पन्न हुआ था कि हम एक बड़े संदर्भ से जुड़े हुए हैं, कि हमारे देश की समस्याएं सिर्फ हमारी नहीं हैं—समस्त विश्व-इतिहास के परिवर्तन-क्रम से सम्बद्ध हैं, कि मानवीय संताप और रचयिता की विडम्बना चाहे पूर्व की हो या पश्चिम की उस में सभी सांझीदार हैं।

कुछ कवियों द्वारा तब प्रयोग की ओर प्रवृत्त होने का एक कारण व्यापक संक्रान्ति-बोध भी रहा है। क्योंकि स्वीकृत आस्थाएं निश्चय ही टूट रही थीं। छायावाद के समय जैसी सामाजिक परिस्थितियाँ थीं वैसी आगे नहीं रहीं। और, 'तार सप्तक' के कवियों की युद्ध सम्बन्धी कोई सामान्य अथवा समान विचार धारा नहीं थी। यद्यपि मैंने महायुद्ध सम्बन्धी तीन रचनाएं लिखी थीं जिन में 'युग सांझ' निश्चय ही काफी समर्थ रचना है। किन्तु 'तार सप्तक' के अन्य कवियों के कृतित्व में इस विषय की कोई रचना तब तक उपलब्ध नहीं थी। वस्तुतः प्रयोग की ओर प्रवृत्त होने के कारणों में, मैं समझता हूँ, युद्ध इतना सार्थक नहीं हुआ, किन्तु महायुद्ध के परिणामों का प्रभाव अवश्य ही गहरा पड़ा। छायावाद में तो हाड़-मांस का आदमी कहीं था ही नहीं। युद्ध के बाद दो परिणाम सामने आये। एक तो यह कि अमानवीय फासिज्म की हत्यारी मशीन टूटी। इस से एक नया विश्वास पैदा हुआ। दूसरी ओर विश्व भर में शक्तियों का जो 'पोलराइजेशन' हुआ उसी के साथ एक तीसरा औपनिवेशिक दुनिया का आदमी भी जाग उठा। हम ने पहली बार आदमी के दुख-सुख यथार्थ सत्ता के रूप में पहचाने। इस में छायावाद का काल्पनिक सौन्दर्य पर्याप्त नहीं था। बहुत कुछ 'अगली' और दुखद था जो नयी अभिव्यक्ति मांग रहा था।

दूसरी सिगरेट। धुंआं।

मुद्राराक्षस की भंगिमा इस व्याख्या से ऊबी हुई नज़र आयी। उस ने भी धुंए का एक गुवार और जमा कर दिया।

छायावादोत्तर स्थिति को स्पष्ट करते हुए गिरिजाकुमार माथुर :

उन दिनों कुछ लोगों के व्यक्तिगत संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। 'अज्ञेय' जी का 'चिन्ता' तथा दो-तीन छायावादी कविता-संग्रह मौजूद थे। भारतभूषण अग्रवाल का एक संग्रह छप चुका था। 'तार सप्तक' के शेष कवियों के व्यक्ति-संकलन तब तक आये नहीं थे। इस कारण काव्यगत प्रयोगों को आवश्यक होते हुए भी साहित्य में विरोध का सामना करना पड़ रहा था।......मुझे याद है, 'अज्ञेय' जी को मैंने, कवि रूप में, सन् १९३८ के जून महीने में पढ़ा। उनकी एक कविता छपी थी—'पूछ लूं मैं नाम तेरा'। उस समय मैं अपने घर पछार, आज कल अशोक नगर (मध्य प्रदेश), गया हुआ था। 'विशाल भारत' आया तो हमारे एक साहित्यिक रुचि के सहपाठी मित्र बोले, "देखिए कितनी अच्छी कविता है। कोई हैं जो 'अज्ञेय' के नाम से लिखते हैं—पूछ लूं मैं नाम तेरा/ मिलन रजनी हो चुकी, विच्छेद का अब है सवेरा..."

मुद्राराक्षस : बिलकुल महादेवी वर्मा जैसा अंदाज़...

माथुर : ...तो हम ने यह कहा 'यह तो बिलकुल छायावादी कविता है। इसमें तो कुछ है ही नहीं।' तो कहने लगे, "उनकी एक कविता और है।" वे एक पुराना अंक निकाल कर लाये। उस में 'द्वितीया' शीर्षक कविता थी। 'मेरे सारे गीत प्यार के / किसी दूर विगता के जूठे...।' हमारी उन से बहस हुई। पढ़े लिखे आदमी थे। हमने कहा कि इस का जो सम्पूर्ण 'रिद्म' है वह 'कामन प्लेस' है। बिम्ब-विधान, कथ्य, छंद तुकान्त सब वही है। जो कुछ इस में है वह पूर्णतः छाया-वादी है, बल्कि छायावाद का उच्छिष्ठ है। छायावाद चूंकि मरणासन्न है और उसके उच्छिष्ठ को आप दुहराते जा रहे हैं या उसकी काट-छाँट करते जा रहे हैं, इस लिए यह भी कहा जा सकता है कि यह उस से अलग है या उस से अलग होने की प्रक्रिया है। तो 'अज्ञेय' जी कविताएं हमारे सामने थीं। मुक्तिबोध का कोई संग्रह तब भी नहीं था। मेरा संग्रह 'मंजीर' निकल चुका था, लेकिन 'तार सप्तक' (प्रथम संस्करण) में 'मंदार' छपा है और उस में मेरी जन्म-तिथि भी गलत छपी है।

मुद्रा : कम है या ज्यादा ?

माथुर : ज्यादा दे दी है। २३ अगस्त, १९१७ है मेरी वास्तविक जन्म तिथि। उस में छपा है १९१८। खैर। लेकिन उस में जो तथ्य है वह जरा साहित्य क्षेत्र से अलग है। लड़ाई का जमान था। कागज़ की बड़ी दिक्कत हो गयी थी। ब्रिटिश सरकार ने काफी नियंत्रण कर रखा था। नयी पुस्तकें छापने की इज़ाजत नहीं मिलती थी। पता नहीं कौन क्या लिख दे। लेखकों पर निरन्तर संदेह बना रहता था। पुस्तक छापने के लिए पांडुलिपि देकर ज़िला मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेनी पड़ती थी। साथ ही उस का अंग्रेजी अनुवाद भी देना पड़ता था।

परमार : 'तार सप्तक' के लिए भी यह करना पड़ा होगा ?

माथुर : बिलकुल। सब के लिए ऐसा ज़रूरी था। बात छोटी-सी है। लेकिन दिक्कतें बहुत होती थीं। मेरे 'मंजीर' का तो इण्डियन प्रेस वालों ने सर्वाधिकार ले रखा था ! उसे अब जा कर छोड़ा। यों मेरा संग्रह १९४१ के मार्च में प्रकाशित हो गया था, पर औरों के लिए कठनाई थी। पूछा जाता—क्या लिख रहे हैं ? इस लिए व्यक्तिगत संग्रह निकले नहीं। लीडर प्रेस छापता नहीं था, सिवा 'प्रसाद' पंत, 'निराला' के। इण्डियन प्रेस पाठ्य पुस्तकों में ध्यान देता था। उस ने उन्हीं कवियों के संग्रह प्रकाशित किये जो कुछ लोक प्रिय हो चुके थे, जैसे सोहनलाल द्विवेदी, आदि।

परमार : ज़ाहिर है छायावादोत्तर कविता को स्थापित होने में बहुत दिक्कतें हुईं। तात्कालीन आलोचकों ने उसे स्वीकार करने में अपनी हेंठी समझी होगी। लेकिन फिर भी आप लोगों की उन के प्रति क्या भावना थी ? प्रतिक्रिया थी या अवज्ञा ?

माथुर : हम लोग उन्हें अपढ़ समझते थे।

मुद्राराक्षस : यह सटीक लब्ज है, क्यों कि इस में एक शालीन आक्रोश भी है।

परमार : हो सकता है उस जमाने में शान्तिप्रिय द्विवेदी या उन के समकालीन आलोचकों ने आप लोगों की रचनाएं पढ़ी होंगी। उस वक्त कदाचित् उन्होंने कहीं कहीं कुछ लिखकर या सहज चर्चा में आप लोगों की छायावादोत्तर प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया क्या व्यक्त नहीं की ?

माथुर : उस जमाने में हम लोगों की कोई साहित्यिक हैसियत नहीं बनी थीं। छायावाद का दौर खत्म नहीं हुआ था। कवि-सम्मेलन का जो रूप आज हम देखते हैं वह उसी जमाने में आया। इस का कारण यह था कि अंग्रेज सरकार उर्दू को पसन्द करती थी। कवि-सम्मेलन की नयी 'इन्स्टीट्यूशन' हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास था। इस लिए पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने कवि-सम्मेलन को विशेष प्रोत्साहन दिया। उन्हें श्रेय है इस बात का कि हिन्दी-प्रचार के लिए उन्होंने छोटे से छोटे गांव में कवि-सम्मेलन आयोजित करवाये और उस माध्यम का उचित उपयोग किया। कवि सम्मेलनों में उन दिनों प्रदीप, नीलकंठ तिवारी और बच्चन का ज़ोर था। छाये हुए थे। मुझे याद है...नवम्बर १६३६...गोरखपुर का कवि-सम्मेलन तीन दिन तक चला था। तीन उसके अध्यक्ष थे—माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान और श्रीनारायण चतुर्वेदी (पंत जी पहुंचे नहीं थे)। सोहनलाल द्विवेदी और श्यामनारायण पांडेय तथा कवित्त-सवैयों वाला कानपुर का गुट बुलन्द था। इनके सामने हम लोगों की कविताएं छपती न थीं। अकेले 'निराला' जी को छोड़ कर कोई हम लोगों की कविताओं की प्रशंसा करने को तैयार न था, यानी कोई समझना नहीं चाहता था कि तत्कालीन नवलेखन का कोई महत्व है। यह एक वास्तविकता थी कि व्यक्ति के रूप में कोई कवि खड़ा नहीं हो पा रहा था। लेकिन फिर भी छायावाद के बड़े माने जाने वाले कवि एवं कवि-सम्मेलनों में प्रतिष्ठित 'पापुलर पोएट्स' के अतिरिक्त इलाहाबाद, लखनऊ और आगरा में पढ़ने - पढ़ाने वाले विश्व-विद्यालयीन साहित्यिकों की एक पीढ़ी पनप रही थी।

मुद्रा : 'अज्ञेय' के साथ भी क्या ऐसी समस्या थी कि उन के छायावादोत्तर काव्य-रूप को लोग समझना नहीं चाहते थे ?

माथुर : मेरा तो ख्याल है, उनकी कविरूप में यह समस्या नहीं थी, संगठन कर्ता के रूप में रही होगी। तभी उन्हें यह विचार आया कि एक साथ खड़े होना चाहिए। मुझे याद है, 'अज्ञेय' जी ने श्रीराम रोड (दिल्ली) पर कहा था कि इस वक्त अलग संग्रह छपते हैं उनका कोई अस्तित्व नहीं होता, क्योंकि नये साहित्यकार और नये कवि पुरानी धारा के समक्ष खड़े नहीं हो सकते। इस लिए एक जगह प्रभाव अधिक होगा। १६४० में मैं लखनऊ से दिल्ली आया था और ४१

में 'अज्ञेय' जी मुझे मिझे मिले। उन दिनों 'अज्ञेय' जी आज की तरह दाढ़ी रखे हुए थे। रेडियो में नौकर थे। और वहां हिन्दुस्तानी का एक 'लेक्सिकन' बना रहे थे। डा० अशरफ भी थे शायद उनके साथ। सिकंदरा रोड पर उनका आफिस हुआ करता था। जैनेन्द्र जी के मकान के पास ही एक फ्लैट में, दरियागंज में, 'अज्ञेय' का निवास था। दरियागंज उस समय आबाद होना शुरू हुआ था। जैनेन्द्र जी पीछे की तरफ रहते थे। मैं था डेलर स्क्वेयर में गोल मार्केट के पास। ......हां, तो 'अज्ञेय' जी सायकल पर सितम्बर ४१ में मुझे चार बजे शाम को मिल गये। बड़ी गर्मी थी। मैंने उन्हें पहचाना नहीं, क्योंकि मैंने उन्हें कभी देखा नहीं था। उन्होंने कहा, 'मैं अज्ञेय हूँ।' मैंने उन्हें बैठाया। फिर आने जाने लगे। उन्होंने कहा कि मैंने आप की कविताएं पढ़ी हैं। एक योजना मेरे मन में है। मुझे याद है, उन्होंने जार्जियन कवियों के संग्रहों का जिक्र किया था। जिस तरह उन कवियों के मिले-जुले संग्रह आ रहे थे अथवा प्रथम महायुद्ध के तीन कवियों का जिस प्रकार एक संयुक्त संकलन छपा था, उस जैसी कोई कल्पना उन के सामने थी। हालाँकि यह बात अलग सी लगती है। सचाई यह थी कि हिन्दी कविताओं के संग्रह थे ही नहीं। नियंत्रण था। छपते कैसे ? हां, नयी कविता की सामग्री काफी थी।

परमार : यह तो हुई उस वक्त की एक स्थिति। लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'तार सप्तक' के लिए प्रस्तावित कवियों की रचनाएं तब की नयी कविता थी। उसे प्रयोगवाद के रूप में अलग अस्तित्व कैसे प्राप्त हुआ ?

माथुर : प्रयोगवाद वास्तव में शिवदानसिंह चौहान का दिया हुआ शब्द है। यह शब्द 'रूपवाद' से शुरू हुआ। कविता में छंद और रूपाकार के कुछ प्रयोग देखे गये जिसे रूपवाद मान लिया गया। यह गलत विश्लेषण था। इसी क्रम में प्रयोगवाद चल पड़ा। असल में जो प्रगतिशील थे उन्हीं की कविताओं को प्रयोगशील कहा गया था, और शेष कवियों के प्रयोगों को रूपवाद की संज्ञा दी गई। यह 'अज्ञेय' जी के वक्तव्य का परिणाम था, 'तार सप्तक' में संगृहीत कवियों के कारण नहीं। रूपवाद के रूप में यह शब्द पश्चिम के 'फार्मलिज्म' का पर्याय था। 'कला कला के लिए' के विरोधी पहले इसे रूपवाद

ही कहते थे, बाद में प्रयोगवाद कहने लगे। छायावाद नाम देखिए, पहले मजाक में शुरू हुआ था कि छाया ले कर लिखते हैं—दूसरों की नकल करते हैं। बाद में उसे दर्शन माना जाने लगा। इसी तरह प्रयोगवाद नाम चल पड़ा। हालांकि मैं यह नहीं मानता कि उस में 'कला कला के लिए' है, यह दृष्टि थी। अधिकांश कविताओं की प्रेरणा भूमि निहायत सामाजिक है।

मुद्रा : चूंकि आप की और आप के कुछ साथियों की कविताओ में छायावाद से हट कर एक खास तरह की ताजगी थी, तब भी क्या कारण है 'तार सप्तक' में मात्र सात कवियों को लिया गया ? उस में प्रतिनिधित्व के ख्याल से यह संख्या अधिक भी हो सकती थी।

माथुर : मैं ने बैठ कर बहुत से नाम वात्स्यायनजी के साथ तै किये थे। प्रभागचन्द्र शर्मा और वीरेन्द्रकुमार जैन के नाम मैंने सुझाये थे। इन की कविताएं मंगवाई भी गईं, किन्तु उन्हें पढ़ कर वात्स्यायन जी कहने लगे कि इन में कोई नया प्रयोग नहीं है। परम्परागत ढंग की चीज़ें हैं। जो कविताएं उन्होंने भेजी थीं, उन में दो तीन ही ठीक थीं। फिर मैंने पूछा कि और किस-किस को आप ले रहे हैं। प्रभाकर माचवे और रामविलास शर्मा के नाम उन्होंने लिए। माचवे जी की उन दिनों कुछ अच्छी कविताएं छपी थीं। 'गा रे हर वाहे दिल चाहे वही तान / खेतों में पका धान' वगैरह। 'तार सप्तक' में वे सब छपी हैं। मुक्तिबोध 'कर्मवीर' ग्रुप के थे। माखनलाल जी के पास थे। मैंने भी 'कर्मवीर' से लिखना शुरू किया था। उन्हें हम सब जानते थे। लेकिन मेरा ख्याल है, उस वक्त कुछ कवि जो लखनऊ और इलाहाबाद में थे अधिक प्रयोगशील कविताएं लिख रहे थे। केदारनाथ सिंह, शमशेर थे जैसे।

मुद्रा : लेकिन इन दोनों को तो 'तार सप्तक' में सम्मिलित नहीं किया गया। इसकी क्या वजह है ?

माथुर : क्यों नहीं किया गया केदारनाथ सिंह को या शमशेर को, मैं नहीं जानता। 'अज्ञेय' जी जानते होंगे। 'रूपाभ' के अंतिम अंकों में इनकी अच्छी कविताएं निकली थीं। नरेन्द्र शर्मा की कुछ कविताएं मुझे प्रयोग की दृष्टि से पसन्द आयी थीं। उन्हें शायद इस विचार

से सम्मिलित नहीं किया गया कि वे संधियुग के थे। शमशेर उन की ही उम्र के थे; लेकिन अधिक 'फ्रेश' थे। 'अज्ञेय' चाहते तो उन्हें पहले सप्तक में ले सकते थे। हिन्दी में ऐसे अधिक कवि थे भी नहीं उस समय। यों 'तार सप्तक' के पहले एक योजना रामविलास शर्मा, नरोत्तम नागर और मेरे बीच लखनऊ में चर्चित हुई थी। उद्देश्य था कि दो-दो या तीन-तीन कवियों के संकलन छापे जायें। उन्हीं दिनों मैंने छायावादोत्तर काव्य सिद्धान्तों पर अंग्रेज़ी में एक प्रबन्ध लिखना आरम्भ किया था। उस में मैं ने खास तौर पर प्रभाववादी बिम्बों, प्रतीकों और नव रोमानी प्रयोगों के सम्बन्ध में लिखा था। आगे लिख नहीं पाया। लेकिन ३९ के लगभग छंद तोड़ कर मैंने पहला प्रयोग किया था—'याद यह हो पाई मुझ को पुरानी / इसी उनी-सी पतली चांदनी में।' यह विशुद्ध सौन्दर्य परक आवश्यकता थी। ...लेकिन मुझे वात्स्यायन जी से ज्ञात हुआ कि वे भी कुछ इसी तरह की कोई चीज़ करने जा रहे हैं कि संकलन के रूप में सम्मिलित प्रभाव हो। मुझे काफी अनुकूलता लगी, और इस का परिणाम स्वाभाविक था कि लखनऊ में चर्चित हमारी योजना आगे न बढ़ सकी।...

परमार : लेकिन आप बता रहे थे 'तार सप्तक' के कवियों और उन की कविताओं के निर्णय के बारे में।

माथुर : मुझे स्मरण है, 'तार सप्तक' के लिए बहुत सी कविताएं 'अज्ञेय' जी ने मंगवायी थीं। यहीं दिल्ली में उन पर मुझ से कभी कभी चर्चा भी हुई। खास कर संकलित कवियों की समग्र उपलब्धियों को ध्यान में रखा और पूर्णतः साहित्यिक धरातल पर निर्णय लिया गया था। यों तो कुछ कवि पहले से निश्चित थे। रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध और मेरा नाम तै था। हम से 'अज्ञेय' जी ने बीस-बीस कविताएं मांगी थीं। मैं ने केवल ग्यारह या बारह कविताएं दी थीं और कहा था कि 'मैं समझता हूँ इन्हें ही सम्मिलित किया जाना चाहिए'। 'अज्ञेय' जी चाहते थे कि कोई ऐसा कवि छूट न जाये जो प्रयोग की दृष्टि से छायावाद से हट कर लिख रहा हो। वे पूछते 'और कौन-कौन लोग हैं उधर लखनऊ या मालवा में?' कुछ लोग बुझ चुके थे। वीरेश्वर और केदार उस जमाने में कम लिखते थे। लिखते होंगे तो प्रकाश में नहीं थे। 'रूपाभ' और नरोत्तम नागर का 'उच्छृंखल' कुछ समय के बाद बन्द हो गया था। हिन्दी में पत्र ही

कम थे। एक 'विशाल भारत' था, 'चांद' था और 'सरस्वती' थी, वैसी ही।

परमार : संकलन का शीर्षक 'तार सप्तक' रखने का निर्णय किस प्रकार लिया गया ?

माथुर : वात्स्यायन जी ने कहा संकलन का नाम 'सप्तक' रखना चाहता हूँ। उन्होंने बाद में सुझाया कि 'अंतिम सप्तक'—'दी लास्ट आवटेव्ह' उपयुक्त होगा। मैं ने कहा, 'संगीत में तो उसे 'तार सप्तक' कहते हैं। सात स्वर हैं और सातों अपने - अपने स्थान पर अलग-अलग हैं।

मुद्रा : माथुर साहब, यह कहा जाता है कि उस समय मार्क्स और फ्रायड के प्रभाव ही प्रमुख थे। क्या 'तार सप्तक' में सम्मिलित किये गये व्यक्तियों में वे प्रभाव स्पष्ट हैं ?

माथुर : वैसे इन में कुछ मार्क्सवादी थे। वक्तव्यों में इन में से कुछ कवियों में इन दोनों की ध्वनियाँ हैं। भारतभूषण अग्रवाल और नेमिचन्द्र जैन में मार्क्सवादी ध्वनि तथा 'अज्ञेय' में फ्रायडवादी ध्वनि साफ है।

परमार : लेकिन क्या यह सम्भव नहीं था कि उस वक्त मार्क्सवादी लबादा इनमें से कुछ लोगों ने स्वयं को विशिष्ट सिद्ध करने के लिए ओढ़ा हो। हो सकता है अपने वक्तव्यों में जोर-शोर से मार्क्सवादी घोषित करने के पश्चात् भी एक चेहरा उन का ऐसा रहा हो जहां वे स्वयं को ही काटते हों। मसलन, इस सिलसिले में भारतभूषण अग्रवाल का ही उदाहरण लीजिए। सन् '४२ में उन की एक कविता—'महाप्रयाण' कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले समाज सेवक' नामक एक पत्र में छपी। शायद भारत उसके सम्पादक भी थे और यह कविता जमनालाल बजाज की मृत्यु पर थी। उसके एक वर्ष बाद ही 'तार सप्तक' में उन का वक्तव्य छपा ज़िस में उन्होंने अपने को काफी अग्रगामी बताते हुए मार्क्सवादी कहा है, जब कि 'महाप्रयाण' की ध्वनि व्यक्ति प्रशंसा है।

माथुर : वास्तव में प्रशस्ति, प्रशंसा वग़ैरह अपनी-अपनी रुचि का निर्णय है। मैं ने तो निश्चय किया था कि नर काव्य नहीं करूंगा। 'निराला' जी कहते थे कि हम जीवित या मृत व्यक्तियों पर नहीं लिखेंगे। और

जहां तक राजनीति का सवाल है, मैं कहना चाहूंगा कि कविता में जहां नारे बाजी ग्रा जाये उसे मैं कविता ही नहीं मानता। मूल्यांकन के स्तर पर राजनीतिक प्रभाव ग्रर्थात् नैतिक दायित्व का सवाल महत्वपूर्ण है। मैं तो उस समय विशुद्ध कलात्मक ग्रावश्यकताग्रों ग्रौर ग्रभिव्यक्ति के संकट से लड़ रहा था। मुझे एक घटना याद ग्राती है। '३७ के जनवरी में, विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर में माखनलाल चतुर्वेदी के सभापतित्व में एक कवि-सम्मेलन हुग्रा। वहां मैं ने एक कविता सुनायी। दादा ने वहीं मंच पर गले लगा लिया ग्रौर मुस्कराकर कहा, 'इस में महादेवी वर्मा का नाम लिख दिया जाय तों पता नहीं चलेगा कि यह तुम्हारी कविता है या उन की।' मुझ पर इस की जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। पहले तो खुश हुग्रा, बाद में घर ग्रा कर ग्रपनी छब्बीस-सत्ताइस कविताएं फाड़ कर फेंक दीं। मुझे लगा कि मैं नक्काल बन रहा हूँ। उस वक्त मुझे ग्रपने लेखन से बड़ी ग्ररुचि हुई। मैंने मन में कहा कि जब तक नयी तरह की चीज़ न लिखूंगा तब तक चुप रहूंगा। बाद में तो '४१ के पहले तक कुछ प्रयोग कर लिए थे। 'रेडियम की छाया', 'चूड़ी का टुकड़ा' 'रुक कर जाती हुई रात', 'कुंवार की दोपहर' जैसी कविताग्रों में 'कांक्रीट इमेजरी' स्पष्ट थी। वे छायावादी कविता से एक दम ग्रलग तरह की रचनाएं सिद्ध हुईं। उस वक्त तक यथार्थ के नाम पर कुछ कुछ विद्रूप काव्य भी ग्राने लगा था। यह शुरू ही हुग्रा था तब। लेकिन उससे हम जरा भी प्रभावित नहीं हुए, ग्रौर यह बात मन में जम गयी थी कि 'तार सप्तक' में नये ढंग के लिखने वालों का प्रतिनिधित्व होने से प्रभाव होगा। तब यह ख्याल जरा भी न था कि यह संकलन ऐतिहासिक महत्व पा जायेगा।

सिगरेट का धुंग्रासा कमरे से चला गया था।

टहलते हुए इतिहास में निकल जाने का जो सिलसिला बातों ही बातों में बन गया था, चाय ग्रा जाने से उस में सहजता ग्रा गई।

मुद्राराक्षस की उवास स्वाभाविक थी।

मुद्रा : ग्रच्छा. यह तो बताइए, 'ग्रज्ञेय' की जो कविताएं 'तार सप्तक' में संकलित हैं, उन के विषय में ग्राप का क्या ख्याल है ?

माथुर : 'ग्रज्ञेय' जी की 'तार सप्तक' वाली कविताएं छायावादी भाषा से

ग्रस्त हैं। 'रण रणित कर गयी शिंजनी दोहरी'...एक दम छायावादी शब्द विन्यास है। मुझे लगता था 'अज्ञेय' छायावादी खोल से बाहर आने के लिए अब भी जूझ रहे हैं। राम विलास उसके बाहर आ चुके थे। प्रभाकर माचवे उबड़-खाबड़ तरीके से लगे हुए थे। लेकिन उन में उस समय ताजगी थी। और जहां तक विदेशी प्रभाव का ताल्लुक है, मुझे ऐसा नहीं लगता कि 'तार सप्तक' के कवि ईलियट के प्रतीकवाद और मेलार्मे का अनुकरण कर रहे थे। इसलिए भी रूप वाद का लांछन उन पर गलत था।

परमार : 'तार सप्तक' में प्रकाशित वक्तव्यों के सम्बन्ध में क्या उस के सम्पादक का विशेष आग्रह था ? साथ ही, क्या आप सप्तक की भूमिका से आज भी सहमत हैं ? उस के द्वारा किसी तरह का विशिष्ट आन्दोलन आरम्भ करने की पूर्व कल्पना क्या वात्स्यायन जी के मन में थी ?

माथुर : वक्तव्यों के सम्बन्ध में 'अज्ञेय' जी ने कहा था कि सम्मिलित कवि यह बताएं कि उन की कविताएं पुरानी कविताओं से अलग क्यों हैं ? वैसे तो अपने वक्तव्य में राम विलास शर्मा ने बहुत कुछ ऐसा लिखा जो वात्स्यायन जी के दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता था। उनका कोई विशिष्ट आग्रह नहीं था। सब को अपनी बात कहने की छूट थी। इतना आग्रह जरूर था कि वक्तव्य बड़ा नहीं हो। मेरा वक्तव्य ज़रा कठिन है। उसे मैं ने वात्स्यायन जी के घर पर बैठ कर देर रात तक जल्दी-जल्दी लिखा था। मैंने सिर्फ प्रयोग की बात कही, दर्शन चर्चा नहीं की। क्या मतलब है दर्शन से कवि का ? जहां पर सम्वेदनात्मक दृष्टि है, उस की प्रतिच्छाया है, मुहावरे हैं, उन्हें छोड़ कर दर्शन चर्चा का क्या प्रयोजन ? मेरा तो ख्याल है कविता का कोई जबर्दस्ती दर्शन-वर्शन नहीं होना चाहिए।

हां, 'तार सप्तक' की भूमिका काफी स्पष्ट है। वह विशुद्ध रूपेण सचाई का इजहार है। जब यह संकलन छपने वाला था तब 'अज्ञय' कलकत्ता चले गये थे। वह कहते थे, उन्हों ने जो लिखा उस की पांडुलिपि खो गयी थी। 'तार सप्तक' में प्रकाश्य कविताएं उस के साथ चली गयीं। छपने में बहुत दिक्कतें हुईं। छपने की कुछ व्यवस्था पहले दिल्ली में की थी। मुश्किल से खोई हुई सामग्री मिली। फिर से कविताएं जमा कीं, और किसी अन्य प्रेस में 'तार सप्तक'

छपवाया। छपायी के लिए यह तै हुआ था कि यह सम्मिलित योजना होगी। सब मिल कर व्यय वहन करेंगे और रायल्टी आदि के भागीदार होंगे। पर सहयोग-राशी किसी ने नहीं दी। हमारे पास पैसा था ही नहीं। केवल सात कवि सम्मिलित कर लिए गये थे तथा ऐसा कोई दृष्टिकोण नहीं था कि इस संकलन के माध्यम से विशिष्ट आन्दोलन को आरम्भ किया जाए। मेरा अपना ख्याल है, यह 'अज्ञेय' जी की बाद की कल्पना है, जो कदाचित् 'परिमल' की योजना के पश्चात् उन के मन में उत्पन्न हुई। इस लिए 'तार सप्तक' अपने आरम्भिक रूप में अलग चीज़ है। वह प्रचारवादी आन्दोलन की उस शृंखला में नहीं है जिस में कि आगे के सप्तक चले हैं। क्यों कि साफ है, साहित्य प्रचार या संस्थाओं द्वारा नहीं लिखा जाता। आन्दोलन सृजन नहीं करता। वह नये सृजन का सामूहिक परिणाम होता है। लिखता व्यक्ति है। संस्था से उसका क्या सम्बन्ध? संस्था उसके माध्यम से परिभाषित हो सकती है। नयी कविता का आन्दोलन चल कर कितने दिन रहा और अब क्या हो रहा है उस का? उस में कुछ इने-गिने कवियों का ही कृतित्व अच्छा आया, बाकी कवि आन्दोलन करते रहे। वही सेकंड रेटर। मैं तो उसके एक बड़े अंश को नवछायावादी कविता कहता हूँ। छायावाद की तरह यह भी 'पैटर्निस्टिक' कविता हो गई है। जगदीश गुप्त से और पूछ लीजिए।

परसार : इस तरह का आरोप 'तार सप्तक' के कुछ कवियों पर भी लगाया जाता है। आप के इस कथन को ध्यान में रख कर 'तार सप्तक' की सामग्री पर विचार किया जाये तो उस में अधिकतर कविताएं छोड़ देनी होंगी। आप का क्या ख्याल है, अगर आप 'तार सप्तक' के सम्पादक होते तो क्या करते?

माथुर : मैं 'तार सप्तक' की बहुत सी कविताएं काट देता। लेकिन सचाई यह है उनका समग्र प्रभाव निश्चय ही छायावाद से हट कर है। नवीन जी के 'जूठे पत्ते' उन्हीं दिनों प्रकाशित हुई थी। रचना व्यक्तिवादी है लेकिन वह छायावादी नहीं नरेन्द्र शर्मा की कविता 'जग म तो पूर्ण पुष्प सी यह पूनो / मन आज खिली क्यों, अथवा ग्रीष्म की दोपहर—'आता जाता गजनेरी सांड / सड़क पर चलता

आता है पठार' जैसी कविताओं से लगता था टूटने का क्षण आ चुका है। लेकिन नरेन्द्र शर्मा, बच्चन, भगवती बाबू और उन के सम-कालीन, समवयस्कों को पता नहीं चला कि टूटन किधर है। उसकी दिशा किस ओर है। हम जानते थे और इसी लिए 'ब्रेक' कर के चले। क्योंकि हम नयी 'रियेलिटी' अनुभव कर रहे थे। कविता के नये मूल्य के प्रति सजग थे। मैं मानता हूँ, 'तार सप्तक' में कुछ कविताएं बहुत कमज़ोर हैं। स्वयं 'अज्ञेय' की कुछ कविताएं कमज़ोर हैं। प्रभाकर माचवे की कविता में उखड़ापन है। रामविलास शर्मा के समर्थ सानेटों को छोड़ कर 'धरती पुत्र' जैसी कविताओं में क्या उपलब्धि है? वात्स्यायन जी की रचनाओं के बारे में तो मुझे पहले से संदेह था, क्यों कि तब तक मैं उनकी बहुत सी कविताएं पढ़ चुका था। 'हिय हारिल' और 'विद्रोह' 'ठहर ठहर आततायी जरा, सुन जा' निश्चय ही संकलन के योग्य नहीं है। एक कविता 'तार सप्तक में ज़रूर रहनी चाहिये थी—'घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ।' बाकी कविताएं साधारण थीं। 'अज्ञेय' जी को दरअस्ल सम्पादन करना चाहिए था, कविताएं संकलन में नहीं देनी चाहिए थीं।

मुद्रा : ऐसा लगता है, 'तार सप्तक' के पश्चात् जो लिखा गया उस में बहुत कम स्थायी महत्व का रहेगा। क्योंकि आन्दोलन चलाने से, जैसा कि आप ने बताया, साहित्य नहीं लिखा जाता। छायावाद से लगा कर आज तक की कविता के सन्दर्भ में आप हिन्दी काव्य के भविष्य के सम्बन्ध में क्या सोचते हैं?

माथुर : मैं सोचता हूं 'लिट्रेचर' में कोई समझौता नहीं होता। कितने रहेंगे और कितने का कृतित्व शेष रहेगा इस में बहुत संदेह है। मैं जब अपने आगे की पीढ़ी के बारे में सोचता हूँ तो मुझे लगता है उस में पिछला प्रभाव उसी तरह बरकरार है जिस तरह कुछ काल तक छायावादोत्तर पीढ़ी में रहा। भारती है आगे की पीढ़ी में जिस का कृतित्व अपने ढंग का है। कैलाश वाजपेयी में सम्भावनाएं हैं यदि उन में से गीत कार वाला व्यक्ति और सिर्फ तेवर ही तेवर वाला रूप हटा दिया जाये। दूसरे सप्तक में रघुवीर सहाय, शकुन्त माथुर, नरेश मेहता, हरिव्यास और भारती में मुझे निकटता नज़र आती है कि मैं ने उस तरह से अपने को व्यक्त नहीं किया।...वैसे मैं सोचता हूं, छायावाद के पश्चात् वे कौन सी कृतियां ठहरेंगी तो मेरा ध्यान

निराला की 'राम की शक्ति पूजा' की ओर जाता है। 'वनबेल' और 'सरोजस्मृति' भी भूली नहीं जायेंगी। ये ही कुछ कविताएं समूचे छायावादी काव्य की तुलना में पर्याप्त हैं। उन में मिल्टनीय ऊंचाई है। वे उस युग की बड़ी उपलब्धि हैं। छायावाद के बाद तो, मुझे संदेह है, जो लिख रहे हैं उन में कितने ठहरेंगे। ठहरता वह है जो अन्दर से जीता है। जिसमें सामाजिक प्रतिष्ठा का लोभ नहीं होता और जो यह नहीं सोचता जो कुछ मैंने किया है उसके बूते पर जीवन भर प्रतिष्ठा पाता रहूँ—यश अर्जित करता रहूं, वही भीतर से 'ग्रो' करता है। १९३९ में मुझे बाम्बे टाकीज़ में गीतकार की नौकरी प्रस्तावित की गई थी। मैं बड़ा खुश था। निराला जी को ज्ञात हुआ तो बोले, 'क्या अपनी कलम को पेट से बांधोगे? जो पेट भरेगा वैसी कलम चलवायेगा।' यदि कविता सामाजिक प्रतिष्ठा और पद और पुरस्कार पाने के लिए लिखी जाये तो क्या वह कविता रहेगी? सत्य के साक्षात्कार की निर्मम अभिव्यक्ति का ही मूल्य आंका जायेगा।



स्वतंत्रता के पश्चात् साहित्यिक उपलब्धियाँ

—प्रभाकर माचवे

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की सभी १५ संविधान-सम्मत भाषाएं अधिक आत्मनिर्भर बनीं। उनमें आत्माभिमान, अस्मिता-बोध और "हम भी किसी से कम नहीं हैं" यह भावना प्रबल मात्रा में बढ़ी। इस कारण से साहित्य सर्जन और साहित्य-प्रचार के लिए आवश्यक सभी साधनों और उपायों में वृद्धि हुई। १९४७ में जहां २० विश्वविद्यालय थे, अब ९० हैं; जहां २० रेडियो स्टेशन थे वहां अब ७० से अधिक हैं; "दूर दर्शन" (टी० वी०) एक नई संभावना मौखिक साहित्य के लिए बढ़ी। अखबारों की संख्या में तो दस गुना वृद्धि संख्या और प्रसार में हुई। आज-कल प्रतिवर्ष २५००० पुस्तकें सभी भारतीय भाषाओं में (अंग्रेज़ी समेत) प्रकाशित होती हैं और उन में साहित्यिक महत्त्व की पुस्तकें एक-दो प्रतिशत मान लें, फिर भी यह प्रकाशन-कार्य बड़े पैमाने पर फैला और बढ़ा है। किसने कल्पना की थी कि १९७२ में हिन्दी का एक साधारण उपन्यास जेबी पुस्तक के रूप में पांच लाख की संख्या में छपेगा-बिकेगा ?

इस प्रकार से आबादी ही नहीं बढ़ी, शिक्षा के लिए भूख भी बढ़ी, नव-साक्षरता बढ़ी, साहित्य के विविध रूप बढ़े। पाठकवर्ग में बड़ी विविधता और प्रसार दृष्टिगोचर हुआ। हम अपनी संस्था साहित्य अकादेमी (केन्द्रीय) की ही बात करें तो जो स्वतंत्रता के सात वर्ष बाद स्थापित हुई फिर भी अब तक उस ने सभी भारतीय भाषाओं में ७०० से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित कीं, २०० से ऊपर

प्रसिद्ध लेखकों को ५००० रुपये की राशि के पुरस्कार से सम्मानित किया। यह सब राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता से पहले ब्रिटिश सरकार ने कब किया था?

अब मैं कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। और यह विचार साहित्य की काव्य, नाटक, उपन्यास-कथा, निबन्ध-आलोचना आदि विधाओं के अनुसार प्रस्तुत करूंगा।

काव्य—

यह सच है कि श्री अरविंद के 'सावित्री' महाकाव्य का सूत्रपात बहुत पहले हुआ था, पर प्रकाशन स्वातंत्र्योत्तर ही है। ऐसी श्रेष्ठ विचार-सघन काव्य-कृति अंग्रेजी में भी बीसवीं सदी में अन्यत्र महाकाव्यविधा में नहीं मिलती। भारतीय भाषाओं में कन्नड़ के 'कु० वे० पु०' (के० वी० पुट्टप्पा) के 'श्री रामायणदर्शनम्' काव्य में अरविंद-दर्शन और अध्यात्म-रामायण का समन्वय मिलता है। इस ग्रन्थ को और तेलुगु के श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के 'रामायण कल्पद्रुम्' को भारतीय ज्ञानपीठ ने एक एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया। अन्य भाषाओं में भी महाकाव्य-खंड काव्य लिखे गये होंगे, पर साहित्यिक गुणों में श्रेष्ठकृतियां कम हैं, लोकप्रिय कृतियां काफी हैं। वैसे हिन्दी में पंत जी के 'लोकायतन' की और मराठी में ग० दि० माडगूलकर के 'गीत-रामायण' की बड़ी चर्चा है।

महाकाव्य - खंडकाव्य की उपेक्षा मुक्तक कविताएं ही सभी भारतीय भाषाओं में खूब लिखी गईं। एक ओर तो इन कविताओं में प्राचीन स्रोतों-पुराख्यान, पुराणेतिहास, मिथक आदि के पुनराख्यान और पुनर्रचना का बड़ा विधान है, दूसरी ओर लोकगीतों और जनजीवन तक पहुँचने का इतिहास और पुराण की रूढ़ियों को तोड़ने की बड़ी चर्चा है। उदाहरण के तौर पर हिन्दी में ही दिनकर ने 'उर्वशी' बच्चन ने 'सिसिफेस बरक्त हनुमान', 'अज्ञेय' ने 'असाध्य वीणा', धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया', कुंवर नारायण ने 'आत्मजयी' (नचिकेता पर) ऐसे अनेक ग्रंथ मिलेंगे जिन में प्राचीन को आधार बनाया गया है। और ठीक उससे विपरीत 'इतिहासहंता' (जगदीश चतुर्वेदी) 'निषेध' जैसी रचनाएं हैं जिनमें 'न' कार प्रधान है। 'अ' कविता 'अस्वीकार', अनर्थ आदि 'अ' प्रधान बातें इन कविताओं में अधिक हैं। यही स्वर बंगला की 'क्षुत्कातर 'पीढ़ी' तेलुगु की दिगंबर कविता, मराठी के 'अ ब क ड ई', तमिल के 'क च ट त प' गुजराथी के 'रेमठ' आदि आन्दोलनों में दिखाई देती है। अंग्रेज़ी में लिखने वाले

भारतीय कवियों में कमला दास, अरविंद कृष्ण मलहोत्रा, प्रीतीश नंदी में यह विरोध और विद्रोह का स्वर प्रधान है।

नाटक

नाटक में अब परंपरित लेखन प्रायः नहीं के बराबर है। अनुवाद भी अधिक आधुनिक और प्रयोग धर्मी रचनाओं के हो रहे हैं: बैकेट, ब्रेख्ट, आइनेस्को आदि के नाटक हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मराठी, बंगला, कन्नड़, गुजराती आदि भाषाओं में खेले जा रहे हैं। कुछ नये नाटककार जो इधर उधर की विविध भाषाओं में अनुवादित हुए हैं, और जिन पर पश्चिम के नव्य-नाट्य की प्रतिच्छाया है—परंपरित नाटक से जुड़े हुए नहीं हैं। फिर भी गिरीश करनाड़ ने 'हयबदन' में कन्नड़ लोक नाट्य से प्रेरणा ली; खानोलकर ने मराठी में 'तमाशा' को आधार बनाया, उत्पलदत्त ने बंगला 'जात्रा' से स्फूर्ति ली। कश्मीर में भी 'बांड-जशन' को आधार बना कर कुछ नये व्यंग-नाट्य लिखे जा रहे हैं। पर यह कहा जा सकता है कि गये पच्चीस वर्षों में ऐसी कोई नाट्यकृति भारतीय भाषाओं में या भारतीयों ने लिखी हुई अंग्रेज़ी में नहीं लिखी गई जो आंतर्राष्ट्रीय साहित्य क्षेत्र का ध्यान आकृष्ट कर सके। कुछ भारतीय नाटक भारत के बाहर भी खेले गये हैं, पर वे इस प्रकार की कोटि में नहीं आते।

उपन्यास-कथा

इस क्षेत्र में भारतीय भाषाओं में विपुल कार्य हुआ है: नवीन मौलिक सर्जन के क्षेत्र में, विदेशी और देशी भाषाओं से अनुवाद के क्षेत्र में भी। ऐतिहासिक उपन्यास अब उतने अच्छे और बड़े नहीं लिखे जाते। जो लोग लिखते थे वे इन्हीं पच्चीस वर्षों के भीतर गुज़र गये, उदाहरणार्थ 'कल्कि' (तमिल), क० मा० मुनशी (गुजराती), वृंदावन लाल वर्मा (हिन्दी), नानक सिंह (पंजाबी)। मराठी में कुछ शिवाजी और पेशवा काल को लेकर उपन्यास लिखे गये हैं, यथा रणजीत देसाई का 'स्वामी' या 'श्रीमान योगी', बंगला की लेखिका महाश्वेता भट्टाचार्य ने झांसी की रानी लक्ष्मी बाई पर उपन्यास लिखा है, सिख इतिहास पर पंजाबी में नरेंद्रपालसिंह की एक उपन्यास-माला है।

परन्तु सामाजिक उपन्यासों में प्रादेशिक उपन्यास खूब लिखे गये हैं: आदि वासियों पर, हरिजनों, गिरिजनों पर, शहर की गंदी बस्तियों, झुग्गी-

झोंपड़ियों पर, समाज के उपेक्षित क्षत्रों पर। मसलन कोढ़ियों के जीवन पर एक उपन्यास गुजराती में है, एक पूरा पूरा उपन्यास मूक-बधिरों पर मराठी में है, या नट-बाजीगरों पर हिन्दी में रांगेय राघव ने लिखा है—'कबतक पुकारूं ?' सर्कस-जीवन पर एक उपन्यास दक्षिण की एक भाषा में है। ऐसे अलग अलग पेशों के अलावा एक पूरी जनजाति से सम्बन्धित उपन्यास कई हैं: उड़िया में 'खोंड' लोगों पर 'अमृत संतान' और असमिया में नागा जीवन पर 'हयारुहंगम्' को पुरस्कार साहित्य अकादेमी ने दिये हैं। गुजरात के पाटीदार समाज पर पन्नालाल पटेल और ईश्वर पेटलीकर के उपन्यास हैं, मराठी में वारली के आदिवासियों पर 'बली' उपन्यास है। भीलों पर हिन्दी में श्याम परमार का उपन्यास 'मोर-छाल' है तो गोंडों पर राजेन्द्र अवस्थी का 'सूरज किरन की छांव' पहाड़ी जीवन पर शैलेश मटियानी, जगदीश चन्द्र जोशी, यमुनादत्त वैष्णव आदि की रचनाएं हैं। आंचलिकता जो हिन्दी उपन्यास में नागार्जुन के 'बलचनमा' और फणीश्वर नाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' से चली सो अब राही मासूम रजा के 'आधा गांव', डा० शिव प्रसाद सिंह के 'अलग अलग वैतरणी' और विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के 'रीछ' तक अलग-अलग रूपों में उद्भासित हुई है।

यद्यपि निर्मल वर्मा ने कहा है कि चेखव के बाद आधुनिक कहानी की एक तरह से सारी संभावनाएं चुक गई हैं, फिर भी मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषण-परक कहानियां बहुत लिखी जा रही हैं—सभी भारतीय भाषाओं में। कुछ कहानियां अस्तित्ववादी दर्शन से भी प्रभावित हैं: अकेलापन, संत्रास, कुंठा, अजनबीयत, दुचित्तापन, बेगानापन, संबंधों की अर्थहीनता आदि उनके विषय हैं। दूसरी ओर पुराने ढंग की आदर्शप्रधान, दुनिया को बदल डालने की प्रतिज्ञा ले कर चलने वाली कहानियाँ अब भी लिखी जा रही हैं। आदर्शवाद और यथार्थ-वाद के दो छोरों को मिलाने की पुल बनाने की जो कोशिश प्रेम चन्द या शरतचन्द्र, खांडेकर या धूमकेतु, मारित्त वेकंटेश या कारूर में पाई जाती है, वह अब भी एक अंतःस्वर की तरह जारी है।

निबन्ध आलोचना

ललित-निबन्ध, हास्य-व्यंग, प्रवास-वर्णन, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा आदि गद्य-साहित्य के अन्य अंगों का विकास धीरे धीरे हो रहा है। साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत पुस्तकों में दस ऐसी विधाओं के ग्रंथ हैं: जैसे अन्नदाशंकर राय (बंगला में जापान का यात्रा वर्णन); मि० पा० सोमसुन्दरम्

(तमिल में पश्चिम का यात्रा वर्णन); पु० ल० देशपांडे (मराठी में व्यक्ति चित्र); दुर्गा भागवत (मराठी में ललित निबंध) आदि यहां गिनाये जा सकते हैं। परन्तु अब भी ऐसे देशों के साहसिक यात्रावर्णन कम हैं जैसे स्वराज्य से पहले राहुल जी ने तिब्बत यात्रा के लिखे थे, या विदेशी भाषाओं में अफ्रीका के विषय में हैं। ललित निबंधों में कहीं-कहीं बहुश्रुत लेखक की जानकारी का तो पता मिलता है, पर बहुत कम लेखक हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के 'अशोक के फूल' की तरह लिख सके हैं। हिन्दी में विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय जैसे एक-दो अपवाद मात्र हैं।

आलोचना की राह अब भी बहुत कठिन है। बहुत कम समीक्षकों ने पौर्वात्य और पाश्चात्य काव्य शास्त्र, साहित्य शास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन कर सौंदर्य या रस निष्पत्ति के सही प्रतिमान खोज निकाले हैं। संसार का चिंतन इतनी तेजी से बदल रहा है कि वैज्ञानिक दृष्टि के बिना न मानव का, न उसके समाज का न उसके मन का पूरा पता लगाना संभव है। हमारे आलोचक अभी भी भावुकता में भटक रहे हैं, या फिर उच्छिष्ट-जीवी ही हैं। आशा करें कि भविष्य में महान समीक्षक भी पैदा होंगे।



स्वातंत्र्योत्तर कश्मीरी कहानी : एक सर्वेक्षण

—शिबन कृष्ण रैणा

कश्मीरी-कहानी का जीवन-इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। आज से लगभग २१ वर्ष पूर्व 'कल्चरल कांगरेस' के तत्वावधान में हुई २५ फरवरी, १६५० ई० की साहित्यिक गोष्ठी में पहली कश्मीरी कहानी 'येलि फोल गाश' पढ़ी गई। इसके लेखक थे श्री सोमनाथ जुत्शी। इसके बाद 'कल्चरल कांगरेस' के ही अन्य प्रगतिशील सदस्य साहित्कारों ने कश्मीरी कहानी को अपना बहुमूल्य सहयोग देकर संवर्धित किया। इस साहित्यकार मण्डली में सोमनाथ जुत्शी के अलावा सर्वश्री अब्दुल अज़ीज़ हारून, दीनानाथ नादिम, नूर मुहम्मद रोशन' रहमान राही, मिर्ज़ा आरिफ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नादिम की 'जवाबी कार्ड' एवं 'शीन प्यतो-प्यतो', रोशन की 'नेहगट', हारून की 'जून' एवं 'भ्रम' राही की 'येलि सु थन प्यव', आरिफ की 'जय' आदि कहानियां कश्मीरी-कहानी-साहित्य के विकास की परम्परा में प्रारम्भिक रचनाएं हैं। 'कल्चरल कांगरेस' का गठन चूंकि प्रगतिवादी विचार धारा को लेकर हुआ था, इस लिए इन कहानियों के कथानक प्रायः कृषि-समस्या, राजनीतिक अशान्ति एवं अन्य सामाजिक समस्याओं से सम्बद्ध रहे। उन में प्रचारातमकता का पुट विशेष रूप से व्याप्त रहा।

सन् १९५३ ई० के बाद की कालावधि कश्मीरी-कहानी-साहित्य की महत्त्वपूर्ण कालावधि है। कहानीकारों का ध्यान पहली बार कहानी के टेकनीक की ओर गया। अब कहानी महज एक 'लेक्चर' न रही, अपितु वह मानव-चरित्र के गूढ़तम रहस्यों, उसकी समस्याओं एवं जीवन-दृष्टियों को मार्मिक ढंग

से प्रकाशित करने वाली विधा बन गई। इस प्रसंग में अख्तर मोहीउद्दीन का नाम गिनाया जा सकता है, जिन्होंने अपनी अनवरत एवं लगनशील साधना से कश्मीरी-कहानी-कला को नई दिशा दी तथा आने वाले कहानीकारो के लिए प्रयोग के नूतन मार्ग खोल दिये। (अख्तर के दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'सतसंगर' पर इन्हें सन् १९५८ ई० का साहित्य-अकादमी का पुरस्कार भी मिलचुका है।) इनकी कहानियों के कथानक पहली बार पैनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संयुक्त मिलते हैं। छोटे-छोटे वाक्य, नित्य व्यवहार में आने वाले उक्ति-प्रोग, सुगठित वाक्य-विन्यास आदि अख्तर की कहानी कला की विशेषताएं हैं। इनकी 'दन्दवजून', 'दरियायिहुन्दयेज़ार', 'दाग', 'कासिम साब', 'आदमछु अजब जाय', 'गहे ताफ गहे शुहुलं', 'चस' आदि कहानियां कश्मीरी-कहानी-साहित्य की उत्कृष्ट रचनाएं हैं। अख्तर की बहुप्रशंसित कहाकी 'चस' से एक गद्यांश उद्धृत किया जाता है। इसमें एक निरीह चूज़े की निर्मम मौत द्वारा कहानीकार ने मानव एवं मानवेतर चरित्र की स्वार्थ परायणता पर करारा व्यंग्य किया है। एक चूज़े पर दो नजरें एक साथ पड़ती हैं—कुत्ता उसे दबोचने को लपकता है और एक परोपकारी सज्जन उसे अपने दरबे में डाल देते हैं—यह सोच कर कि अपनी जातवालों से हिलमिल जायगा, मज़े करेगा। मगर, ओफ ! ठूंगें मार-मार कर अपनी ही जात वालों ने उसका बुरा हाल कर दिया, उसकी सारी खाल उधेड़ डाली। वेचारे की चिकनी-चिकनी हड्डियां बिल्कुल नंगी हो गईं। फरोपकारी सज्जन की आंखें पुरनम हो गईं। वे निरीह चूज को हाथों में उठाकर दार्शनिकों की भांति उसे देखने लगे :

> म्ये रोटा यि चोल न अथस क्यथ तुलुम। अम्य करन छ्ट-छ्ट। लोति लोति ओस पची पची पची करान। क्याह ताम ओस वनान। जाहिर अदसा वन्य मरब गोख खोश ? चे हासा वोनमय। इन्साना, होन्या, गांटी, कोकरा। दो पमय गोख खोश। ब मरवन्य। दिम न बाँग, वन्य भाव न ठूल, वन्य कर न ब किहिं। ब कर ती येमि सात्य सारिय गछन खोश। ब मर। पची पची पची...............

अर्थात्, मैंने उसे पकड़ लिया। वह भागा नहीं। उसे हाथों में उठा लिया। वह फड़फड़ाया नहीं। केवल धीमी आवाज़ में 'पची पची पची' कर रहा था। शायद कह रहा था, अच्छा अब मैं मरता हूँ, हो गये खुश ? मैं तुम से कह रहा हूं, ऐ इन्सान, ऐ कुत्ते, ऐ मुर्गियो ! मैं अब मरता हूँ। अब कभी बांग

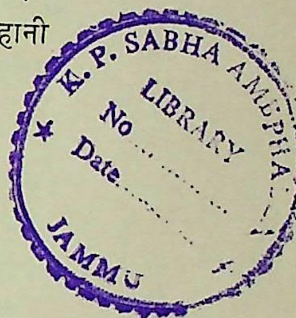
न दूंगा, कभी कुछ न करूंगा। मैं वही करूंगा, जिससे सभी खुश हों। अच्छा, मैं मरता हूँ। पची पची पची.........।

इसी प्रकार, इनकी 'दरियाहिहुन्द येजार' कहानी व्यक्ति को यौन प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करती है। इस प्रवृत्ति की तीव्रता एवं व्यापकता को कहानीकार ने एक वयोवृद्ध दम्पत्ति के माध्यम से सिद्ध किया है, जो बुढ़ापे में भी अपनी यौन-उत्कण्ठा की सन्तृप्ति-हेतु विवेक खो देते हैं। 'कासिम साब' कहानी में एक ऐसे नवोदित लेखक की उन चाहतों का मर्मस्पर्शी वर्णन है, जिन की पूर्ति-हेतु उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती है। अख़्तर की एक अन्य बहुचर्चित कहानी 'गहे ताफ गहे शुहुल' आधुनिक सभ्यता में पल रहे उन हृदयहीन एवं आडम्बरवादी व्यक्तियों पर व्यंग्य करती है, जिनकी प्रत्येक चेष्टा, जिनके प्रत्येक कार्य-व्यापार तथा जिनकी प्रत्येक बात में स्वार्थ, दिखावट एवं अहम्मन्यता की गहरी परतें चढ़ी हुई हैं।

एक सफल प्रयोगवादी कवि होने के साथ-साथ अमीन कामिल कश्मीरी के एक सुलझे हुए कहानीकार भी हैं। अख़्तर के बाद कश्मीरी कहानी-कला को सम्वर्धित करने में इनका विशेष हाथ है। अपने 'कथिमंज़ कथ' शीर्षक कहानी-संग्रह की भूमिका में कामिल ने कहानी-लेखन की ओर प्रेरित होने के प्रसंग में लिखा है :—'जो ख्याल शेर न बन सका, उसे मैंने कहानी का रूप दे दिया और इस तरह से मेरी कहानियाँ वजूद पा गईं......।' कहानियों में नये प्रयोग करने के विषय में इन्होंने आगे चलकर लिखा है—'मैं कहानियों में नये प्रयोग करने के खिलाफ नहीं हूँ। मगर ये प्रयोग ऐसे होने चाहिएं कि पाठक को कहानीकार के साथ-साथ फलागम तक पहुंचने में कोई बाधा न आमे......।' ('कथिमंज कथ' कहानी-संग्र में कामिल की १० कहानियां आकलित हैं। इस संग्रह पर कहानी कार को जम्मू एवं कश्मीर-प्रदेश की 'कल्चरल अकादमी' का सन् १९६८ ई० का पुरस्कार मिल चुका है।) ये सभी कहानियां जीवन को नये परिवेश, नये अन्दाज़ के साथ चित्रित करती हैं। सभी के पीछे कहानीकार की पैनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रबल है। 'लाग', 'नो व तावन', 'बेछि', 'पोतकल,' 'अश्यफयार' आदि कहानियां कश्मीरी-कहानी-साहित्य की नव्यतम प्रवृत्ति, यानि मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का सफल प्रतिनिधित्व करती हैं।

'लाग' कहानी में एक ऐसे सहृदय कम्पाउण्डर के आत्मोत्सर्ग का हाल दर्ज है, जो क्षय रोग से बुरी तरह ग्रस्त एक सुन्दरी का मनोवैज्ञानिक तरीके से उपचार करता है, उसे प्यार देता है और बदले में स्वयं उस संक्रामिक रोग का

शिकार हो जाता है। (स्वास्थ्य-लाभ करके सुन्दरी उसे इस हाल में छोड़ कर न जाने कहां चली जाती है।) कहानी मानव-चरित्र की स्वार्थवृत्ति एवं उसके नानाविध स्वरूप पर कटुव्यंग्य करती है। 'नोव तावन' दो कालिज-छात्राओं—शीला और जुबैदा की एक ऐसी कहानी है, जो समाज से छिपकर समाज के ही किन्हीं तथाकथित चरित्रवान् 'बंगलेवालों' एवं 'कारवालों' की वासना को सन्तुष्ट करने के लिए मजबूर हो जाती हैं। शीला न जाने कैसे इस चक्कर में पहले से ही फंस चुकी होती है और वह अपनी भोली (?) सहेली जुबैदा को भी छल से उस 'अड्डे' पर ले जाकर, उसे वहां भेट करने में सफल हो जाती है। कहानी का नाटकीय अन्त शीला और जुबैदा के इस सम्भाषण से होता है:—



> शीलन कोर क्याहताम जुरत ह्यू,त मज़ामत सान वछ जुबेदस कुन—'स्ये ह्य दीज़ि माफी। चे बुछुत वन्य स्ये कहिन्दि खातर प्यव यि करुन। व आ सस स्यठा बेवस त मजबूर।'
>
> 'चान्य मजबूरी छि बरहक'—जुबेदा सपज़ संजीद त वोननस—वन्य गव जि चेति अमिस काँह नव डालय गुजारथ न। ब छस अन्य मारवातलन चे व्रोंह ज़ालस ला जमच। स्ये गयाव फ्रट कुनि नविस तावनस मा लजिस।'

अर्थात्, शीला ने तनिक साहस बटोरकर पश्चात्ताप करते हुए जुबैदा से कहा—'मुझे माफ करना बहिन! तुमने खुद देख लिया होगा कि यह सब मुझे क्यों और किन हालात में करना पड़ा। मैं विवश और मजबूर थी।' 'तुम्हारी मजबूरी उचित ही थी'—जुबैदा ने संजीदगी से जवाब दिया—"हां, एक बात है। तुमने भी कोई नई चीज़ 'उसे' भेंट नहीं की। उस दुराचारी ने तो मुझे बहुत पहले अपने जाल में फंसा लिया था। मैं तो केवल यह सोच रही थी कि कहीं किसी दूसरी मुसीबत का मुंह आज न देखना पड़े।"

प्रस्तुत कहानी आज की तथाकथित विकसित सभ्यता की आड़ में फैल रहे अनाचार एवं व्यभिचार पर तींखी चोट करती है।

'बेछि' एक कर्त्तव्यनिष्ठ डाक्टर अशरफ और एक जवान भिखारिन मोगल की कहानी है, जिस में एक भिखारिन के जीवन की विवशताओं तथा उसके व्यक्तित्व के साथ घुले-भिले उन संस्कारों का अध्ययन है, जिनके प्रभाव से उसे इस संसार में कोई भी भला आदमी नहीं दिखता। डाक्टर अशरफ ने उसे इसलिए मुँह नहीं लगाया था; क्योंकि वह जवान थी, सुन्दर थी, बल्कि न

जाने क्यों दयावश वह उसे यदा-कदा अस्पताल के बाहर मंडराती देख दो-एक पैसे दिया करता था। एक दिन जब भिखारिन एक सुन्दर-स्वस्थ शिशु को बाहों में लिये अस्पताल के अन्दर दाखिल हुई, तब डाक्टर अशरफ के आश्चर्य की सीमा न रही। वह सोच भी न सकता था कि भिखारियों के भी ऐसे सुन्दर स्वस्थ बच्चे हो सकते हैं। वह 'शिशु प्रतियोगिता' में भाग लेने के लिए इस बच्चे को ले जाता है। डाक्टर अशरफ का बच्चा सर्वश्रेठ घोषित किया जाता है। पुरस्कार की राशि तथा बच्चे को जब अशरफ उस भिखारिन को लौटाता है, तब वह केवल इतना सोच पाती है :—

> मोगलि तोर सिर्फ यूतुय फिकरि जि डाक्टर सा बस छि गरि
> क्या हताम शादी आ समचा यि द्रायि कमर मंज तेबर त
> नेरान नेरान भावन डाक्टर अशरफ सो कुन सो नज़र जनत
> वो ननस—'चे क्याहजि को रुथ में ठठ। मे शेर्योव सिर्फ
> चानि मोख आबे।

अर्थात्, मोगल केवल इतना समझ पाई कि डाक्टर के घर पर आज कोई महोत्सव है, तभी मुझे इतने सारे रुपये दे रहे हैं। वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकली और डाक्टर अशरफ की ओर ऐसी नजर फैंकी, मानों कह रही हो—'मेरा मजाक क्यों उड़ाया तुमने ? मैं तो आज केवल तुम्हारे लिए सजधज कर आई थी।'

'पोतकल' एक ऐसी निपूती ग्रामयुवती की कहानी है, जो विवाहोपरान्त नौ वर्षों से अपने मायके से दूर ससुराल में रह रही है। इन नौ वर्षों में उसके कोई सन्तान न हुई, यही दुःख एक अभाव बनकर उसे दिन रात कचोटता रहता है। एक रात वह अपनी बूढ़ी सास की नजरें बचा कर अपने मायके जाने की ठान लेती है। वह हांफती-भागती हुई चली जाती है। मायके का गांव निकट आ जाता है। वहां की प्रत्येक वस्तु देखकर उसकी नौ वर्ष पुरानी स्मृति ताजा हो उठती है और उसे अपना बचपन याद आ जाता है। मायके की नदियां, पेड़, झोपड़ियां, मिट्टी आदि उसे असीम आनन्द देते हैं। वह झूम उठती है। मायके की नदियां देख उसका हृदय भावविभोर हो जाता :—

> अमि फीर बुठन प्यठ ज्यव त पत्थर बिहिथ लज अथ जोयि
> प्यठ त्रेश चेनि। अख दोछ, ज दोछ, त्रे दोछ—यि गयि
> चवान जनत वुम्बरि जांह आबुक बुथ ओसुन न वुछमुत।
> 'कोताह म्यूट छु यि म्यानि मालिन्युक आबे अमि सूंच।...अमि

पत घुतुन बुथिस ग्राब थोम्बा दा रिथ। लजसया मालिनिक ग्राबा, वालिज हा शेहलेयम'—यि वनिय वछ थोद त द्रायि गामस कुन।

ग्रर्थात्, उसने ग्रपने होठों पर जीभ फेरी ग्रौर नदिया के किनारे के पास बैठ कर उसका पानी पीने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार—ग्रौर वह पीती गई, जैसे उम्रभर कभी पानी पिया ही नहीं हो। वह सोचने लगी, मायके का पानी भी कितना मीठा होता है......। इसके बाद उसने मुंह धोया। भरे कण्ठ से निकल पड़ा—रे मायके के पानी। तुझ पर बलिहारी जाऊं, मेरे हृदय को तूने ग्रसीम ठण्डक पहुंचाई।

ग्रन्त में, उसे सहसा ध्यान ग्राता है कि वह निपूती है। (मायके में भी उसकी कद्र न होगी।) उस का पति कल ही तो पास के एक गांव में एक जोगी से मिलने गया है। सुनते हैं, पहुँचा हुग्रा जोगी है। शायद उसका तावीज काम कर जाये। मुझे घर में न देख पति की सारी मेहनत बेकार हो जायगी। ऐसा विचार करते हुए वह मायके न जाकर उल्टे पांव ससुराल की ग्रोर मुड़ जाती है। 'पुत्रकामना'—प्रवृत्ति के व्यापकत्व को सिद्ध करने के लिए कहानीकार ने निपूती ग्रामयुवती के ग्रन्तर्द्वन्द तथा उसकी मानसिक गति-ग्रवगति को सफलता पूर्वक चित्रित किया है।

'ग्रश्यफ्यार' एक ऐसी निर्भीक, कर्मठ किन्तु निर्धन एवं विवश युवती के प्राणोत्सर्ग की कहानी है, जो दूसरा विवाह केवल इस लिए करती है कि पहले पति की एकमात्र निशानी गुलामा के पालन-पोषण का कोई मार्ग निकालना जरूरी था। भाग्य की विडम्बना, दूसरा पति भी कुछ ही ग्ररसे बाद चल बसता है। वेचारी ग्रश्यफ्यार को स्वयं घर का भार संभालना पड़ता है। वह लोगों की रजाइयाँ बनाती है, उनमें डोरे निकालती है, 'कांगड़ियों' की मरम्मत करती है ग्रादि ग्रादि। उसका पुत्र यदि थोड़ा सा भी समझदार होता, तो शायद ग्रश्यफ्यार को यह सब न करना पड़ता। किन्तु, वह निकम्मा केवल खाने के समय हाजिर हो जाता ग्रौर बाकी समय जुग्राड़ियों की संगत में या फिर सैर-सपटे में बिताता। ग्रपनी इस निकम्मी ग्रौलाद की बदौलत ग्रश्यफ्यार को कितने ही दुःख झेलने पड़ते हैं। ग्रन्त में, एक दिन पुलिस गुलामा को पकड़ कर ले जाती है; क्योंकि उसने किसी जुग्राड़ी का सिर फोड़ दिया है ग्रौर उस की मां इस सदमे को सहन न कर ग्रपने प्राण दे देती है। ग्रन्तर्मन को छूने वालीं यह कहानी एक मां की संवेदनाग्रों को खोलकर रख देती है।

अमीन कामिल की अन्य कहानियों में उल्लेखनीय हैं—'कोकर जंग', 'प्यव्डपुरुन', 'जहनमी', 'आन', 'फाटक' आदि। ये सभी मानव की विभिन्न स्वभावगत प्रवृत्तियों, स्थितियों, उसकी विवशताओं तथा आकांक्षाओं का सुन्दर चित्रण करती हैं।

बन्सी निर्दोष की 'मस्तकिलिफ', 'यिति अख एहसास' आदि कहानिया मानव-मन की विभिन्न स्थितियों, विशेषकर मानसिक ग्रन्थियों को खोलने का प्रयास करती हैं, जिनसे यौन-प्रवृत्ति कभी 'सुन्दर' और कभी 'असुन्दर' बन जाती है। 'मस्तकिलिफ' एक नर्स के निष्काम सेवाभाव की मार्मिक कहानी है, जिस की सेवा-सुश्रूषा अस्पताल के कई रोगियो में नूतन जीवन दायिनी शक्ति का संचार करती है। एक लोलुप रोगी की संकीर्ण दृष्टि तब खुलती है, जब उसे मालूम हो जाता है कि उस वार्ड में उस नर्स का पति भी एक रोग-शय्या पर कई दिनों से पड़ा हुआ था और वह वही था, जिस की कल रात मृत्यु हो गई। (इसके बाद नर्स को किसी ने नहीं देखा कि वह कहां गई।)

'यिति अख एहसास' निर्दोष की बहुचर्चित कहानी है। कहानी के कथानक का केन्द्र एक छाता है, जिसे एक परोपकारी सज्जन उमड़ती बरसात में किसी अनजान लड़की को दे देते हैं और खुद भीगते हुए उसके पीछे-पीछे हो लेते हैं। घर पहुँचकर वह लड़की उस सज्जन को छाता लौटाना भूल जाती है। पांच वर्ष तक वह सज्जन, जब-जब पानी बरसता, लड़की के घर के बाहर बिजली के खम्भे की आड़ में खड़ा रहता —इस उम्मीद में कि शायद उसका छाता वह लड़की लौटा दे। इस बीच लड़की की शादी हो जाती है। एक दिन फिर पानी बरसता है। वह सज्जन पूर्ववत् खम्भे के नीचे उपस्थित हो जाता है। इस बार बिमला की नजर उस पर पड़ ही जाती है। उसे पांच वर्ष पहले की घटना याद आ जाती है। बड़ी मुश्किल से छाता ढूंढ निकाल कर वह उसे देने के लिए नीचे गली में आ जाती है। दोनों के बीच जो वार्त्तालाप होता है, वह जहां एक ओर कहानीकार की पैनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि की सूचना देता है, वहीं दूसरी ओर कहानी के अन्त को एकदम कुतूहलपूर्ण बना देता है :—

'तल कनि छि यि मोमूली चीज, म्ये कति आस छेतिरिहंज फिकिर।'
अद कमिच फिकिर आस अमिस'—यि पुछ मे मनन।
रछ खण्ड दम दिथ त शाह सम्बा लिथ वो न तम्य—
'तमि दोह ओस ना रूद, म्ये दोप खबर......।'

अर्थात्, 'मुझे छाते की चिन्ता कहां थी, यह तो एक मामूली चीज़ है।
'फिर इसे किस की चिन्ता थी'—यह बात दिल ने मुझ से पूछी।
तनिक रुक कर तथा दम सम्भाल कर उसने अपने-आप कहा—
'उस दिन जोर से पानी बरसा था ना, मैंने सोचा कहीं.........।'

(कहानीकार ने अन्तिम सम्भाषण की पूर्त्ति का कार्य सहृदय पाठकों के लिए छोड़ दिया है।)

दीपक कौल की विशिष्ट कहानी 'राघकाकन्य ब्रार' में पोशकुज नाम की एक बुढ़िया की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन अतीव सुन्दर बन पड़ा है। पड़ोसियों ने क्या खाया, उनके यहां कौन आया, कब आया, क्यों आया आदि जिज्ञासाएं पोशकुज के स्वभाव की चुनी हुई विशेषताएं हैं। एक दिन उसने देखा कि एक पड़ौसी के यहां कोई व्यक्ति कोई चीज़ टोकरी में छिपा कर ले जा रहा है। खूब प्रयत्न करने पर भी वह इस टोकरी के रहस्य का पता लगाने में असमर्थ रहती है। एक दिन पड़ोसी की नव वधू 'चोर-चोर चिल्लाती हुई आंगन में आ जाती है। भारी भीड़ गली में एकत्र हो जाती है। चोर को पकड़ने के लिए दो-चार लठैत घर में घुस जाते हैं। चोर को पकड़ लिया जाता है। चोर और कोई नहीं, वरन् पोशकुज होती है। बुढ़िया की लाज रखने के लिए पड़ोसी महाशय भीड़ को यह कहकर शान्त करते हैं कि जिसे चोर समझा गया, वह दरअसल एक बिल्ली थी।

उक्त कहानियों के अतिरिक्त सूफी गुलाम मुहम्मद की 'मालद्यत', डा० शंकर रैणा की 'वन्य कहंज वार्य', उमेश कौल की 'अड़्य कथ', भारती की 'आबनूसुक रोलर : जिगरच मशीन'। हरिकृष्ण कौल की 'ताफ', रतन लाल शान्त की 'छायि गत्य', फारूक मसूदी की 'स्यठा मोमूली', ताज बेगम की 'अस्तान डेडितल', गुलाम नबी शाकर की 'अवल सोंतक्य पोश', गुलाम नबी बाबा की 'तलखी' आदि कहानियां कश्मीरी - कहानी - साहित्य की उत्कृष्ट रचनाएं हैं।



मुड़ती दिशायें

—छत्रपाल

पत्र के स्थान पर रश्मि को जो कुछ मिल गया था उसे देख कर वह अत्यन्त उल्लसित हो उठी। फोटौ पीली पड़ गयी थी, एक कोना दोहरा हो कर फट भी गया था। हाय...डैडी कितने यंग और हैंडसम लग रहे हैं, और साथ वाली औरत... क्या मम्मी हैं, कितनी स्लिम और स्मार्ट हैं, बिल्कुल पहचानी नहीं जातीं। मम्मी को आज सरप्राइज दूंगी। जिस पत्र के लिए वह इतनी चिंतित थी उसे भूल गयी। फोटो पीठ पीछे छिपाये, दबे पैरों वह सुपारी काटती मम्मी के पी पछे जा खड़ी हुई और उनकी आंखें मीच लीं।

अरे-अरे यह क्या कर रही है, मेरी उंगली कट जायेगी।

जब तक मैं कहूँ नहीं, आंखें मत खोलियेगा।

अच्छा ले, उन्होंने सरौता रखते हुए कहा।

आगे आकर फोटो उसने उनके सामने कर दी।

अब खोलिये।

उन्होंने आंखें खोलीं तो फोटो देख कर चौंक पड़ीं।

फोटो से तो आप पहचानी नहीं जातीं, कितनी सुन्दर थीं।

वह उनके पास बैठ उन से लिपट गयी।—आप कुछ बोलतीं क्यों नहीं? डैडी को देखकर स्तब्ध र ह गईं हैं न। उन्हें फोटो की ओर एकटक देखते देख कर बोली।

सवित्री ने एक बारगी लड़की को देखा और फोटो परे फक दी।

तेरी आंखों पर पट्टी बन्धी है, देख नहीं रही यह मैं नहीं हूं। उन्होंने लड़की को डांट दिया। वह अवाक् रह गयीं।

आप नहीं हैं ? वह फर्श से फोटो उठा कर उस औरत को मम्मी से मिलाने लगी। एक मिनट-भर ध्यान से देखने पर ही उसने जान लिया कि फोटो में डैडी के साथ कोई और ही औरत है, कम से कम उस की मम्मी नहीं।

तो फिर यह कौन है ? ठण्डे पड़े उत्साह से उसने पूछा।

मैं क्या जानूं, तेरे डैडी आने वाले हैं उन्हीं से पूछ लेना। अपनी आवाज के गुस्से और उत्तेजना को गले में ही सोखते उन्होंने उत्तर दिया। भीतर ही भीतर एक प्रश्न चिह्न कुलबुला रहा था। वह दांत भींच कर चुपचाप सरौता चलाती रहीं।

मम्मी आप कुछ बोल क्यों रहीं, डैडी आते हैं तो पूछ लेंगे।



जस्टिस रघुवीर ठाकुर घर पहुँचे तो उन्हें घर भर पर एक अजीब मनहूसियत छायी हुई दिखायी दी। वातावरण भी कुछ बोझल-बोझल था। उन्होंने रश्मि को आवाज दी और टाई की नाट ढीली कर उसकी प्रतीक्षा में एक कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने बूट भी खोल दिये पर कोई नहीं आया। पत्नी को पुकारा, उसे आता देख कर वह समझ गये कि अवश्य ही कोई बात हुई है। वह पास आकर खड़ी हो गईं। हाथ पीछे थे।

यह पीछे क्या छिपा रखा है तुमने। उन्होंने लापरवाही में पूछा।

यही पूछने तो आयी हूँ। उसने झट से फोटो उनकी आंखों के सामने कर दी। चर्र...उनके भीतर कुछ तेजी से उधड़ गया है।

कौन है यह ? किस की फोटो है ? वह मौन फोटो की ओर देखते रहे जो अब उनके हाथ में थी।

मैं पूछ रही हूँ कौन है यह ? अपनी बात का उत्तर न पा कर वह तमतमा उठी।

मुझे कुछ याद नहीं कि यह कौन है, हम ने फोटो कब उतरवाई।

तुम मेरे सामने झूठ नहीं बोल सकते। सच-सच बताओ यह कौन है और तुम्हारे इससे क्या सम्बन्ध हैं ? पत्नी के स्वर में आदेश था। स्थिति काफी हद तक बिगड़ गयी है, उन्होंने जायजा लिया। अब बिना कुछ बताये छुटकारा नहीं। लेकिन एक बार कुछ कहने से उम्र भर के ताने-बोलियां हो जाएंगी।

इसका अर्थ हुआ मेरी आशंका सत्य है। मेरे साथ नाहक इतने साल नाटक करते रहे, इसी को बुला लेना था।

सावित्री, यह मत कहो, तुम्हारे प्रति मैं पूरी तरह इमानदार रहा हूं......

और तुम्हारी ईमानदारी का सार्टिफिकेट है यह फोटो! उनकी बात काटते वह व्यंग्यात्मक लहजे में बोली।

जिस औरत के साथ चौथाई सदी बिताई और वह भी पूरी ईमानदार से, उसी के मुंह से ऐसी बातें सुन उन्हें धक्का लगा। आशंका तक नहीं थी कि उनकी आधुनिका पत्नी इतनी शंकालु और संकीर्ण - हृदय होगी। उन्हें ऐसी औरत का पति होवे पर शर्म महसूस हुई।

मैं तुम्हें नहीं बता सकता कि यह कौन है। उन्होंने कठोर स्वर में कहा।

रश्मि...उसने बेटी को आवाज़ दी ?

वह चौंक पड़े—उसे क्यों बुला रही हो ?

ताकि वह भी यह सब सुन देख ले।

तुम नाहक बात को बढ़ाये जा रही हो। उन्हें झुंझलाहट होने लगी।

क्या है ? लड़की ने कमरे में पांव रखते ही पूछा।

सावित्री, कुछ मत कहना तुम्हें मेरी कसम......

उसने फोटो देख ली है। वह मुझ से पूछ भी रही थी।

रश्मि, अपने डैडी से पूछ कि यह कौन है ? फोटो को आग्नेय दृष्टि से देखते हुए उसने कहा और भुनभुनाती हुई कमरे से बाहर चली गयी। लड़की को इस विषय में वह क्या बतायें ! वह सोचने लगे।

वह उतसुकता से उनके चेहरे की ओर देख रही थी।—हां तो, बताइये ...

बताने को कुछ हो तो बताऊं...तुम लोगों को आज हो क्या गया है ?... मुझे क्यों परेशान कर रहे हो ! उनकी ऊंची आवाज सुन कर वह सहम गई।

पत्नी और लड़की का एक-एक प्रश्न उन्हें कुरेद गया। एक - एक प्रश्न इल्जाम है—कष्टकारक, पर इससे भी अधिक मर्मांतक है वह सब कुछ जो मां-बेटी ने याद दिला दिया है। वह बाहर जाने के लिए तैयार होने लगे। सोच कर आये थे कि उद्घाटन समारोह में बेटी को भी साथ ले जायेंगे, पत्नी को भी। पर यहां तो सीन ही बदल गया है। ड्राइवर को गाड़ी निकालने के लिये कहा। किसी ने नहीं पूछा कहां जा रहे हैं......अभी तो आये हैं। वह भी बिना किसी से बात किये पिछली सीट पर बैठ गये। पत्नी के कमरे की ओर देखा, दरवाजे पर लगा पर्दा हिल रहा था। लड़की के पांव झाँक रहे थे। अकेले बैठते ही अस्तित्व-हीन स्मृतियां समय की कब्रों से उठ कर एकदम नये अर्थ लेकर आसपास तैरने लगीं।

चलो......

●

गाड़ी चल पड़ी थी। वह उनके कन्धे पर सिर झुकाये उदास चित बैठी थीं। बीच-बीच में बातें करते हुये कभी रो पड़ती थी। वह ढारस बंधा रहे थे।—शहर में कितने ही डाक्टर हैं, कोई न कोई तो मान ही जायेगा।

अनु, वह लड़की उनकी बात सुन सिसक पड़ी।

तुम जल्दी से डैडी को चिट्ठी लिख कर मेरे बारे में बता दो। अब छिपाना मुश्किल है।

डैडी ! उनकी आंखों से एक चेहरा गुजर गया—सख्त और रौबीला। जिसकी हर बात आदेश होती। उनसे इस किस्म की कोई आशा रखना बेकार है।

वह पतझड़ के दिन थे। शाम गहरा रही थी जब उन्होंने शहर को आखरी बार देखा। लोग अपने-अपने काम में व्यस्त थे। उनके दायें-बायें सड़क की बत्तियां जलने लगी थीं; उन्हें लगा था जिस सड़क पर उन का टांगा चल रहा था वह दूर पीछे से किसी तिलस्म-टूटे देश से चली आ रही है। वह शहर छोड़ रहे थे। कारण स्पष्ट था फिर भी वह मान नहीं रहे थे कि वह उस लड़की के गर्भ से डर गये हैं, कि वह कायर हैं। और कोई कारण तलाश करने लगे वह। टिकट लेने के बाद, ट्रेन में चढ़ने तक उन्हें आशंका रही कि लोग उन्हें पहचान लेंगे। उन्होंने बारीकी से आसपास भी देखा था। कहीं उनके हाव-भाव से लोगों को यह पता तो नहीं चल गया कि वह भाग रहे हैं। वह

वक्त से पहले ही डब्बे में बैठ गये और बड़ी बेसब्री से ट्रेन के चलने की प्रतीक्षा करने लगे थे। ट्रेन सरकी तो उन्होंने सुख का सांस लिया। गाड़ी जैसे-जैसे आगे जा रही थी उनका मन पीछे भाग रहा था। बार-बार अनु का आंसुओं में डूबा चेहरा याद आ जाता। मन ग्लानि से भर उठता। फिर उन्हों ने सोचा था, न कोई रोजगार है न कोई काम-धन्धा वह अनु के साथ कैसे सैटेल हो सकते हैं। वही ठीक है जो होने जा रहा है।



उन्होंने गाड़ी उद्घाटन - स्थल से कुछ फासले पर खड़ी करवाई। वह जल्दी आ गये हैं। अभी वहां इक्का दुक्का आदमी ही आया है। उन्होंने गाड़ी मुड़वायी और नदी की तरफ चल पड़े, किसी मित्र के पास जाने से उन्होंने कहीं एकांत में बैठना बेहतर समझा। घाट की भीड़ से परे एक पत्थर पर बैठ गये। नदी की लहरें किनारा छोड़ रेती पर लौट रही थीं। लौटती दफा पानी रेती पर अपने निशान छोड़ जाता—आड़ी तिरछी कुछ रेखायें।

उन्होंने नें कोट की जेब से फोटो निकाली। पीली पड़ गयी फोटो, पच्चीस साल पुरानी। पर फोटो की आकृतियां उतनी ही, उतनी ही आकर्षक जैसे थी। अचानक उनकी मानसिकता ने पलटा खाया। रेती पर किसी के फड़फड़ाने की आवाज आई। लगा कोई मर रहा पक्षी पंख फड़फड़ाने लगा है।

अनु ने आत्महत्या की थी। छत्त से लटक कर या शायद कुछ खा कर। बरसों बाद वह उस शहर से गुजरे थे तो उन्हें लगा था हर आदमी उन को पहचान गया है, उनके विरुद्ध कोई षड़यंत्र बुन रहा है। वह चुपचाप वहां से गुजर गये थे।

उन्होंने उस तरफ से ध्यान हटाना चाहा पर उनके विचार उसी सीमित परिधि में भटकने लगे। पूरी विचारधारा उसी पेट फूली लाश पर आकर केन्द्रित हो गई, उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अपराध भाव के आते ही उन्हों ने कुछ आवाजें सुनीं, कोई हंस रहा था। आसपास देखा, सिवाय रेत के ढूहों के और कोई नहीं था। आवाज पुनः आयी, कोई अट्टहास कर रहा था। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि आवाज बाहर से आ रही है कि अन्दर से। फिर कोई औरत लहरों पर हल्के पैरों चलती, रेत पर बिना कोई चिह्न बनाये उनकी ओर आने लगी, दूर से वह पहचान नहीं पाये, पर ज्यों ज्यों वह पास आती गयी उनकी धड़कन बढ़ती गयी। वह नपी तुली चाल से उनके

सामने आकर खड़ी हो गयी। उसकी आंखें भाव शून्य थीं, चेहरा पीला, उसके केवल होंठ हंस रहे थे। डर से उन्होंने आंखें बन्द कर लीं, पर वह जैसे पलकों से चिपक गयी, अचकचा कर उन्होंने आंखें खोल दीं। वह वहीं थी, उन्हों ने नजर घुमायी तो वह साथ साथ चलने लगी।

पहचाना मुझे ?

हां...हां...चली जाओ...तुम्हारा कोई वजूद नहीं। उन्होंने हाथ झटक हिम्मत बांध कर कहा। बेशक वह अन्दर से काँप रहे थे......उन्होंने देखा वह उल्टे पैरों चलती पानी में घुल गयी। उन्होंने पसीना पोंछा और गाड़ी तक आ गये। ड्राइवर उनका इन्तजार कर रहा था।

वह उद्घाटन स्थल पर पहुँचे। काफी लोग इक्ट्ठे हो गये थे। कुछ तो उनकी प्रतीक्षा में उब कर चले भी गये थे। कार से उतरते ही लोगों ने उन्हें घेर लिया, संयोजक उन्हें भीड़ से बचाते उस गेट तक ले गये जहां एक लाल फीता बन्धा था और जिसे काट कर उन्हें आश्रम का उद्घाटन करना था।

उन्होंने कैंची से फीता काटा तो कई हथेलियां टकरा उठीं, कुछ लोगों ने आगे बढ़ कर उनके गले में फूल मालायें डाल दीं। उनके अभिवादन का मधुर मुस्कान से कर-बद्ध हो जवाब देते वह मंच पर आये।

उपस्थित सज्जनों ....उन्होंने पहला शब्द ही उच्चारित किया था कि वही अट्टहास कानों के पास सुनाई दिया। उन्हें गर्दन मोड़ने का साहस न पड़ा।

तुम फिर आ गयीं। उन्होंने उसे डांट दिया।

मैं यह देखने आई हूँ कि तुमने अपने अपराधी पर कौन से मुखौटे चढ़ा लिये हैं।

उन्हें लगा वह सभी के सामने उन का भांडा फोड़ कर देगी और पलभर बाद लोग उन पर जूते बरसा रहे होंगे। उन्हों ने उसे कोहनी से पीछे धकेल दिया और लोगों से मुखातिब हुए। आश्रम के महत्व पर दो चार बातें कह कर वह बैठ गये। संयोजकों को निराशा हुई। उन्हों ने अस्वास्थ्य का बहाना बना कर क्षमा मांग ली।—तुम अब भूठ भी बोलने लगे ! वही थी। उन्होंने सिर झटक कर उसे हटा दिया।

संयोजक उन्हें कक्ष में ले गये जहां मीटिंग होनी थी। सभापति ने आश्रम द्वारा किये जाने वाले कार्यों का व्यौरा रखा। उनकी राय पूछी गई।

हमें चाहिये कि पहले-पहले हम.........सभी उनकी ओर अपेक्षित नजरों से देख रहे थे कि किसी ने उनके मुंह पर हाथ रख दिया।—ये सब तुम करोगे ? तुम जो अपनी अनव्याहता पत्नी को स्वीकार करने की हिम्मत नहीं कर सके।

अरे तुम लोग चुप क्यों हो गए ! मैं कहीं उलझ गया था, अपनी स्थिति का भास होते ही वह बोले और खुद ही हंसने लगे।—भई, आदमी जैसे-जैसे बूढ़ा होता जाता है उसका चित्त भटकने लगता है। वह बात-चीत में पुनः खुल कर हिस्सा लेने लगे। कई योजनायें बनीं, उन्होंने अपने ऊपर कई जिम्मेवारियाँ ले लीं।—तुम कोई काम पूरा नहीं कर सकोगे, तुम कायर हो। वह अशक्त हो गये। हर बार जब वह आती है तो दिल की धड़कन तेज हो जाती है। लौटते समय वह उन्हें शरीर की कुल चेतना के बदले ठंडा पसीना दे जाती है।

आप की तबीयत ठीक नहीं तो आप चले जाइये। आपका संरक्षण ही हमारे लिये सौभाग्य की बात है, संयोजक बोले। वह उठ पड़े, घर जाना ही ठीक होगा। पर घर जाकर फिर पत्नी का सामना करना पड़ेगा। वह पूछेगी—वही प्रश्न।

घर पहुंचे तो उनके कमरे में अभी अंधेरा था। कुछ देर वह यूंही अंधेरे में बैठे रहे। जो कुछ आज हुआ था उस पर सोचने लगे। न चाहते हुए भी ध्यान उस लड़की की ओर चला जाता, उससे भी आगे—उसके गर्भ पर।

उन्हें लगा कमरे में उनके इलावा कोई और भी है। किसी के दबे-दबे सांस लेने की आवाज आ रही है। चौंक कर उन्होंने बत्ती जला दी। कोई नहीं, केवल एक ठहाका खिड़की के रास्ते बाहर चला गया।

कमरे की बत्ती जली देखर उनकी लड़की भीतर आई और कोट उतारने में उनकी मदद करने लगी।—डैडी आप मम्मी को बता क्यों नहीं देते, उन्होंने तब से कुछ खाया नहीं है। जिद्द करके बैठी हैं, उन्हें बिजली का तार छू गया तो इन लोगों ने बात खत्म नहीं की है।

अच्छा तो सुनो, यह लड़की मुझ से प्रेम करती थी, उन दिनों मैं लॉ पढ़ता था, फिर अचानक एक दिन मुझे छोड़ कर चली गई।

कहां ?

मुझे मालूम नहीं, मुझ से रूठ गयी।

पर आप से रूठीं क्यों वह ?

मुझे क्या पता।

कहीं आपने तो नहीं छोड़ दिया उन्हें।

नहीं.........उन्हें फील हुआ बात-चीत आगे चली तो वह रेत के टीले की तरह भुरभुरा जायेंगे।

आप झूठ बोल रहे हैं आप से कुछ पूछना बेकार है। वह कुछ और न बोली और चली गई।

कमरे में वह अकेले नहीं हैं, उन्होंने महसूस किया।

तो मैं तुम्हें छोड़ गई...झूठे...इतना बड़ा आरोप लगाते तुम्हें शर्म नहीं आयी.........खैर अब मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊंगी। वह अन्दर तक कांप गये।

तो वह अब उन के साथ रहेगी। उन्हें लगा वह एक अंधेरे कुएं में गिर पड़े हैं और उनके साथ एक पेट फूली लड़की की लाश है। लड़की मृत है पर उसका पेट अभी जीवित है और भीतर कुछ कुलबुला रहा है।

डाइनिंग टेबल पर वह अकेले ही थे। पत्नी का चेहरा गर्दन तक तना हुआ था और लड़की मां के पास बैठी हिकारत से उन्हें देख रही थी। वह बीच में ही उठ पड़े। सुबह उनके मुलाकाती न आये होते तो वह मौन और अकेले बैठे पगला जाते। छोटे-छोटे कामों में अपने को उलझाए रखा उन्होंने। हर समय खतरा रहता कि कहीं वह फिर न आ जाये। वह न भी आती तो भी उसका अहसास उनसे चिपटा रहता, जोंक की तरह। वह मुक्त होने की जी तोड़ कोशिश करते। उनकी हर असफल कोशिश पर वह मुस्कराती—रघु मैं अब तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊंगी, तुम्हारे साथ ही रहूँगी।

कचहरी में अपनी कुर्सी पर बैठे उनका दिल घबराता। कटघरे में मुजरिमों के चेहरों में उन्हें अपना चेहरा नज़र आता। कोई सवाल पूछने से पहले वह उसे मन ही मन दोहरा लेते। उनके मुंह से कुछ और ही न निकल जाये। फैसला देते समय उनका हौसला अंजुरी में लिये पानी की तरह रीत जाता। सामने लगे क्लाक में कांटों के स्थान पर लाश लटकती नजर आती।

अपने हर काम को वह उसे तराजु मान कर तोलते। उन्हें विगत पच्चीस वर्षों में किया अपना हर काम अवसादपूर्ण और गलत लगता। वह

कुछ भी करें उस कालिख को धो नहीं सकते। लगता, उनके भीतर काला कोलतार सड़ांध मार रहा है। पसीने के स्थान पर उनके रोम छिद्रों से वही कोलतार रिस रहा है, उनके कपड़े काले होते जा रहे हैं।

कचहरी में कोई मूर्ख अपराधी उनके सामने माफी के लिये गिड़गिड़ाता तो उन्हें महसूस होता वह विवश होकर अनु के आगे गिड़गिड़ा रहे हैं।—अनु, मुझे माफ कर दो। मैंने जो कुछ किया था उस की सजा मैं इन दिनों में भुगत चुका हूँ। अपने रघु को माफ नहीं करोगी।

माफी तुम मुझ से क्यों मांग रहे हो ? अपने आप से मांग कर देखो। माफ करना क्या तुमने इतना आसान समझ रखा है ! वह आवाज सुन कर सहम जाते। अपने मन की अदालत में अपने को असली रूप में प्रस्तुत करने का साहस उनसे नहीं होता।—रघुवीर ठाकुर तुम पर कत्ल का इल्ज़ाम है। एक गर्भवती लड़की के कत्ल का इल्ज़ाम ! तुम्हें अजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है। बची आयु तुम इसी कोठरी में पूरी करोगे।

उन्होंने स्वयं कई उलझे हुए केसों के बड़े-बड़े फैसले दिये हैं पर इस फैसले को सुन कर वह बेबस हो गये। उन्हों ने हाथ पीछे छुपा लिये, जैसे उन पर हत्या के निशान बाकी हों।

पत्नी से कतराने लगे हैं आजकल।

आप यहां क्या कर रहे हैं ? वह उन्हें आजकल अकेले नहीं छोड़ती। हर समय इस खोज में रहती कि उनके विरुद्ध उसे कोई और ठोस सबूत मिले। वह ऐसे आदमी की तरह फुफकारती फिरती जिसका गुस्सा पल-पल बढ़ता जा रहा हो और उसे फूट पड़ने के लिये कोई उचित बहाना न मिल रहा हो। पत्नी की शंकालु आंखें उन्हें दूर तक सालती गईं। हाथों को पीछे छिपाते हुए कहा—कुछ नहीं।

हाथों में क्या है ?

कुछ नहीं.........उनके जवाब देने तक उसने कागज झपट लिया। केवल कलम ही उनके हाथ में रही अनु मुझे माफ कर दो, अनु मुझे माफ कर दो......कागज पर ऊपर से नीचे तक बारीक, मोटे, तिरछे-आड़े अक्षरों में एक ही बात लिखी थी। कोई और सुराग न देख कर वह हाथ नचा कर बोली—उससे कौन से गुनाह की माफी मांगी जा रही है ! माफी तो तुम्हें मुझ से मांगनी चाहिये......कौन है यह कुलच्छनी जिस का बुरा साया मेरी गृहस्थी

पर पड़ा है ! बताश्रो कौन है ? मैं उसका मुंह नोच लूंगी। वह मुट्ठियां भींच कर उनके श्रौर पास श्रा गयी। वह बोलने लगे पर शब्द गले में किसी सोखता कागज ने सोख लिये, केवल हवा बाहर निकली—पफ...पफ...

वह कैसे बता दें। बता देने पर स्थिति श्रौर भी विस्फोटक हो जायेगी। जो बात उनके हृदय की कब्र में दफन हैं उसे वहीं रहने दो। उस लाश को सामने न लाश्रो। चाहे उसमें कीड़े पड़ गये हों श्रौर सड़ांध उठने लगी हो।

उन्हें कुछ बताते न देख पत्नी जो मुंह में श्राया उगलने लगी। उन पर श्रसंगत दोषारोपण करने लगी। उसकी बातों से वह तड़प उठे, कोई सफाई देना सम्भव नहीं था। पत्नी कागज की चिन्दियां उनके चेहरे पर उड़ाती बाहर चली गई। वे नीचे झुके श्रौर एक-एक बिट को बीन कर फोटो के पास वास्कट की जेब में रखा। उनकी क्षमा याचना की श्रपील नामंजूर हो गई है। श्रब उन्हें सजा भुगतनी है। जीवन भर इस श्रंधेरे कुँएं में चमगादड़ की तरह भटकना है।

दिन श्रग्नि कुण्ड बन गए श्रौर रातें श्रंधेरे कुंएं। हर सुबह सूर्य नयी जलन लेकर श्राता। वह झुलसते रहते, ज्यों - ज्यों शाम होने लगती, श्रंधेरा घिरने लगता तो श्रग्नि कुण्ड कुश्रां बन जाता। वह चमगादड़ की तरह चक्कर काटते। वही परिधि, वही व्यास। वह सपना देखते एक श्रंधा सांप किसी खड्डे में गिर पड़ा है घबराया हुश्रा बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है। बार-बार वह दीवार पर फन मार कर लहुलुहान हुए जा रहा है। उन्हें लगता श्रतीत बर्फ की सिल्ली है श्रौर वह तिनके की तरह उसमें जम गये हैं। ईश्वर जाने यह बर्फ कब पिघलेगी !

श्रपने दिमाग से चिमटी जोंक से मुक्ति पाने के लिये वह सिर झटकते। चारों श्रोर से श्राती श्रावाज़ें उठती उंगलियां बन कर उनकी श्रोर लपकतीं। एक बारगी तो वह कांप जाते। हर उंगली उन पर शर्मनाक तोहमत लगाती। पर धीरे-धीरे वह स्थिति पहचानते, यह सब तो उनकी नियति बन गया है ! इससे भाग कर कहीं नहीं जा सकते। वह किसी भी दिशा में भागें सभी दि ायें कुछ दूर जा कर मुड़ जाती हैं, उसी कु ंए की श्रोर।

साफ लगता, उनके कन्धों पर एक लाश है। कितने ही दिन हो गये इस लाश को उठाये - उठाये। कोई ऐसी जगह नहीं मिली जहां वह उसे रख सकें। उन्हें भय लगता, यदि वह उसे कहीं छोड़ेंगे तो वह फिर जीवित हो

उठेगी और उन्हें दबोच लेगी। मजबूरी ! एक दीर्घ कालीन मजबूरी ! याज्जीवन इसे ढोते जाना है। कभी तो उन्हें यहां तक लगता कि वह लकड़ी का विमान है जिस पर एक लाश सजा कर रखी है। चलते-चलते वह मुड़ कर देखते। कहीं लोग शवयात्रा के लिये तो नहीं आ रहे पीछे-पीछे।

उनकी यही कोशिश रहती कि घर से बाहर ही रहा जाये। पार्क में बैठे वह अपनी पिछली जिन्दगी पर नजर दौड़ा रहे थे। उन्हें संतोष हुआ कि सिवाय उस काम के उन्होंने ऐसा कोई काम नहीं किया है जिसके लिए उन्हें पछताना पड़े। उन्हों ने आंखें मीचीं तो दूर तक एक हरा भरा मैदान फैल गया। उनकी जिन्दगी का मैदान कितना हरा-भरा रहा है, उन्हें यह देख कर संतुष्टि हुई। पर इसी मैदान में एक सूखा ठूंठ तन्हा खड़ा है। जिस के डालों में कई मरोड़ पड़े हैं। इसे देख कर उनका मन संताप से जलने लगा। उनके देखते देखते ठूंठ आग उगलने लगा, जिससे सारी हरयाली झुलसने लगी।

उन्हों ने घबरा कर आंखें खोल दीं। दूर कोई जोड़ा लिपटा-सा बैंच पर बैठा था। मर्द ने एक बार चारों ओर देखा और लड़की को चूम लिया। लड़की तृप्त सी पड़ी रही। कुछ देर बाद वह लोग उठ पड़े। उन्हों ने एक बार पुनः सरसरी तौर से देखा तो चौंक उठे। उनकी अपनी लड़की ! रश्मि ! उन्हें लगा वह दौड़ कर जायेंगे और उस लड़के, राघव को दबोच लेंगे। उनके कुछ करने से पहले ही वे एक दूसरे में डूबे उनके सामने से निकल गये। उन्होंने बड़ी अशक्तता महसूस की। उनके सामने कोई उनकी लड़की को कलुषित कर रहा है और वह कुछ नहीं कर सकते। अपना आप अपाहिज लगने लगा।

वह चलने को हुए तो दूर से वह आती दिखाई दी। वही नपी तुली चाल !—जानते हो यह सब देख कर भी तुम कुछ कर क्यों नहीं पाये हो ? तुम ने मेरे साथ वह सब किया था जो आज वह नौजवान तुम्हारीं लड़की से कर रहा था। तुमने तो.........वह उठे और लगभग भागते-से सड़क पर आ गये। घर पहुंचे तो अभी लड़की नहीं आयी थी।

तुम्हारा दिमाग फिर गया है। जरा सोचो अगले साल तुम रिटायर हो रहे हो फिर भला तुम्हें कौन पूछेगा। रश्मि के लिए इतना अच्छा लड़का मिलना कठिन है। पत्नी से अन्तरंगता का टूटा तार जोड़ने के लिए उसे परामर्श दिया था कि लड़की को राघव से अधिक मिलने जुलने की छूट न दे, उसके लक्षण ठीक नहीं, उत्तर में पत्नी फट पड़ी थी।—तुम्हें घर की फिक्र नहीं मुझे

तो है। बेटी जवान हो गई है और बाप को अपनी ही प्रेम-पींगों से फुर्सत नहीं मिलती।

उनका जी हुआ पत्नी का गला दबा दें। पर.जब अपने ही अन्दर कोई कमजोरी हो तो किसी को क्या कहा जा सकता है। ऐसी ही कमजोरी उन्हें फटने से पहले ही दबा देती है और वह फिस्स...हो जाते हैं !! उनकी पत्नी समझती है उनका अब भी उसके साथ कोई अनैतिक सम्बन्ध है। उन्हें लगता आज जब वह नहीं है तो उसके साथ उनके सम्बन्ध पहले से अधिक ईमानदार और करीबी हैं। उन दिनो जवानी में उन्होंने कभी इसे पूरी ईमानदारी से नहीं स्वीकारा था। हमेशा एक सतही भाव बना रहता था। यही कारण था कि उसे उस हालत में असहाय छोड़ते हुए उन्हें कोई विशेष दुःख नहीं हुआ था। पर अब उन्होंने अपने उस सतहीपन को इतनी तीव्र सम्वेदन-शीलता से महसूस किया है कि वह मानसिक यंत्रणा के शिकंजे में जकड़े जा रहे हैं। फिर वह सोचने लगे कि यदि वह उससे विवाह कर लेते तो जीवन कितना सुखी हो जात ! उनके सामने उसकी देह उभर आई। महसूस करने लगे वह उन की पत्नी है।

तो अब तुम एक मरी हुई औरत के साथ मानसिक व्यभिचार पर उतर आए हो ! वह सर्र से उनके सामने से गुजर जाती।—नहीं-नहीं, वह तो मैं यूंही......वह कांप उठे।

●

वह स्टडी में बैठे फैसले लिख रहे थे। बहुत दिनों बाद उनका काम में जी लगा था। इन दिनों में उन्होंने स्थिति को स्वीकार कर लिया था। एक आदत डाल ली थी, उसकी उपस्थिति में काम करने की।

पत्नीं आकर दहलीज पर खड़ी हो गई और उनकी आंखों का इन्तजार करने लगी। वह चुप और उदास थी। उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया तो वह उनके सामने आकर बैठ गई। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद उसने गर्दन नीचे किये-किये ही कहा—कितने दिनों से राघव नहीं आया। उसका स्वर चिंतित था।

मुझे खुशी है। उन्होंने बिना उधर देखे कहा।

रश्मि रो रही है। उसे किसी डाक्टर के पास ले जाओ।

क्या रोग है उसे ? वह चौंक पड़े।

अब डाक्टर ही उसे इस कलंक से बचा सकते हैं।

यह तुम क्या बक रही हो......उनकी समझ में बात आ गई थी,—होश तो ठिकाने हैं तुम्हारे......

रश्मि......उन्होंने बेटी को आवाज़ दी।

जो कुछ तुम्हारी मम्मी कह रही है वह ठीक है ?

डैडी......वह उन से लिपट गई......उसने मुझे धोका दिया।—वह कहीं चला गया है......

उन्हों ने अपना आप छुड़ा लिया और एक तरफ खड़े हो गये।

सहसा वह उनके सामने आकर खड़ी हो गई और अट्टहास करने लगी। इस बार वह चौंके नहीं चुपचाप सुनते रहे—बोलो अब क्या करोगे ?......भाग जाओगे तब की तरह......वह देखते-देखते उनकी लड़की के शरीर में प्रवेश कर गयी।

नहीं...पहले से ही मेरे कन्धे पर एक लाश है—मैं दूसरी लाश नहीं उठा सकता..... मैं दूसरी लाश नहीं उठा सकता।

उन्हें लगा, अपने बारे में सही बातें उनके मुंह से अपने आप निकल जाएंगी। अब स्थिति इतनी विस्फोटक नहीं रही है। उन्होंने एक अजीब बात महसूस की—वह हल्के हो गये हैं।

लड़की के साथ वह गाड़ी में बैठ गए। वही पिछली सीट, वही समस्या, केवल पात्र अलग हैं......अजीब पुनरावृत्ति हुई है।

दिशायें एक बार फिर मुड़ गई हैं, उन्हें लगा।



कौरव - पाण्डव

—दीदार सिंह

छम्ब सैक्टर में भारत तथा पाकिस्तान की सेनाओं के मध्य युद्ध टैंकों, तोपों और मशीन गनों के बाद हाथा-पाई पर उतर आया था। संगीनों, कुन्दों और कमर की बैल्टों से भी काम लिया जाने लगा। पाकिस्तानी रेंजर्ज़ के एक सैनिक ने भारतीय गोरखा रेज़मेण्ट के एक जवान को मारने के लिए राइफल का कुन्दा जब ऊपर उठाया तो मजीद ने उसके गले में बैल्ट डालकर उसे पीछे अपनी ओर खींच लिया। गला दबाए जाने से पाकिस्तानी सैनिक की आंखें बाहर को आने लगीं। जब उसके सिर का पिछला हिस्सा मजीद की छाती पर आकर रुक गया तो उसे देखते ही मजीद हक्का बक्का सा रह गया।

यह तो रशीद था—उसका चचेरा भाई। बटवारे के बाद मजीद के चचा अपने परिवार को लेकर पाकिस्तान चले गये थे लेकिन मजीद अपने अब्बा के साथ भारत में ही रहा। उस समय मजीद और रशीद बहुत छोटे-छोटे थे। बटवारे के बाद दोनों परिवारों के बिछुड़ने पर दोनों के बीच पत्र-व्यवहार जारी रहा। बीच-बीच में दोनों परिवार एक दूसरे को मिल भी आते। मजीद और रशीद के बीच गहरी मित्रता हो गई थी। कोई महीना ऐसा नहीं जाता था जब एक दूसरे के एक या दो पत्र न आते हों। दोनों ने अपने-अपने देश में एक साथ शिक्षा समाप्त की और फिर कुछ समय के लिए दोनों बेकार रहे। बाद में पहले मजीद सेना में भरती हुआ और फिर रशीद। लेकिन दोनों ने यह कभी नहीं सोचा था कि ऐसे इनकी टक्कर भी होगी।

चेहरा पहिचानते ही मजीद ने बैल्ट ढीली छोड़ दी और बोला, "अरे रशीद तुम!"

"कौन ? मजीद !" रशीद ने भी पहिचान लिया। फिर वह शीघ्र ही ही सम्भल गया और बोला, "तू भी इन हमलावरों के साथ शामिल है जिन्होंने हमारे मुल्क पर हमला किया।"

"हमला हमने नहीं किया पहले तुम्हारी फौज ने किया है।"

"क्या सबूत है तुम्हारे पास ?"

"और तेरे पास क्या सबूत है ?"

"मजीद भाई तुझे भारत के लिए नहीं बल्कि अपनी पाक धरती के लिए लड़ना चाहिए।"

"तुझे भी उस धरती के लिए लड़ना चाहिए जहाँ तुमने जन्म लिया और पहली बार आकर आंखें खोलीं।"

"हमारा वतन भारत नहीं बल्कि पाकिस्तान है जिसे हमने बहुत कुरबानियां देकर हासल किया है।"

"और मेरा वतन है भारत, जिसकी मिट्टी से मैं पैदा हुआ, पला और बड़ा हुआ—जिसके पानी, धूप और हवाओं को मैंने भोगा है।"

"तू काफिरों से जा मिला है, खुदा तुझे कभी माफ नहीं करेगा।"

"अपने वतन के साथ गद्दारी को भी खुदा कभी माफ नहीं करता। तुम्हारा वतन पाकिस्तान नहीं बल्कि भारत है।"

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा मजीद, तुम भारत को खैरबाद कह दो।"

"तुम ही जिस मादरे-वतन को हमले से नापाक कर रहे हो, उसकी पनाह क्यों नहीं ले लेते ?"

"मेरा ईमान है अपने पाक वतन के लिए लड़ना और मरना। मैं अपने वतन का गाज़ी हूँ।"

"तू ईमानदार है तो हम ही क्या बेईमान हैं ! मैं भी जान दे दूंगा लेकिन तुम्हारी फौज के नापाक कदम अपने वतन पर नहीं पड़ने दूंगा।"

"देखो भाई मजीद ... ...

"नहीं ! इस समय हम भाई नहीं हैं—एक दूसरे के दुश्मन हैं। रिश्तेदारी एक तरफ और फर्ज एक तरफ।"

"तो फिर ठीक है। मजीद ! तुम अपने वतन के लिए लड़ो और मैं अपने वतन के लिए लड़ूंगा।"

और फिर दोनों आपस में उलझ गये। रात ढल चुकी थी। कभी पाकिस्तानी यान रेड करते तो कभी भारत के। रात भर वहां घमासान का युद्ध हुआ।

प्रात: के समय जब वहां भारतीय सेना का प्रभुत्व स्थापित हुआ तो रशीद का शव पाकिस्तानी सेना को सौंप दिया गया जबकि मजीद का शव भारतीय सेना ने स्वयं संभाल लिया।



जोड़

मू० ले० डा०—दिलीप कौर टिवाणा
अनु०—फूलचन्द 'मानव'

कमरे में धीरे धीरे अन्धकार भर गया। घुल घुल कर अन्धकार गहरा गया। जीत ने उठ कर लाइट भी नहीं जलाई। पर्ल पालिशवाली बुद्ध प्रतिमां अन्धकार में भी दिखाई देती है। जीत ने बांह बढ़ा कर रेडियो लगा दिया। लता गा रही है............

"नहीं, नहीं। यह सब बकवास है" जीत ने खींझते हुए कहा और रेडियो बंद कर दिया। खिड़की में से दूर आबाद शहर की बत्तियां चमक रही थीं।

अन्धेरे में रास्ता खोजता एक पतंगा कमरे में आ घुसा। अब पतंगा आराम से घूम रहा था।

जीत ने लाइट जला दी।

पैड, पैन लिया और खत लिखने लगी, 'तुम समझते हो ....नहीं-नहीं—.........'

कितनी ही देर वह वाक्य सोचती रही, फिर जो कुछ लिखा था, उसे भी फाड़ कर कमरे के बाहर फैंक दिया, कागज़ के छोटे छोटे पुर्ज़ों को धीरे धीरे नीचे सड़क तक जाते हुए, वह खड़ी देखती रही।

नीचे गैलरी में टैलीफोन था।

वह आधी सीढ़ियां उतर आई थी जब उसके भय्या ने आवाज़ देकर कहा, "जीत! तुम्हारा फोन है।"

"कहें !" जीत ने रिसीवर उठाते हुए कहा ।

"कल फ्री होंगी, शाम को ?"

"क्या बात ?"

"बात तो कुछ भी नहीं—"

"मैं तो सदैव फ्री होती हूं । सिर्फ आप ही फ्री नहीं होते आज कल ।"

"कल शाम चार बजे 'मोती-महल' आ सकोगी ?"

"आपने अपनी सहेली से पूछ लिया है ? वह नाराज़ तो नहीं होंगी ?"

"मज़ाक क्यों कर रही हो, कल शाम, याद रहेगा ?"

"मैं नहीं जाऊंगी" रसीवर रख कर जीत ने जैसे स्वत: ही कहा ।

"किस का फोन था ।" मां ने दूर से ही उसके चेहरे की ओर देख कर पूछा ।

जीत निरुत्तर थी । वह सीढ़ियां चढ़ने लगी ।

"अब खाना खा कर ही ऊपर जाना," उसकी मां का स्वर था ।

"मुझे भूख नहीं ।"

"तीसरे दिन इसकी भूख को न जाने क्या हो जाता है......"

जीत अपने कमरे में जाने की बजाय ऊपर वाली छत पर जा पहुँची ।

आकाश की ओर देखा, घटाटोप हुआ लगता था । बादल चढ़ने को तैयार थे । हवा जैसे सांस रोक कर खड़ी थी ।

जीत को अपनी सांस बिलकुल कलेजे के नीचे कहीं डूबती लगी । शायद सीढ़ियां चढ़ने के कारण । उसने गहरी साँस ली ।

हाथों पैरों के तलों में से सेक निकल रहा था । वह चप्पलें उतार कर नंगे पांव छत पर घूमने लगी ।

एकाएक उसे अपने सफेद बालों वाले छोटे कुत्ते 'जिप्सी' का ध्यान आया जो बाग मैं सांप लड़ जाने से मर गया था ।

पहले जब भी कभी उसे अपनी सांस घुटती लगती, वह छत्त पर आ जाती और जिप्सी स्वतः ही पीछे पीछे आ पहुँचता ।

आज जब वह कालेज से लौटी तो जिप्सी घड़ी-पलों पर था। गर्दन, गिराए लेटा था। मुंह में से झाग बह रही थी।

"जिप्सी......"जीत ने उसके पास बैठ कर उसके सिर पर हाथ फिरा कर उसे बुलाया।

जिप्सी ने मुंदी जाती आंखों को तनिक खोल कर उसे देखा, सारी ताकत लगा कर गर्दन उठाई, और मर गया। उसकी आंखें अभी भी खुली थीं और उनके कोरों में पानी था।

"छोड़ो इसे, मैं तुम्हें इससे भी बढ़िया कुत्ता ला दूंगा।" जीत के भैय्या ने उसका उतरा हुआ चेहरा देख कर कहा।

'और अवतार ने भी किसी अन्य लड़की को, जिसका नाम मनोरमा है, अपनी सहेली बना लिया है।' सोचते हुए जीत ने चप्पलें पहन लीं।

'किन्तु उसने यह सभी कुछ मुझे क्यों बताया।' कहता था, 'तुमसे मैं कुछ भी नहीं छिपाता।' जहां जी चाहे धक्के खाए, मुझे क्या ? सोचती वह सीढ़ियां उतर आई।

नौकर रेडियो पर दूध का गिलास रख गया था उसके देखते देखते खिड़की फांद कर बिल्ली अन्दर आई। उसकी ओर देखती हुई मेज़ पर चढ़ बैठी। झेंपती झिझकती दूध पीने लगी। जीत उसे दूध पीते हुए खामोश निहारती रही।

बड़े आरास से दूध पीकर, बिल्ली जिधर से आई थी, उसी ओर लौट गई। जीत ने अलमारी में से, जो भी आगे आई पुस्तक निकाल ली, एक जापानी अनाटिका Five Modern No Plays : Yukio Mishima की पुस्तक, जिस पृष्ठ पर खुली, वहां ९०-९५ साल की बुढ़िया एक कवि से कह रही थी, "मुझे सुन्दर कहने वाले सब लोग मर चुके हैं। जो भी मुझे सुन्दर कहता है, वही मर जाता है। इसलिए तुम मत कहना कि मैं सुन्दर हूँ।"

पुस्तक बन्द करके हाथ में ली, जीत ने वाक्य मन में ही दोहराया, "जो भी मुझे सुन्दर कहता है, मर जाता है।"

"आज जिप्सी मर गया है।" जापानी अनाटिका की नायिका के साथ जैसे उसने अपनी बात को छूना चाहा।

"एक सुखजीत होता था......कई साल पहले वह इंग्लैंड पढ़ने गया था,

लौटा नहीं। कुछ स्वप्न मेरे पास छोड़ गया था, समझ नहीं रही उनका क्या करूं ?"

"एक मेरी सहेली थी किरण। वह करंट लगने से मर गई थी, मैं सोचती हूँ सारी दुनिया में से उसे ही करंट लगना था।

"एक था रवि, जो कहता था मैं सुखजीत जैसा नहीं, मैं सदा तुम्हारे साथ रहूंगा। वह फौज में भर्ती हो गया और चीनी आक्रमण के समय से लापता है।

हां, हां। मेरे एक बड़े भैय्या भी हैं, किन्तु भाभी उन्हें हमारे साथ बरतने नहीं, बोलने नहीं देती।

और अवतार......मैंने सोचा था यहाँ इसका घर है, नौकरी है, बाल-बच्चे हैं। मेरे न सही, उनके लिए तो यहीं रहेगा, किन्तु........

किन्तु जापानी अनाटिका की नायिका तो लोगों द्वारा पीकर फेंकी सिगरेट के टुकड़े गिन रही थी, एक और एक दो, दो और दो चार। एक और......... दो और दो.........। उसका जीत की बात की ओर जैसे कोई ध्यान ही नहीं था।

कल के चार बजने में अभी सत्रह घण्टे शेष थे। किन्तु जीत अवतार के साथ बातें छू बैठी।

समय बीतते हुए अहसास न हो, इस लिए उसने नींद की गोलियां खाईं। पानी का एक पूरा गिलास पीकर, पंखा अधिक स्पीड करके वह भीतर कमरे में ही लेट गई। ट्यूब की लाईट बुझ जाने पर भी वह किनारों पर जल-बुझ रही थी।

भले ही गोलियां खाकर सोई थी, तो भी प्रातः ही वह उठ बैठी। शायद रात उसने खाना ही नहीं खाया था। कलेजे में एक खोह सी हो रही थी। किन्तु अभी तो सब लोग सो रहे थे, अभी तो चाय भी नहीं मिल सकती थी।

उसका मन हुआ कि बाग में ओस भीगी घास पर नंगे पांव घूमे। उसके भीतर ज्यों कुछ जल रहा था, सुलग रहा था। पैरों द्वारा शायद कुछ ठंड वहां तक पहुँचे। तभी उसे याद आया कि बाग में कल जिप्सी को सांप ने काट खाया था।

"तो ठीक है, छुट्टी ही मिलेगी।" उसके मन में से ज्यों आवाज़ आई।

किन्तु आज चार बजे तो अवतार से मिलने जाना है। उसके जीवित रहने के लिए जैसे एक बहुत बड़ी बात शेष थी।

दोपहर तक वह कालेज में रही। कालेज जाते समय वह जो मुखौटा, कपड़ों के साथ संवार कर, पहन कर जाती थी, वही सारे काम करता जाता। कई बार तो उसे लगता कि उसकी जगह जीने का काम भी वही मुखौटा करता है।

घर लौटी तो एक पत्र आया हुआ था। खोल कर पढ़ा, एक पंक्ति थी— मैं तुम्हें प्यार करता हूँ"

अवतार के अक्षरों की उसे पहचान थी। विदेश से वह पत्र आया नहीं था, 'कौन हो सकता है ?' उसे किसी पर भी शक न हुआ।

'मुझे सुन्दर कहने वाले सब लोग मर चुके हैं.........' एक और एक दो, दो और दो चार......जापानी अनाटिका की नायिका जीत के दिमाग में अभी भी सिगरेटों के टुकड़े गिन रही थी।

दो बजे से साढ़े तीन तक वह यही सोचती रही कि अवतार से मिलने जाए या नहीं। हर बार उसे लगा कि नहीं जाना चाहिए।

किन्तु साढ़े तीन बजे उसने मुंह हाथ धोया, साड़ी बदली, बाल संवारे, और मां को बगैर कुछ कहे ही, वह घर से बाहर आ गई।

जब वह 'मोती महल' पहुँची तो अवतार बाहर ही खड़ा था। उसे देख कर वह मुस्कराया। किन्तु पल के पल जीत के सभी क्रोध उड़ गए और उत्तर में वह भी मुस्का दी।

"मेरा विचार था कि शायद तुम नहीं आओगी।"

"आना तो नहीं चाहिए था, किन्तु आ गई हूँ।"

अलग कैबिन में बैठ कर उन्होंने चाय मंगवाई।

चाय बनाते हुए जीत ने एक बार भी अवतार की ओर नहीं देखा। चाय का कप जब उसने अवतार के आगे किया तो उसने हाथ सहित कप प्लेट पकड़ लिए।

जीत ने पिघल कर उसकी ओर झांका तो आंखें डबडबा गईं।

पगली ! अवतार ने जेब में से रुमाल निकाल कर आंसू पोंछने को दिया।

"कहें, क्या हाल है तुम्हारी सहेली का ?"

"ठीक है। वस्तुत: वह इतनी बुरी नहीं जितना लोग उसे समझते हैं।"

"आपको तो भली लगनी ही थी।"

"कई साल हुए उसका पति किसी लड़की को भगा कर कहीं ले गया है। तुम्हारे जैसी शर्म की मारी ही मर जाती। किन्तु उसने देख लो, पति के मां-बाप को भी पास रक्खा हुआ है। नौकरी करके बच्चे भी पाल रही है और फिर सारा दिन हंस कर गुजारती है।"

"आप तो वैसे भी उसके आफिसर हैं न।"

"नहीं, जैसे अंधे के कान अधिक काम करने लग जाते हैं, उसी तरह उस की प्राकृतिक भूख; आंखों, कानों, पैरों, बालों में आ गई है। लोग वहीं से कल्पना करने लगते हैं। अपनी आंखों, अपने बोलों, अपने पावों और बालों की वीरान भटकनों से बेखबर वह सोचती है, वह दरवाज़े बन्द करके अपने घर के अन्दर बैठी है।"

"हां, हां, आप बना सकते हैं उसके लिए फिलासफियां, किन्तु मैं यहां तुम्हारे साथ उसकी बातें करने तो नहीं आई।"

"किन्तु वह तो कई बार तुम्हारा हालचाल पूछती है।"

"मुझे तो वह जानती भी नहीं।"

"मैंने बतलाया था, तुम्हारे बारे में।"

"क्या बतलाया था ?"

"यही कि तुम बहुत ज़ालिम हो।"

जीत ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"दरअसल तुमने सचमुच कभी किसी को चाहा ही नहीं।"

"नहीं तो, जिसे कोई मन से चाहे, उससे कुछ भी छिपा कर कैसे रख सकता है।"

"तुम मेरे बारे में, मुझ से भी अधिक जानती लगती हो।"

"वह भी क्या मुहब्बत हुई कि किसी को भूखों-प्यासों ही मार दो।"

"कल हमारे घर एक ज्योतिषी आया था, कह रहा था कि रवि जीवित है और कहीं कैद है।"

"ज्योतिषी ने अपने पैसे बनाने के लिए, जो बात तुम्हें पसन्द थी, वह कह

दी ।" तुम स्वयं सोचो, कितने साल बीत गए हैं। उसका (रवि का) तो भला जीवित होने का भी पता नहीं। अब सुखजीत है, मैं कह सकता हूं कि कभी लौटेगा नहीं। जिसने विदेशी जीवन देखा हो, भोगा हो, वह कभी नहीं फिर लौटता। लौटने को इधर है भी क्या ?"

"ऐसा क्यों कहते हो ?"

"सत्य तो सत्य ही रहेगा, जो चाहे कहा जाए।"

"कुछ ठण्डा मंगवाओ, पीने के लिए।"

जीत ने अपने माथे से साधारण पसीने की बून्दें पोंछते हुए कहा।

अवतार ने घण्टी दबा दी।

"तुम यदि माईंड न करो तो आज ड्रिंकस चलेगी। मेरा भी मन आज उदास ही है।"

"मंगवा लीजिएगा।"

व्हिस्की आ गई, सोडा आ गया, और जीत के लिए कोका कोला।

मज़ाक-मज़ाक में ही व्हिस्की की कुछ बूंदें अवतार ने जीत के कोका-कोला वाले गिलास़ में भी डाल दीं।

"क्या कर रहे हैं आप......" जीत ने तनिक माथे में त्योड़ियाँ डालते हुए कहा।

"तुम्हें मेरी कसम।" कहते हुए गिलास अवतार ने जीत के हाथों में पकड़ा दिया।

जीत दवाई की तरह एक ही सांस में पी तो गई किन्तु उसकी आंखों में पानी भर आया।

"सुना है आपकी मनोरमा ड्रिंक भी करती है ?"

"शेरदिल औरत है। और फिर इस में बुरी बात भी क्या है ? विदेश में तो सभी औरतें पी लेती हैं।"

जीत कितनी ही देर खामोश बैठी रही।

दो एक पेग पीकर अवतार ने दरवाज़े पर कर्टन संवारा और अपनी ओर से उठ कर जीत की ओर जा बैठा। पूछते हुए—"बैठजाऊं ?"

"बैठ जाइए।" तनिक पीछे सरक कर जीत ने कहा।

"क्या बात, भ्रष्ट हो जाओगी।" अवतार ने उसके साथ सटते हुए कहा।

"अच्छा आपने कोकाकोला पिलाया है, मानों कलेजा ही जलने लगा है।"

"चलो, फिर तुम्हें आग को आग से बुझाने का तरीका बतलाएं।" कह कर अवतार ने दोनों गिलासों में व्हिस्की डाली और फिर बर्फ उंडेल दी।

"नहीं मुझे यह नहीं चाहिए।" जीत ने विरोध किया। अवतार ने उस के कन्धों पर अपनी बाहें फैला कर उसे अपने साथ सटा कर कहा—"तुम्हें मेरी कसम।"

जीत ने एक ही सांस में गिलास खाली करके धर दिया।

थोड़ी देर बाद उसे जैसे चक्कर से आने लगे। वह अवतार के कंधे से लग कर ज्यों सो रही थी।

"घर चलोगी ?" अवतार ने पूछा।

"नहीं।" जीत ने ललाई आंखों से उसकी तरफ देखते हुए कहा।

"तो ठीक, मैं अपनी उस दोस्त मनोरमा को ही ले जाऊंगा।" अवतार ने झूठ में ही मज़ाक किया। और उसका सिर भी अपने कंधे से तनिक पीछे सरका दिया।

"यदि कहीं घर पहुँचते ही सुखजीत आया बैठा हुआ तो ?"

"यह भी कोई परी-कथा है क्या, कि ठीक समय पर राजकुमार पहुंच जाएगा। तुम अब उसका ख्याल छोड़ दो। उसने कभी से किसी मेम के साथ शादी कर ली होगी। तुम भी शादी कर लो।"

"किसके साथ ?'.

"किसी के साथ भी।"

"यह सब कुछ जानते हुए मुझ से शादी कौन करेगा ?"

"यदि मेरा ब्याह न हुआ होता, तब मैं तो कर ही लेता।"

"मैंने रवि को भी सुखजीत के बारे में सभी कुछ बतला ही दिया था। तुम्हें, रवि और सुखजीत, दोनों के विषय में।"

"इसी लिए तो मनोरमा के विषय में मैंने तुमसे कुछ भी नहीं छिपाया। वैसे छिपाने वाला कुछ था भी तो नहीं।"

"तुम्हें सचमुच वह भली लगती है क्या ?"

"हां, दूसरे यह भी बात है कि मैं यह जानता हूँ कि तुम एक न एक दिन मुझे छोड़ ही जाओगी। मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी तो नहीं। इस हार से बचने के लिए यह एक असफल प्रयास है।"

जीत ने कोई उत्तर नहीं दिया।

वह एक टक अवतार के चेहरे पर झांकती रही।

"चलेंगे।"

"हां।"

वे उठ गये। बाहर हाल में बैठे लोगों को नजरअंदाज़ करते हुए अवतार होटल से बाहर आ गया। उसके पीछे आ रही जीत एक जगह कहीं अटक कर गिरते-गिरते बची।

कार में बैठ कर फिर उसका हाथ दबाते हुए अवतार ने पूछा, "घर चलोगी ?"

"कौन से घर।"

"मेरे घर।"

"आप की पत्नी ?"

"वह बच्चों सहित नैहर गई हुई है।"

"आप की वह दोस्त आप के साथ घर चली जाती है क्या ?"

"हां। वह तुम्हारी तरह मुझे कभी इतना गलत नहीं समझती।"

"गलत तो आप को मैं भी नहीं समझती, मुझे जैसे कोई समझ ही नहीं रही।"

"अपने घर चल कर मैं सिर्फ यह देखना चाहता हूं कि तुम मेरी होती, तो कैसा महसूस होता।"

"अब मैं तुम्हारी नहीं क्या ?"

"फिर इतना सन्देह, संकोच कैसा ?"

"एक शर्त पर जा सकती हूं।"

"मुझे सौ शर्तें भी मंजूर हैं।"

"अपनी उस दोस्त के साथ बोलना छोड़ सकते हो ?"

"मैं कसम खाता हूँ।" कहते हुए उसने कार अपने घर की ओर मोड़ दी।

जीत ने अच्छी तरह खुल कर उसे देखा। वह मुस्करा दिया, "घर आ गया।"

अवतार ने दुल्हन की तरह हाथ पकड़कर जीत को कार से नीचे उतारा। ताला खोला, और सीधा उसे स्लीपिंग रूम में ले गया।

लाईट जली और बुझ गई।

उस को घर छोड़ने आया वह कह रहा था—'मुझे नहीं पता था तुम्हारे अन्दर इतनी आग है, कि तुम मुझ से इतना प्यार करती हो। मैं तुम्हारे प्रति आभारी हूँ। मैं समझता था......जानता था......अब तो मैं तुम्हें किसी की भी कसम खा कर यह कह सकता हूं कि वह दोस्त क्या, अन्य किसी भी औरत के साथ अब मैं बात नहीं करूंगा।"

जीत शायद कुछ भी नहीं सुन रही थी। उसने कोई भी उत्तर नहीं दिया।

अवतार उसे द्वार पर ही छोड़ कर मुड़ गया। लान में से गुज़रते हुए उसे रातरानी के फूलों की सुगन्ध आई। और साथ ही उसे याद हो आया कि लान (बगीचे) में से जिप्सी को सांप लड़ गया था।

"कहां गई थी ? बाद में तुम्हारी ट्रंक काल आई थी।" घर प्रवेशती के ही, उस के भापा ने कहा।

"कहां से ?"

"यह तो उन्होंने बतलाया ही नहीं, मैंने पूछा भी था।"

रिसीवर उठा कर जीत ने एक्सचेंज से पूछा, "४३२ पर जो ट्रंक काल आई थी, वह कहाँ से थी ?"

"सौरी मैडम। मैं अभी ड्यूटी पर आकर बैठा हूँ। मुझे नहीं मालूम।"

"विदेश से तो नहीं थी।"

'सौरी। मुझे नहीं मालूम।"

जीत ने लम्बी सांस ली और रिसीवर टिका दिया।

"कहां थी तुम ?" उसकी मां ने छिपी खीझ में पूछा।

"अवतार के पास।" कह कर वह सीढ़ियां चढ़ने लगी।

अवतार सारे परिवार का परिचित था। इज्ज़तदार, कबीलदार आदमी था। जिसके कारण मां को यह अधिक नाराज़ होने वाली बात नहीं लगी। वैसे भी जीत को वह पूरी तरह समझती थी, कोई ऐसी-वैसी लड़की तो वह थी ही नहीं।

सुबह मां जब उसे चाय के लिए जगाने गई तो वह मरी पड़ी थी।

शायद वह बहुत देर तक जागती रही थी। कमरे की बत्ती अभी भी जल रही थी। समीप ही जापानी नाटिका की पुस्तक खुली पड़ी थी। पुस्तक में चित्र था, जिसमें ९०-९५ साल की बूढ़ी नायिका को सुन्दरी कह कर बुलाने वाला कवि मृतक पड़ा था। उसके पास एक सिपाही खड़ा था। बूढ़ी नायिका सिगरेटों के टुकड़े गिन रही थी......एक और एक दो......दो और दो चार।



हतक

—अख्तर महीउद्दीन
अनु०—हरिकृष्ण कौल

माते शाह मर गया।

उस का टूटा फूटा घर और ऋषि बाबा का आस्तान पड़ोसी भोट राजों ने अपनी जमीन में शामिल कर लिया और अली पिला को एक आवारा पिल्ले की तरह घर से निकाल कर सड़क पर फेंक दिया। यदि रहिम दीदी के मन में दया न उपजी होती और यदि वह उसे अपने घर नहीं ले गई होती तो अली पिला सड़क पर ही कुत्ते की मौत मरा होता।

मगर कुछ दिन बाद ही ऋषि बाबा की कोपाग्नि भड़क उठी और भोट राजों की सारी मस्ती राख हो गई। जाने कौन सा पुण्य आगे आ गया कि उन की जान बच गयी। डर के मारे उन्होंने फिर से अपनी दीवार अन्दर करके ऋषि बाबा के आस्तान को मुक्त किया।

ऋषि बाबा का आस्तान बच्चों के खेलने का स्थान था। दूसरे बच्चों के साथ अली पिला भी वहां खेलता रहता। शाम होने पर जब सब बच्चे अपने घरों को चले जाते तो अली पिला भी किसी घर में घुसता और जो मिलता वह खाकर मस्जिद में सोने के लिये चला जाता।

अली पिला सब का था क्योंकि उसका कोई नहीं था। वह जूठे टुकड़ों या एक आध प्याली चाय के लिये कभी इस घर में चला जाता और कभी उस घर में। खा-पी लेने के बाद जब किसी घर में कोई चीज बच जाती तो अली पिला को खबर कर दी जाती। पोषकुज की मां गुणवती भी किसी किसी दिन उसे अपने घर बुलाती। उसके 'फिरन' के दामन में बासी भात डाल कर वह

उससे कहती—"ले खा ले, बिना मां के बच्चे को कौन पूछता है ? मगर भगवान ने जाने मेरा ही दिल कैसा बनाया है कि..."

पर ग्रली पिला को कोई चीज मुफ्त नहीं मिलती थी। किसी के लिये उसे पानी की मटकी भर लानी पड़ती तो किसी के लिये पंसेरी दो पंसेरी धान कूटना पड़ता। किसी के लिये लकड़ियां तोड़नी पड़तीं ग्रौर किसी के लिये कोई ग्रन्य काम करना पड़ता। काम कर चुकने के बाद ही उसके सामने जूठन रख कर उसे खुश किया जाता। गुणवती जैसी ग्रौरत को भी ग्रली पिला से दो चार काम करवाने के बाद ही धर्म की याद ग्राती ग्रौर वह ज़रा ऊंचे से उसके दामन में भात डाल कर (ताकि हाथ उसके कपड़ों के साथ छू न जाय) उससे कहती—"ले खा ले, भगवान ने जाने मेरा ही दिल कैसा बनाया है कि......"

ग्रली पिला जवान हो गया।

●

"क्यों ग्रली, ग्रब कहीं शादी क्यों नहीं कर लेते ?" रहमान वानी (बनिये) की मस्त बीवी ने ग्रली पिला से पूछा। वह ग्रभी ग्रभी पानी ढोकर ग्राया था ग्रौर इस समय भात खा रखा था। रहमान वानी की बीवी उसके सामने बैठी थी।

"मेरी भी कोई मां बहन होती तो यह कौन सी बड़ी बात थी।" ग्रली-पिला ने भात का कौर चबाते चबाते ही उत्तर दिया—"ग्रब कौन है जिसे मेरी शादी की फिक्र होगी ?"

बात रहमान वानी की बीवी को तीर की तरह चुभ गई।

"जो चार पैंसे कमाते हो वे बचाकर क्यों नहीं रखते ?" रहमान वानी की बीवी ने कहा।

"मुझे पैसे कौन देता है ? तुम्हारे लिये पानी भर लाता हूँ, बोलो तुम मुझे कौनसे पैसे देते हो ?" ग्रली पिला ने कहा ग्रौर रहमान वानी की बीवी को जाने क्या हुग्रा। उसने सोचा कि इस बेचारे को सभी ने सस्ता समझ लिया है।

"यह लो, जेब में कुछ पैसे हैं जो मैंने एक दो जगह मज़दूरी करके जोड़ हैं।" ग्रली पिला ने कहा ग्रौर बायां हाथ दाहिनी ग्रोर की जेब में डाला ग्रौर एक मैली सी छोटी पोटली निकाल कर रहमान वानी की बीवी के हवाले की।

"ये पैसे जरा अपने ही पास रखना। कभी अगर कुछ और भी मिला तो वह भी तुम्हारे ही पास ज़मा रखूंगा।" अली पिला ने कहा और भात खाने लगा।

रहमान वानी की बीवी ने पैसे गिन लिये। कुल चालीस रुपये। उसने पोटली अपनी जेब में रखी।

उस दिन के बाद अली पिला हर रोज शाम को रहमान वानी के घर आता। और रहमान वानी का दुकान बढ़ाकर घर लौटने का समय होने तक वहीं पड़ा रहता।

रहमान वानी की बीवी ने केवल उसपर तरस खाकर उसे अपने घर आने जाने की इजाज़त दी थी।



पोषकुज अब थक चुकी थी। उसने तथा उसके पति ने बहुत यत्न किये थे फिर भी उनके यहां कोई सन्तान नहीं हुई। उसके ससुराल वालों ने भी अपने सारे तीर खाली कर दिये थे और अब वे भी मायूस होकर बैठे थे।

अपनी हालत से बेजार पोषकुज अब मैके आगई थी।

"तू 'दस्तार बदली' कर ले नहीं तो तेरी सारी जिन्दगी बर्बाद हो जायगी।" रहमान वानी की बीवी ने पोषकुज को सलाह दी।

पोषकुज ने दृष्टि उठा कर ऋषि बावा के आस्तान की ओर देखा। उसे अली पिला याद आया। शाम होने पर पोषकुज रहमान वानी के घर आई। अली पिला भी यथा नियम अपने समय पर आया। उस दिन से रहमान वानी की बीवी खुद पीछे हटी।

ऋषि बावा ने कृपा और दस्तगीरी की। नौ महीने के बाद पोषकुज की गोद में पहला फूल खिला। सभी खुश हुए। ससुराल वाले भी और मैके वाले भी।

फिर प्रत्येक वर्ष पोषकुज की गोद में एक एक फूल खिलने लगा। सब ने कहा ये ऋषि पुत्र हैं। ये खुद इस संसार में नहीं आये। उन्हें ऋषि बावा का प्रताप यहां ले आया। इनकी कद्र होनी चाहिए।

मगर अब बहुत हैं। ये सात ही यदि बच जायें तो सारी सृष्टि को हिला सकते हैं। अब बस होनी चाहिए। पोषकुज के सास ससुर उसके मैके आगये।

ऋषि बावा के ग्रास्तान में बांधे चीथड़ों की गांठ उन्होंने खोली, भण्डारा किया तथा पोषकुज ग्रौर ऋषि पुत्रों को साथ लेकर वापस चले गये ।

उसके बाद पोषकुज फिर कभी नहीं ग्राई । उसके बाद फिर कोई ऋषि पुत्र इस संसार में नहीं ग्राया ।

ग्रली पिला बूढ़ा हो गया ।

●

रहमान वानी की बीवी के किसी बात की कमी नहीं थी । वह फूली फली थी । उसका घर बेटों-पोतों, बेटियों बहुग्रों से भरा था । रहमान वानी भी हज करके ग्राया था ।

रहमान वानी की बीवी का दिल उदार था । लोगों का कहना था कि रहमान वानी के पास ग्राज जो कुछ है उसी के भाग्य से है । नहीं तो उसकी ग्रपनी क्या विसात थी । एक ग्रौर बात थी । रहमान वानी की बीवी को किसी भी बात पर गुस्सा नहीं चढ़ता था । उसने ग्राज तक किसी की निन्दा भी नहीं की थी । उसके मन में प्रत्येक के लिये दया ग्रौर ममता थी । यदि सम्भव होता तो वह किसी को भो मोहताज नहीं रहने देती ।

मगर ग्राज गुस्से से उसका तन बदन जल रहा था ।

रहमान वानी मसजिद से लौटा था ग्रौर लौटते ही उसने बीवी से कहा था—"सुना तुम ने ? ग्रली पिला मर गया ।"

रहमान वानी की बीवी के लिये यह कोई महत्वपूर्ण समाचार नहीं था । मगर पति बोल उठा—"मरने से पहले वसीयत कर गया है । सुना है उसके कुछ पैसे तुम्हारे पास जमा हैं । उसने कहा कि वे पैसे पोषकुज के बेटों को दिये जायें ।"

"क्या ?" रहमान वानी की बीवी मुश्किल से ग्रपने क्रोध पर काबू रख सकी ।

"ऋषि पुत्र जो ठहरे, भाग्य वाले !" रहमान वानी ने कहा—"बता दो कितने पैसे हैं ? मैं दे ग्राऊं ।"

रहमान वानी की बूढ़ी बीवी जल भुन गई । संदूक से एक मैली सी पोटली निकाल कर उसने पति के मुंह पर दे मारी । मन ही मन बड़बड़ाने लगी—"उसे मर कर भी चैन नसीब न हो । क्या मैं उसके लिये कोई भी नहीं थी ? वह मरदूद तो जैसे उसी चुड़ैल के लिये जन्मा था ।"

———

मिनी आकांक्षा

—श्रीकांत चौधरी

इशू किये परमिट, लायसेंस, फर्श पर गिरी रम की बूंदें और मंत्रीपद के लिए किये गये खून पसीने को एक करने वाली सहस्र धाराएं सूखने पूर्व ही लोकप्रिय नेता टी० बी० शैतान ने इस बद्तमीज संसार से आंखें फेर लीं। जनता के दुख दैन्य और नैतिक आचरण के बाद जिंदगी से आंखें फेरने का उनका यह दूसरा प्रयास था। वे सफल हुए।

बैंक डकेती सा, उनकी मृत्यु का समाचार क्षण भर में सारे नगर में फैल गया। कोई भी सभा, समिति, संगठन, नुक्कड़गुट ऐसा न था जिसने उनके कंठहार के लिए पैसे व्यर्थ न किये हों, घर बाहर शोकपूर्ण परिवेश था। नेता जी के चारों पुत्र बेहद दुखी थे क्योंकि चारों बेरोजगार थे।

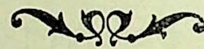
घर पर संवेदना प्रगट करने वालों का तांता लग गया। उनके उत्कर्ष काल में उनका मुंह न देखने वाले, इस शोक बेला में दौड़े दौड़े आये। मृतक मृतक है इसके प्रति आश्वस्त होना जरूरी था। नेता जी की मृतक आत्मा की शांति के लिये सभी ने प्रार्थना की। उनकी मृत्यु से कई आत्माओं को शांति मिली।

नेता शैतान की शवयात्रा प्रारंभ हुई। शोकाकुल नारों से बदनाम गलियां और अन्धेरे बन्द कमरे तक गूंज गए। आज नेता जी यदि जीवित होते तो, अपनी शवयात्रा में शामिल होने के जनसमूह के उत्साह को निरख, फिर चुनाव लड़ने का संकल्प कर लेते। अस्तु।

गली कूचे पार कर शवयात्रा स्थानीय सुप्रसिद्ध दैनिक के कार्यालय के

पास से गुजरने लगी। अचानक नेता जी की शव में हलचल हुई। धीरे से अपने मुँह पर से कफन हटा कर उंगली के इशारे से अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुला कर उन्होंने कहा—'बेटा शवयात्रा रोक दो। मेरे गले में १५, २० मालाएं और डाल दो। सामने 'दैनिक विस्फोट' का दफ्तर है वो लोग अपने आदमी हैं, शायद फोटो खींचें!'

इतना कहकर नेता जी फिर निश्चल हो गए।



कोख का दर्द

—अतिया परवीन
अनु०—सुरजीत

"उफ, खुदाया,"

एक कराह उसके खुश्क होंठों से निकली और उसने निढाल हो कर दीवार से सिर टेक दिया। उसके शरीर की रग-रग फोड़ा बन गयी थी। दाहिनी बांह में तो जैसे अंगारे से दहक रहे थे। डर के मारे वह जख्मी बांह को दूसरे हाथ का सहारा भी नहीं दे रहा था। एक बार तीव्र पीड़ा से बेचैन हो कर उसने झूलती हुई ज़ख्मी बांह को पकड़ लिया था तो चीख निकलते-निकलते रह गयी थी। उफ, कैसी बुरी तरह टीस उठी थी।

गिरते-पड़ते, सरकते, उठते-रेंगते हुए उसने न जाने कितना फासला तय किया था। न जाने किस दिशा से आया था। न जाने किस प्रकार अब तक जिन्दा था। उसे विस्मय हो रहा था। कानों में अब भी धाएं-धाएं की आवाजें गूंज रही थीं। जलती हुई आंखों के समाने शोले भड़क रहे थे। मानवीय शरीर गाजर-मूली की तरह कटते, जलते, भुनते और लुढ़कते महसूस हो रहे थे।

"आह यह जंग......" वह बुदबुदाया और आंखें बन्द कर लीं। हर ओर एक दहशतनाक सन्नाटा था—और घोर अंधेरा। ब्लैक-आउट और युद्ध के हौए ने उस जगमगाते हंसते खूबसूरत शहर को किसी कब्रिस्तान या मरघट में बदल दिया था। उसी अंधेरे के दामन में छुप कर वह अब तक जिन्दा था, वरना किसी गोली का सीने में उतर जान एक अटल सत्य था।

और अब......अब भी वह खतरे से कौन सा दूर था......न जाने कौन सी दिशा थी यह, कौन सी जगह, वह सोच रहा था। जिस दीवार से वह टेक

लगाए था, कच्ची थी और किसी मकान की चारदीवारी लग रही थी। प्यास ने गले में कांटे उभार दिये थे और जीभ मुरदा चमड़े की तरह सख्त हो गयी थी। पानी, काश दो बूंदें पानी मिल जाता।

"पप्पा, प्यास लगी है।"

नन्हें को रात में प्यास लगती तो पप्पा ही नोचता। क्या मजाल जो मम्मी की नींद खराब कर दे। वह उठता, नन्हे को पानी पिलाता। सोती हुई बीवी के सिर पर प्यार से एक धप जमाता और नन्हे को सीने से चिमटा कर फिर गहरी नींद में सो जाता।

"पप्पा जी! छी लगी है।" रात के किसी हिस्से में नन्हा उसे फिर झंझोड़ता।

"अरे बाबा, क्यों सोना दूभर कर रक्खा है ? अपनी मां को जगाओ न।" वह झुंझलाता। दांत पीसता, पर नन्हे को छी कराना ही पड़ती। बीवी की नींद वह क्यामत की नींद थी कि सिर पर ढोल बजाए जाते, तब भी करवट न बदलती. (आह! क्या आज भी वह ऐसी ही नींद सो रही होगी।) सोते में वह कैसी प्यारी लगती है। मुस्कराहट सोते में भी उसके होंठों से अलग नहीं होती है और सिर कभी तकिया पर नहीं रहता......जब जब वह जागता, सिर के नीचे तकिया सरका देता। ज़मीन पर आधी गिरी रज़ाई ठीक से ओढ़ा देता और नन्हा......आह! वह प्यारा गोल-मटोल चहकता हुआ बलबल!!!

"नन्हा किस का ?" मां पूछती।

"मम्मा का।" बलबल चहकता।

"देखा...आखिर घुटना पेट ही की तरफ झुकता है।" बीवी हंस कर उसको चिढ़ाती।

"क्यों बे यह नमकहरामी! बोल नन्हा किस का ?" वह डपट कर पूछता।

"पप्पा का!" नन्हा उसकी डपट से सहम कर जवाब देता तो बीवी प्रोटेस्ट पर उतारू हो जाती।

"जी नहीं! डराने धमकाने की शर्त नहीं है। आखिर हो न सिपाही। अक्खड़पन कहां जाए। बच्चे को डरा दिया......"

वह हंस कर नन्हे को बाहों में भर लेता और पहले नर्म गालों पर चटाख-पटाख पप्पी दे कर दुलार से पूछता—"किस का बेटा बोल नन्हे।"

"पप्पा का !" नन्हा फूल की तरह लिख कर नन्ही-नन्हीं बाहें उसके गले में डाल देता। आज उसी गले में प्यास ने काँटे डाल रखे हैं जिस सीने पर किसी की घनेरी ज़ुल्फें घटाओं की तरह उमड़ पड़ती थीं। थकान, दर्द और और भूख से फटा जा रहा था। दौड़ने के कारण सांस धौंकनी जैसी चल रही थी—"बाबा को मारे प्यास की बरदाश्त नहीं है।" न जाने कहां से एक शेअर का यह एक पद्य अन्धकार में डूबते हुए अवचेतन से आ टकराया। प्यास ! उफ ! यह प्यास ! उसने सूखी हुई जिह्वा को बड़ी कठिनाई से पपड़ी जमे होंठों पर फेरा। "तरी भी न आ सकी, आती कहां से। मौत : आह ए मौत। उस ने अर्द्धचेत्तावस्था में मन ही मन में पुकारा। पर सच पूछो तो वह मौत से भाग कर आया था। जिस समय उसकी बांह में गर्म-गर्म सीसा उतरा था। उस को उसी समय खत्म हो जाना चाहिए था। वह एक मौत उन हज़ार मौतों से अच्छी थी न। नाम अलग होता—शहीद, जहाद करने वाला शहीद।

हुँह। उसके होंठ उपेक्षा से सिकुड़ गये—जहाद, शहादत।

पड़ोसियों का गला काटो—जहाद, सुहागिनों के सुहाग मिट्टी में मिलाओ जहाद, नन्हे-मुन्ने मासूमों को बाप के स्नेह से वंचित करो जहाद, बुढ़ापे का सहारा छीनो—जहाद। पूछो जहाद यहां था, वहां तो नहीं था जहां से अपनी ही बांह काटी थी। अपनी ही को खाक और खून में लुटाया था। घर फूंके थे। फसलें उजाड़ी थीं और...और...कंवारियों के अछूते सीनों पर फौजी बूट रख-रख कर उनकी पवित्रता की धज्जियां उड़ाई थीं।

मैंने नहीं, मगर मैंने नहीं ! एक सूखी सिसकी उसके दुखते हुए सीने में आह बन कर टूट गयी। मैंने कई जगहों पर विरोध किया था। कई सिसकती-बिलखती जवानियों को दरिन्दों के पंजों से छुड़ाया था। पर एक अकेले से क्या होता था। उसकी प्रतिरोध-ध्वनि कहकहों में खो जाती थी। यह अत्याचार वह सहन न कर पाता। उस ज़गह से हट जाया करता था। कानों में उंगलियां दे लिया करता था, लेकिन उस पर भी चीखें उसके दिल-दिमाग को टुकड़े-टुकड़े करती ही रहतीं......।

"ओए तू मर्द भी है...?" उसके साथी उसका मज़ाक उड़ाते। दुख और गुस्से की ज्यादती से उसकी आवाज़ ही गूंगी हो जाती थी। वह बहुत कुछ

कहना चाहता, पर कुछ न कह पाता। सीने में ज्वालामुखी जैसा लावा पकता रहता। उसके साथियों के कथनानुसार वह सच्चा सिपाही नहीं था। न जाने कितने स्थान ऐसे आये, उसकी बन्दूक निहत्थे इन्सानों पर गोली न उगल सकी। उसके फौजी वजनी बूट कमजोर बूढ़ों या मासूम बच्चों को ठोकरों पर न उड़ा सके। खड़ी फसलों को रौंद न सके।

"बुज़दिल है मेरा यार......" साथी मज़ाक उड़ाते।

वह सोचता रह जाता। क्या मैं बुज़दिल हूं? आग और खून की होली के बजाय उसका दिल जिन्दगी की रंगीनियों को अपने अन्दर समो लेने को चाहता। पड़ोसियों को कटखन्ने बन्दरों की तरह दांत दिखाने के बजाए खुशगवार मुस्कराहट के साथ हाथ मिलाने को चहता......लेकिन किसी एक की इच्छा से क्या होता है......

"आह...उफ......।" यह दो शब्द उसके खुश्क होंठों पर कांपे। उसी समय किसी दरवाज़े के खुलने की आवाज़ सुनाई दी। बेहद समीप से। वह निश्चल हो गया। मौत ने आखिर उसे ढूंढ ही लिया था।

"हे भगवान......क्या घोर अंधियारा है ......" एक नारी स्वर उभरा और उसकी रगों में खून बर्फ बनने लगा। नरक से भाग कर वह कुएं में आ गिरा था। बिना सोचे-समझे बस जिधर मुंह उठा था, उधर वह भाग निकला था। आग खून, कराहों, चीखों, गड़गड़ाहटों के बीच में वह न जाने किस प्रकार निकला था। बस एक दम एक ख्याल आ गया था...अपनी बांह से बहते खून की धार को देख कर किसी सुर्ख मांग और गुलाब की पांखुरी जैसे मुस्कराते होंठों का ख्याल, उस सुर्ख गर्म सूट का ख्याल जो वह पिछली ईद में नन्हे के लिए लाया था। नन्हा उस सूट को पहन कर बीरवहूटी बना हंसता, उछलता, घूमता रहा। एक एक को पकड़ कर अपना सूट दिखाता रहा।

"देखो अच्छा है न, पप्पा लाए हैं। पप्पा मुझे कितना ढेर सारा प्यार करते हैं......"

उस ढेर सारे प्यार को दिल की धड़कनों में छुपाए वह अपने ज़ख्मी होने की परवाह किये बिना खाक और खून तथा आग की उस बरसात से भाग निकलता था।

और अब! और अब!!

"हे भगवान...यह कौन है ?" एक चीख सुनाई दी। अब उस में न उठने की शक्ति थी न बोलने की। अपने को हालात की दया पर छोड़ कर वह बेसुध हो गया।

"श्याम...अरे ओ श्याम...जरा बत्ती दिखा दे...देख तो यह कौन पड़ा है..."

और कुछ घण्टों या कुछ सदियों के बाद जब उसकी आंख खुली तो कुछ देर तक वह सोचने-समझने के योग्य न हो सका। धीरे धीरे उस की नजर ने काम करना शुरू किया।

चिकनी मिट्टी और गोबर से लिपा-पुता वह साफ-सुथरा कोठरी नुमा कमरा था। पयाल के गुदगुदे फर्श पर दोहर बिछा कर उसे लिटाया गया था। भारी और खून व खाक में लतपत लिबास के बजाय शरीर पर हलकी कमीज और टांगों पर लुंगी थी। टीसें उठती हुई बांह को साफ कर के मज़बूती से बांध दिया गया था और पीड़ा विस्मयकारी रूप में कम थी।

यह सब अनजाने में हुआ होगा...इन लोगों को क्या पता कि मैं दुश्मन का सिपाही हूँ। उसने सोचा, और घूमती हुई उसकी दृष्टि दीवार की ताक में रखी बंसी बजाते हुए कृष्ण की मूर्ति पर पड़ी। वह उधर देख ही रहा था कि दरवाजा धीरे से खुला और नंगे पांव को हौले-होले रखती हुई एक अधेड़ औरत अन्दर आई। उसके हाथ में पीतल का जगमगाता हुआ गिलास था और गिलास में दूध। उसे आंखें खोले देख कर औरत का चेहरा खिल उठा। लपक कर वह करीब आई और उसके सिर पर हाथ रख कर बोली—"जाग उठे बेटा ! लो दूध पी लो...।"

(अम्मां भी ऐसे ही कहा करती थी। जाग गये सुलेमान। लो पहले एक कटोरा दूध पी लो। "रात भर पढ़ाई की है। दिमाग झनझना रहा होगा।) दूध के नाम से याद आया उसे सख्त प्यास लगी थी। लेकिन अब उस प्यास में कितनी कमी आ गई थी। गला भी गीला था और जिह्वा भी नर्म हो गई थी। औरत उसको होंठों पर जीभ फेरते हुए देख कर बड़े प्यार से बोली—"बेहोशी में तुम पानी पानी कह रहे थे बेटा। मैंने चमच से तुम्हारा मुंह खोल कर पानी पिलाया है। लो पहले दूध पी लो। बड़ा खून बह गया है। मुंह पीला हो गया है। आओ ! मैंसहारा दे कर उठा दूं।"

अचानक उसकी खुश्क आंखें आबशार बन गईं। यह सादा-दिल ग्रामीण स्त्री कितना बड़ा धोखा खा रही है।

"रो मत पुत्र......जी और निढाल हो जायेगा......" औरत ने पयाल पर बैठते हुए उसका सिर अपने घुटनों पर रख लिया।

गोद ! आह जैसे मां की गोद ! वही गर्मी, वही नर्मी, हाथों का वही मुहब्बत से भरपूर स्पर्श। जब वह स्कूल से थका-हारा आता तो अम्मां की गोद में घुस कर लेट जाता। वह सिर में फर्जी जुएं टटोलती रहतीं और हौले-हौले कुछ गुनगुनाती रहतीं। आज वही गोद थी, वही नर्मी और गर्मी !! बरसों बाद ममता की यह छाया नसीब हुई थी। (आज अम्मां की आत्मा भी बेकरार होगी और उस समय निश्चय ही खुशी से भरपूर हो गई होगी। ममता ईश्वर की कृपा की तरह उनके थके-हारे भूखे-प्यासे बेटे पर बरस रही है।) लेकिन जब मालुम होगा कि मैं कौन हूं तो ? उसका जी चाहा, भेद खुलने से पहले उन क्षणों को समेट कर अपने भीतर रख ले।

"ले दूध पी ले बेटा......हाय, उस मुई लड़ाई ने कैसे-कैसे लालों की भेंट ली है। भगवान ! इनसानों को शांति दे......।"

औरत ने गिलास उसके होंठों से लगा दिया। आंसुओं के झरने से कुछ बूंदें गिलास में गिरीं और गर्म गाढ़े दूध में घुल-मिल गयीं।

"बहुत दर्द है बच्चे..." ममता भरा हाथ उसका सिर सहलाए जा रहा था। खाली गिलास फर्श पर लुढ़का कर वह दोनों हाथों से धीरे धीरे उसका सिर दबाने लगी।

"उफ ! यह कैसी शान्ति थी। कैसा आराम था। किस तरह की राहत थी...।"

"माँ !" एक दम वह बिलख उठा। प्रयत्न करके जख्मी हाथ से ही उसने औरत का एक हाथ पकड़ा और कांपते हुए स्वर में बोला—"मां ! तुम्हें पता है मैं कौन हूँ ?"

"पता है।"

"क्या......तू तो फिर......"

"फिर यह कि अब सो जा चुपचाप......वह मुसकरायी। वातावरण में एक नूर-सा बिखर गया।

"मां मैं...मैं..."

"तुम एक मइया का लाल है। एक मांग की लाली है। एक बच्चे का बाप है, बहनों का अरमान है और बेटा, तू एक इनसान है। इतना मैं जानती हूँ और बस..."

उसे फिर भी तसल्ली नहीं हुई। उसी प्रकार बिलखते हुए कहा—"मां! तू नहीं जानती...मैं मुसलमान हूँ...पड़ोसी मुल्क का सिपाही...।"

"होगा," औरत अधिकारपूर्ण स्वर में बोली—"बस अब सो जा चुपचाप ...मैं तेरे लिए खाना बनाती हूँ.........।"

"मां, मां" उसके मुंह से केवल इतना ही निकला। उसने औरत की गोद में सिर घुसाते हुए ज्यों लम्बी सांस ली, मानों कोई थका-हारा बच्चा प्रेम की मारी मां की गोद में शरण ढूंढ कर आश्वासित नींद की गोद में पहुँच जाये।



राष्ट्रकवि से

—किशन स्मैलपुरी

ऐ कविवर धन्य है तू, धन्य कविताएं तेरी।
विश्व का श्रृंगार हैं, उद्‌गार मालाएं तेरी।
तारा मंडल से कहीं ऊंची हैं रचनाएं तेरी,
चांद सूरज क्यों न रचनाओं को चमकाएं तेरी।

तुझ को जो जो वस्तुएं भाती हैं कविता के लिये।
खोज लाती है प्रतिभा तेरी चारों लोक से।

लेखनी से फूल कागज़ पर खिला देता है तू,
भावना से आग सी मन में लगा देता है तू।
सामने आंखों के ऐसे दृश्य ला देता है तू,
स्वर्ग क्या वस्तु है क्षण भर में दिखा देता है तू।

तू महा ज्ञानी है समदर्शी है प्रेम अवतार है,
ऐ महा योगी चमत्कारों का तू भण्डार है।

सरस्वती माता का हर क्षण तेरी जिह्वा पर निवास,
तेरे इक इक शब्द में है सत्य के फूलों की बास।
अक्षर अक्षर में मधुरता तेरे पद पद में मिठास,
तेरी रचनाओं के प्यासे सब तेरे चरणों के दास।

प्रेम से इक कण को भी हीरा बना देता है तू,
क्रोध में हीरे को कंकर से मिला देता है तू।

ऐ कवि तू आज हमको अपनी वह कविता सुना,
अक्षर अक्षर जिसका इक भण्डार हो प्रकाश का।
दामिनी का रूप हर रेखा ने हो जिस की भरा,
बिन्दु बिन्दु को हो जिसकी तूने उज्ज्वल कर दिया।

उसमें कुछ ऐसी विलक्षणता हो, वह शृंगार हो,
मानों सूरज, चांद तारों का दमकता हार हो।

आज हमको अपनी वह कविता सुना दे ऐ कवि,
जो है तेरे नाम को दुनिया में उज्ज्वल कर गई।
देश भक्ति का हो जो हर मन में अमृत घोलती,
जो हो जीती जागती तस्वीर भारत मात की।

उसके आगे हम उसे गाएं तो माता झूम उठे,
मुग्ध हो हो कर हमारी प्राण दाता झूम उठे।



पन्द्रह अगस्त से

—डा० वेदकुमारी

कोटि जन ने प्राण दे पाया तुम्हें प्राणदायक पर्व तुम आते रहो।
भूमिका बलिदान की तुम से जुड़ी नित नये अध्याय लिखवाते रहो।

१

बहुत काली बहुत लम्बी रात थी, विवशता की घुटन की अभिशाप की।
बन्धनों में आह भरती सिसकती, मातृ भू के कष्ट के संताप की॥
आए तुम आलोक नभ में छा गया, स्वतन्त्रता के सूर्य की चमकी किरण।
हमने देखे मां के बन्धन टूटते, पर साथ देखी कटते अंगों की दुखन॥
मन की पीड़ा को दबा मुस्का उठे, ताकि तुम निश्चिन्त मुसकाते रहो।
कोटि जन ने प्राण दे पाया तुम्हें, प्राणदायक पर्व तुम आते रहो॥

२

तुम्हें खिलता देखने की चाह में, मुर्झा गये खिलने से पहले कई सुमन।
भगतसिंह, आजाद, बिस्मिल सैंकड़ों ने झूम करके कर लिया मृत्यु-वरण।
ताकि भारत देश की यह नयी पौद उगे पनपे सांस आज़ादी की ले।
टूटे न अरमान बचपन का कोई, उमंग यौवन की न तिल २ कर जले॥
वीर जिन पगडंडियों पर मर मिटे, पथ नये तुम वहां बनवाते रहो।
कोटि जन ने प्राण दे पाया तुम्हें, प्राणदायक पर्व तुम आते रहो॥

३

आज पैरों में नहीं हैं बेड़ियां और हाथों में नहीं है हथकड़ी।
देश के निर्माण का पथ है खुला, कोई बाधा राह रोके न खड़ी॥

फिर भला छाए उदासी क्यों यहां, दैन्य या नैराश्य क्यों टपके कहीं ?
आज मेरे देश की स्वाधीनता, पार कर शैशव जवानी में बढ़ी ।।
इस जवानी में रवानी डाल कर, दिलों में इक जोश उमगाते रहो ।
कोटि जन ने प्राण दे पाया तुम्हें, प्राणदायक पर्व तुम आते रहो ।।

४

जन्म ले स्वाधीन धरती में पला, युवक मस्ती में न लम्बी तान ले ।
तिलक, गांधी, गोखले का शिष्यगण, मातृभू को मिट्टी ही न मान ले ।।
देशभक्ति त्याग और बलिदान है, कोई भी व्यापार इस को न बनाए ।
मां के उज्ज्वल धुले आंचल पर मलिन दाग कोई देशद्रोही न लगाए ।।
राम कृष्ण गौतम अर्जुन की जन्मभू को वीर पुत्रों द्वारा पुजवाते रहो ।
सोए तो मां का मुकुट छिन जाएगा बात इतनी सी तो समझाते रहो ।।
कोटि जन ने प्राण दे पाया तुम्हें, प्राणदायक पर्व तुम आते रहो ।।



तम-बोध

—सुदर्शन पानीपती

अंधियारे का काला सागर,
उफन रहा है मचल रहा है।
सन्ध्या की कचनारी आभा,
धीरे धीरे गहनाएगी।
रात किसी हिंसक डायन सी,
ज्योति-पुंज को खा जाएगी।
हाथ पसारे भय का राहू,
वीराने से निकल रहा है।

तम की दीवारों के पीछे,
मानवता का रक्त बहेगा।
आंसू की मदिरा छलकेगी,
भैरव का उन्माद चढ़ेगा।
दीप शिखा रोएगी ज्यों-ज्यों,
पायल का स्वर और बढ़ेगा।
सुलग उठेंगी ठण्डी लाशें,
पुण्य, पाप का भार सहेगा।

अरमानों की राख लालिमा-
वन अधरों पर छितराएगी।
मजबूरी का इंगित पा कर,
इच्छाओं का नर्तन होगा।

कजरारे नैनों में मन की,
पीड़ा का दिग्दर्शन होगा।
अपनी चिता जलाकर ममता,
निज किस्मत पर इतराएगी।

धूमिल लौ में निर्मम साए,
झूम उठेंगे, मुस्काएंगे।
तरुण शरीरों की अरुणाई,
लावा बन कर पिघल उठेगी।
दुलहन बन कर मर्यादा खुद,
अपने मातम को निकलेगी।
संस्कृति के पावन नारे-
कोलाहल बन कर रह जाएंगे।

युग-युग में तम-बोध कराने
उभरी कितनी ही आवाज़ें।
धर्म, विद्वता, ज्ञान, बुद्धि औ,
तर्क चले निज रंग ज़माने।
गहन तिमिर में बिखर गए पर
सारहीन वे सब अफसाने।
तोड़ गई दम दूर शून्य में,
सब गूंगी, बहरी आवाज़ें।



ताम्र-पत्र

—देवरत्न शास्त्री

आज़ादी की रजत-जयन्ती के अवसर पर
जय घोषों के तुमुलनाद से
दूर, गांव में
टूटे-फूटे खपरैलों की जीर्ण कुटी में
बैठा एक पुरुष, पतझड़ सा,
देख रहा है—
बूढ़ी आंखों से
देहली में
अभिनन्दन अपना।

पंक्तिवद्ध सेनानी बैठे
राजकृपा की आशा ले कर
ताम्रपत्र में आ बैठी जो।
चम चम चेहरे;
चम चम आंखें;
चम चम टोपी;
चम चम धोती;
जूते चमचम, चरमर-चरमर;
अभिनव ताम्रपत्र भी चमचम।
आम दिवान लगा दिल्ली में।
सचमुच रजधानी है निर्मल—

स्वच्छ, सुधौत, मंजुल, अतिविकसित।
चमचम वर्दी वाले प्रहरी ने रोका
इस फटे हाल बूढ़े मानव को।

"कहां हो जाते ?
पता नहीं क्या तुझ को कुछ भी !
आदर पाने आये थे
आज़ादी के सैनिक मतवाले
जिनके डर से था कांपा शासन विदेश का"

"पता नहीं था मुझ को भाई—
आज़ादी के सैनिक भी हैं
करते आकांक्षा आदर की !

मैंने देखा सेनानी को
हंस मृत्यु का आलिंगन करते,
कष्टों के सागर में तिरते,
अटल हिमालय की दृढ़ता ले
तूफानों में आगे बढ़ते"

आज उन्हीं को चमचम जगमग
दीपावलि में
ताम्रपत्र ये शिरोधार्य करने को
आतुर देख रहा हूँ।



हम एक हैं

—केदारनाथ कोमल

हमने इतिहास बदलते देखे हैं
हमने विश्वास बदलते देखे हैं
हमने भू-ग्राकाश बदलते देखे हैं
एक ही माला के बिखरे
हम पुष्प ग्रनेक हैं !
हम एक हैं !!

ग्रंगारों पर चलते ग्राये हैं
हंस-हंस कर जलते ग्राये हैं
सत्य की खातिर मरते ग्राये हैं
स्वतन्त्रता की किरणों के
हम ग्रभिषेक हैं !
हम एक हैं !!

पर्वत पर्वत चढ़ते जायेंगे
बस्ती बस्ती दीप जलायेंगे
लहर लहर संग मुस्कायेंगे
मानवता की पुण्य-ज्योति के
हम उद्रेक हैं !
हम एक हैं !!



आग्रह

—ओमप्रकाश गुप्ता

हे श्रमिक बन्धु—
गिराना चाहते हो तो गिराओ
अवश्य गिराओ
पर कारखाने की दिवारों को नहीं
बल्कि श्रमिक और मालिक के बीच खड़ी
मतभेद की दीवार को
जिससे आपसी प्रेम जागृत हो।
खोदना चाहते हो तो खोदो
अवश्य खोदो
पर अपने कारखाने की जड़ों को नहीं
बल्कि एक नये कारखाने की नींव को
जिससे हमें अधिक रोजगार मिले।
मिल कर चलना चाहते हो तो चलो
अवश्य चलो
पर बेहूदी हड़तालियों की भीड़ के साथ नहीं
बल्कि मशीनों के साथ
जिससे उत्पादन बढ़े।
सुनना नहीं भी चाहो तो भी सुनो
मेरा आग्रह—
आपसी प्रेम बढ़ाओ
रोजगार दिलाओ, उत्पादन बढ़ाओ।

उपहार

—जीवन महता

मेरे देश वासियो
सज्जनो, सन्नारियो,
ग्राग्रो
स्वतंत्रता के रजत पर्व पर
हम सब मिल कर
यह व्रत लें
यह प्रण करें,
कि जब तक रहेगा
कोई भी पेट भूखा
कोई भी तन नंगा
ग्रौर कोई भी सिर ग्राश्रय हीन
कि जब तक रहेगा
किसी भी ग्रांख में ग्रांसू
किसी भी मन में
ग्रज्ञान का ग्रन्धकार,
तब तक हम
न चैन की सांस लेंगे
न सुख की नींद सोयेंगे
वरन् रहेंगे निरन्तर संलग्न
देश के नव निर्माण में
उसके ग्रभ्युत्थान में,
ग्राग्रो
हम सब मिलकर
यह सौगन्ध खायें
यह संकल्प करें,
कि देश को बनाने के लिये महान
सुखी ग्रौर सर्वशक्तिमान
हम ग्रनवरत उत्पादन बढ़ायेंगे
दिनरात कारखाने चलायेंगे
खेतों में नित नये बीज बोयेंगे
फसलों पर फसलें उगायेंगे
ग्रौर इस तरह ग्रविराम
हर क्षेत्र में
एक के बाद एक
नई क्रान्तियों के
दौर पर दौर चलायेंगे,
ग्राग्रो
यह प्रतिज्ञा करें
यह ग्रह्द उठायें
कि हर बाधा को चीर कर

निरन्तर कार्यरत हम
अपने कर्म पथ पर
सतत आगे बढ़ते जायेंगे
हम हर आंख के आंसू को
पोंछ देंगे
हर पेट की आग को
बुझा देंगे
और हर आश्रय हीन सिर पर
सुरक्षा का चंदोवा
तान देंगे
श्रम के सपूत हम
हर विषमता को पाट देंगे
और निर्धनता के अंधकार में
भटकते हर देशवासी को
समृद्धि के प्रकाश का
भेंट नव उपहार देंगे ।।



अनुभूति

—शंकर शर्मा 'पिपासु'

यह नई अनुभूति है क्या !
क्यों उठी पीड़ा हृदय में क्यों किसी न गुद्गुदाया
क्यों किसी ने है अचानक गानमधु उर में जगाया
नेह की यह विभूति है क्या ?

अनुपमा छवि नाचती है लोचनों में आज मेरे
याद किस की निठुर पल पल मृदुल मन को आज घेरे
सुघरता की मूर्ति है क्या ?

विकलता आकुल हुई क्यों मुदित मोद हुआ स्वयं क्यों
दुखद दुख भी सुखद हो अपना रहा मुझ को स्वयं क्यों
मधुरता की पूर्ति है क्या ?
यह नई अनुभूति है क्या ?



चाहने भर से

—राजेश राही

किस नयन में आंसुओं के दीप मुस्काते नहीं
किस गगन में आस के पंछी भटक जाते नहीं
चाहने भर से किसी के पंख लग जाते नहीं

किस हृदय को आस ने घर कर नहीं लूटा
स्वप्न वो किस आंख में है जो नहीं टूटा
किस दिशा से आस के रथ लौट कर आते नहीं
चाहने भर से किसी के पंख लग जाते नहीं

नित नई किरणें लिए सूरज निकलता है
तब कहीं जाकर कमल का फूल खिलता है
जुगनुओं की रोशनी में फूल खिल पाते नहीं
चाहने भर से किसी के पंख लग जाते नहीं

मांझियों का नाव को झूठा सहारा है
हर लहर से एक दिन छूटा किनारा है
किस डगर में कौन से साथी बिछड़ जाते नहीं
चाहने भर से किसी के पंख लग जाते नहीं

मौन का इतिहास क्या है– मौन ही जाने
आंसुओं में मोतियों को कौन पहचाने
देखने में कौन से आदर्श मन भाते नहीं
चाहने भर से किसी के पंख लग जाते नहीं

——:०:——

नई सुबह आने दो

—सत्यप्रकाश 'बजरंग'

नई सुबह आने दो
रात बीत जाने दो।
मन के वातायन पर
गंध बिखर जाने दो।।
भोर गीत गाने दो।

पुष्प खिले भंवरों ने गीत गुन गुनाये।
नेह भरी पुरवा ने शब्द कुछ गुंजाये।।
पीर के प्रसंग बीच—
प्रीत जगमगाने दो।
नई सुबह आने दो।।

अनुबंधित शपथों ने पालकी सजाई।
उपवन में शिल्पी की मूर्ति दृष्टि आई।।
धूप दीप चंदन की—
अर्चना सजाने दो।
नई सुबह आने दो।।

अंकों के मिलने पर बिन्दु थरथराए।
मनो योग गीतों के भावुक हो आए।।
सोये जो शब्द नाद
अधर पट हिलाने दो।
नई सुबह आने दो।।

सतरंगी किरनों की अम्बर पर छाया।
जागृति का नन्हा शिशु देहरी तक आया॥
ममता की बाहों को—
झूलना झुलाने दो।
नई सुबह आने दो॥



कैसे जिऊं

कुमार शिव

कहां तक घिसूं
मन: स्थितियां कागज़ पर
अपनी असमर्थता को
आखिर कब तक
प्रतीकों में ढालता रहूं
कुण्ठाओं में भी तो
फूल उग आए हैं अब
बताओ कैसे जिऊं ?



इतिहास के मध्य से

—नरेन्द्र चतुर्वेदी

इन शिखरों पर कभी हमने भी कदम रखे थे
जहां हवाएं गीत गाती हैं
और आंखें सुना करती हैं
उड़ते हुए आवारा अश्वारोही बादल
कर देते हैं
युद्ध विराम की घोषणा
आम्रमंजरियों का अनकहा स्पर्श
अस्पष्ट ध्वनियों का मदमाता संगीत
हमने भी पहचाना था,
अपराजित यात्रा से लौटने के बाद
घाटियों में अब सुनाई देते हैं
आवारा हवाओं के बजते हुए सायरन
क्रुद्ध अश्वारोही बादलों के निरंतर हवाई हमले
सम्पर्क सूत्र टूट से गए हैं

हम अलग थलग
अभिवादन की मुद्रा में
नदी तट से हो गए हैं
ढूंढते हैं घाटियों में बिखरे हुए क्षण
जो अब अपने नहीं हैं
जिन्दगी—

मटमैले पन्नों की अनपढ़ी किताब
सीवन पर आकर खुलसी गयी है
अब यही है सार्थकता
यह है शेष क्रम
याद रखना—
दोहराना
और फिर सब भूल जाना।



हे समय ! मैंने तुम्हारे हाथ जोड़े

—शिवनारायण उपाध्याय

न जाने कौन सा क्षण
तुम्हारी मांग में सिन्दूर भर दे।
न जाने कौन सा क्षण
तुम्हारे हाथ को थामें
तुम्हारी पीठ सहलाये।
न जाने कौन सा क्षण
तुम्हारे नेह को जोड़े,
हम जुदा होंगे नहीं
यह शब्द कहलाये,
न जाने कौन सा क्षण
ख्वाब जैसे अलबिदा कह
साथ छोड़े
हे समय ! मैंने तुम्हारे हाथ जोड़े



मौसम का हनीमून

—नारायण उपाध्याय

आषाढ़ी शावर से
नहायी वसुधा के रेशमी केश
नीम की पत्तियों में लहराये
सौंधी सुगन्ध से
प्रियतम को ऋतुमति
न्यौतती रही——न्यौतती रही
जाने कब रात के
स्याह परदे गिरे
बूंदा-बांदी होती रही
सुबह ही सारा गांव
मीठी महक में डूब गया
एक अव्यक्त खुशी को
सभी जताने लगे
कि मौसम का गुपचुप
हनीमून हो गया



?

—भुवनपति शर्मा

मैंने क्या किया ?
हेमन्त कुमार वसु के
घायल प्राणों के
इस प्रश्न का उत्तर
खोजना चाहता हूं मैं
ग्रौर यह एक विशाल
ग्रनुत्तरित प्रश्न
ग्रनेकानेक समस्याग्रों का
जन्म दाता ग्राज मेरे
कवि लेखक कलाकारों के सामने
चुनौती वन खड़ा हो गया है
मैंने क्या किया है ?
हर घायल सांस
तड़पती ग्रास
भूखे पेट सोने वाला
ग्रौर
पाकिस्तानी ग्रत्याचारों को
सम्मुख हो छाती पर झेलने वाला
ग्राज का हर बंग बन्धु
छाती पर बम वान्ध

टैंक नष्ट करने वाली
हर रोशन आरा पूछती है
वोट जो दिया है तो
क्या अपराध किया है ?
मैंने क्या किया है ?
चुनावों से पहले जब कोई करीम
किसी श्याम को छुरा घोंपता है
तो घायल मन भी पुकारता है
दंगे से लाभ उठाने वाले दौड़ते हैं
एक दूसरे पर दोष धरते हैं
और
जीत कर उन्हें भूल जाते हैं
कहते हैं
मैंने क्या किया है ?
आज का हर नक्सलवादी
माओ का पुजारी--
जब देश का खा कर
विदेश का गाता है
माओ की पुस्तक हाथ ले
जब विवेका नन्द, रवीन्द्र, गान्धी
पर कोल तार पोतता है
पुस्तकें जलाता है
और रात के अंधेरे में
एक नहीं अनेक
भाइयों को कहीं
मौत के घाट उतारता है तो
उन सब की आत्माओं की आवाज
एक प्रतीक प्रश्न बन
हेमन्त वसु की
अतृप्त आत्मा के साथ
पूछने लगती है स्वाल
मैंने क्या किया है ?

देवता हूं मगर

—रामनाथ 'कमलाकर'

वेद होकर स्वयं बांचता पोथियां
देवता हूँ मगर अर्चना कर रहा हूँ ।
जब हृदय में उठा एक संकल्प तो बंध गई यह प्रकृति बाहुओं में विवश
सांस ली तो ऋचाएं जनमने लगीं, मन हंसा तो बना चन्द्रमा रस कलस
प्राण बनकर समाया हुआ सब जगह
मैं गगन हूँ मगर कल्पना कर रहा हूँ
दृष्टि से वाक से दूर हूँ पर मुझे लग रहा बंध गया रूप से नाम से
प्यार कृति से हुआ चेतना को कि ज्यों तप्त सूरज ढँका मेघ की छांव से
नित्य निर्बाध मैं बाध्य ऐसा हुआ
साध्य होकर स्वयं साधना कर रहा हूँ ।
दर्शनों के लिये भीड़ में हो खड़ी देव प्रतिमा कि ज्यों चढ़ रही सीढ़ियां
रत्न का एक भंडार ताला जड़ा हाट-बाज़ार में खोजता कुंजियां
बात अचरज-भरी किंतु सच है कि मैं
कल्प तरु हूं मगर कामना कर रहा हूं ।
रे अपरिचित नहीं है कहीं कोई भी कर रहा किंतु परिचय कि अनजान-सा
भा गया नयन को उसी के लिए परिक्रमा कर रहा भृंग के गान-सा
क्या कहूं वासना को अमृत पुत्र मैं
ओस कण के लिए याचना कर रहा हूं ।



शब्दों का मिलन

—मनोहर शर्मा

शब्दों का शब्दों से होता है रोज मिलन।
नज़रें तो मिलती हैं किन्तु नहीं मिलते मन॥
कागज़ के फूलों सी कोरी हमदर्दी है
करुणा के वस्त्रों में लिप्टी बेदर्दी है
शब्दों में गर्मी है भावों में सर्दी है—
रात्रि सा कलुषित है मानव का अन्तर्मन।
नज़रें तो मिलती हैं किन्तु नहीं मिलते मन॥
शब्दों के जमघट में बातें ही बात हैं
स्नेह-सिक्त वाक्यों की फीकी सौगातें हैं
तेजहीन उजियाले तिमिर-ग्रस्त रातें हैं
मरुस्थल हैं प्यासे और पानी से रीते घन।
नज़रें तो मिलती हैं किन्तु नहीं मिलते मन॥
बुलबुल के गीतों में दर्दभरी तानें हैं
फूलों के मुखड़ों पर फीकी मुसकानें हैं
भंवरों की आंखों में झूठी पहिचानें हैं
खिलते लुट जाता है कलिकाओं का यौवन।
नज़रें तो मिलती हैं किन्तु नहीं मिलते मन॥
शब्दों का शब्दों से होता है रोज मिलन।
नज़रें तो मिलती हैं किन्तु नहीं मिलते मन।



ज्योति किरण

—शक्ति शर्मा

लो पात पात पर नाच उठी
यह ज्योति किरण सुहाग भरी
सिन्दूर छा गया बदली में
लहरों पे पायल जा बिछली
तरु तरु पे गीत सुखद जागे
भंवरे की पांख हुई गीली
डाली-डाली लो मचल उठी
पाकर तरुणाई सिहर भरी
लो पात............

कुछ कहा पवन ने चुपके से
भोली कलिका झट मुस्काई
हीरक मांगों से भरे और
हरियाली आंचल भर लाई
छा गया चतुर्दिक कोलाहल
मंगल कुंकुम श्री सब बिखरी ।
लो पात............



गीत

—के० सि० 'मधुकर'

प्यार की मनुहार चंचल
अर्चना के पंख लेकर उड़ चली
प्रणय की थपकी न सहकर
डगमगायी पांखुरी,
उच्छ्वास की ऊषण चुभन से
कसमसाई बांसुरी
नयन की सी थी छलक हर
याचना के पंख लेकर उड़ चली।
वेदना की बाहों की परिधि
हुई कुछ सांकरी
जैसे तमी की गोदी में
हो बन्दिनी विभावरी
मचली सुधी कुछ इस तरह कि
कल्पना के पंख लेकर उड़ चली
मर्म के सोपान से भर ली
हिये ने गागरी
अनुरोध के घनश्याम ने
फैंकी नजर की कांकरी
विरह से पीड़ित प्रीति
वेदना के पंख लेकर उड़ चली।

—:o:—

सत्संग की महिमा

—हरिकृष्ण कौल

तपस्या आत्म प्रवंचना है
पाप है, पाखंड है।
सत्संग की महिमा अपरम्पार !
(साक्षी है पुरातमकार)
मूढ़ अज्ञानी तप करते हैं
ज्ञानी करते सत्संग।
संग साथ सजनों के रहते,
संतों की करते सेवा।
अहंकार छोड़ अभिमान त्यागकर
महाजनों के पीछे चलते।
श्रद्धा-भक्ति नहीं बदलती,
श्रद्धेय इष्ट भले ही बदलें !
अनासक्त, मोद से आछूते
सब की जयजयकार बोलते।
कुरसी आगे शीश नवाते
बैठा चाहे कोई भी हो।
सलाम बजाते कोठी को
रहता चाहे कोई भी हो।
अपना आहं कुचल कर ही वे
भार उठाते हैं धरती का
अफसर और मिनिस्टर बनते
तेरे मेरे भाग्य बिधाता।
बंधु, सत्संग की अजब कहानी है।
सब बख्शी साहब की मेहरबानी है।

निकटतम दूरी

—दीपंकर

आस्थाओं, अनास्थाओं के बीच
थरथराती जिन्दगी के गिरेबान पर
अभी और कितनी मुट्ठियां कसेंगी ?
हमदर्दी के मुखौटे
और कब तक छलावा देंगे
पता नहीं ।
राह चलते सोचता हूँ
सामीप्य का क्षण कितना सुःखद होगा ।
हाथ अनायास ऊपर उठता है
और पास के वृक्ष की
एक हरी पत्ती तोड़कर
अपनी नोटबुक में रख लेता है ।
एक्सपेरीमेंट !
यह अब मेरे पास रहेगी
मेरे निकट ।
कुछ दिन बाद
जब वह पत्ती सूख कर रंग बदल देती है
तब ? तब लगता है कि
सामीप्य के क्षणिक सुख से तो
दूरियों की चहारदीवारी कहीं
बेहतर है, बेहतर रहेगी ।

गीत

—उमाकान्त मालवीय

सूर्य, कभी कौड़ी का तीन नहीं होगा।

गर्भ से मिली जिस को
कठिन अग्नि - दीक्षा
उस को क्या है
संकट, चुनौती, परीक्षा।
सोना तो सोना है, टीन नहीं होगा।

लपटों के पलने में
जनम से पला है
सुलगती सचाई की
ध्वजा ले चला है।
तिल तिल कर ढले, मगर हीन नहीं होगा।

दर्द, बड़े, छोटे हों,
या कि हों मझोले।
विज्ञापित नहीं किये,
टीसते फफोले।
ग्रहण लगेगा? तो भी दीन नहीं होगा।



बद्नामी शूलों के नाम

—नौबतराय 'पथिक'

ज़हरीले फूलों के दंशन पर मौन हुये,
बदनामी शूलों के नाम हो गई।

सीमा को लांघ गई अकुलाई कल्पना-
तथ्य के धरातल पर लौट लौट आती है,
शब्दों में जीने के आदी आदर्श मगर-
जीवन की कटुता पर उबकाई आती है,
वादों ने कैद किया पीड़ा को प्राणों में,
असफलता भूलों के नाम हो गई।

हर टूटे दर्पण में बिम्ब बसे रूपों के-
फिर भी वे मलबे पर फेंक दिये जाते हैं,
क्षमता के स्रोत जभी रिक्त हुये जीवन में-
वरदानी चरणों के चिह्न मिटे जाते हैं,
भीड़ का भरोसा क्या, रोज़ बदल जाती है,
हर उगते सूरज की शाम हो गई।

एक कसक मन को है अक्सर झकझोर गई-
पूजित संकल्पों ने जब भी दम तोड़ा है,
पावों के नीचे से खिसकी है धरती भी-
विश्वासी हाथों ने जब भी संग छोड़ा है,
टूटे अनुबन्धों की जीते हम जिन्दगी
हर मंजिल अर्थ की गुलाम हो गई।



आदमी एक व्यंग

—सावित्री परमार

सुबह के
जलते पहर तो
शाम के अक्षर मिटे से

मिले तो कैसे मिले
दृष्टि को आकार।

भीड़ की मीनार
उस पर कागज़ी चेहरे
इश्तहारी गली में हैं
ऊंघते पहरे

धुएं पानी में
फिसलता शराबी सा शहर
गलियों में
उगलता है पेट भर जहर

कोई पाये भला कैसे
पांव भर आधार।

कुर्सियों की ढेरियों में
सभ्यता सोई
आदमी एक व्यंग
जिस पर जिन्दगी रोई

कर्ज़ डूबी
सरहदें सब
टूटता ग्राकाश
फाइलों की देह से
लिपटा पड़ा अवकाश

उतारें फिर भला कैसे
चित्र कुछ साकार।



दो व्यंग्य कविताएँ

—अखिलेश 'अंजुम'

पति

बाहर अपमान और
दफ्तर में—
नये नये सम्बोधन !
जीकर,
घर आया पति
पल भर में बदल गया।
सहने का माद्दा,
स्वाभिमानी, दम्भी
शासक में
ढल गया।

अधीनस्थ हम

हम सब अधीनस्थ हैं—
साहब बड़े साहब का,
पत्नि, पति की
बच्चे, माँ-बाप के
मारे अभिशाप के
हम सब दुखी हैं।

गीत

—श्रीनन्दन चतुर्वेदी

तुम न सौदा करो रूप के हाट में
बाट में ही दगा दे खिसक जायगा
पर न यों तितलियों के पकड़ते फिरो
रंग कच्चा, न कर पर ठहर पायगा ।

चाँद उजला बहुत, रात काली रही
एक अनमेल सा मेल क्या यह नहीं
क्या कहोगे, विधाता रहा ऊंघता
भाग्य-लिपि जब लिखी चंद्रमा की कहीं ?

दीप की थी शिखा क्या न उजली बहुत
क्यों मिली फिर उसे धूम सी संगिनी
मत्त ऋतुराज पीले कुसुम से सजा
क्या न कोयल वहां संग में बंदिनी

धूप का हाथ छाया चली थामती
कब यहां चांद सूरज रहे साथ में ?
पंकजों की सगाई रही पंक से
फूल पाटल रहे शूल के हाथ में ।

इसलिये मित्र यह तो नियति का नियम
तुम न भटको कहीं खोजते हम सफर
जो मिला लो उठा शीश पर धार कर
स्वर्ग बन जायगा जिन्दगी का सफर ।



ठूण्ठ वृक्ष का यह फल

—इन्दुभूषण शर्मा

छातियों से लुढ़कते
मांसल अंग
जिनसे सजीव—चिपका
मांस का लोथड़ा—अपने
पापड़ से पतले—
हाथों से निरन्तर
भींच रहा है उन्हें—
सम्भवतः यह सोच
कि बह निकले
इनसे भी दूध की धारा
परन्तु बेचारा नहीं जानता
मां तो मरुस्थल का ठूण्ठ,
जिसे परिस्थितियों ने
पनपने का – मौका न दिया
और ठूण्ठ वृक्ष का
यह फल
रह विहीन गंध हीन
क्या गंध दे सकेगा
परन्तु आह कभी कोई
दरिद्रता रूपी आग की

लपटों से निकाल
दे इसे–ग्रौर फिर
यह भी ग्रपने में
रजत जयंती की
शीतल लहरों का
ग्रावाहन कर–
ग्रपने में ग्राशा का रस भर
मानव को
मानवता की गंध दे सके



फासला

—जितेन्द्र उधमपुरी

प्रिये !
जब कभी
तुम्हारे गुलाब से कोमल-कोमल
अधरों पर
आ कर टिक जाती है
कहीं से
उत्तरी भारत के लोक नृत्य की
मौन मुद्रा सी
मधुर-मधुर मुस्कान
और, दौड़ने लगती लालिमा
किसी पानी भरे
टब में पड़े
रंगदार क्रिस्टल सी
तुम्हारी मुखाकृति पर,
तो लगने लगता
यह रूप तुम्हारा
शरद ऋतु के पूर्णन्दु सा
जो चमक रहा हो
नील गगन पर।
× × ×

और फिर जब
देखता हूं तुम्हें कभी
उस ऊपर वाली
लोहे की सलाखों में बंधी
खिड़की के दाहिने सिरे पर
रुकी - रुकी सी
टिकी - टिकी सी
उदासीन मुख मुद्रा में
लगने लगता
चन्द्रमा नहीं—केवल,
अंश है उसका कोई
जो लटक रहाहै दूर कहीं, शून्य में
किसी चमगादड़ सा।
फासला ——
एक दम बढ़ जाता है
एक ही रूप की
दो आकृतियों में
कुछ इस प्रकार
कि मैं मापकी
कल्पना भी नहीं कर पाता।



धधकते पलाशवन का फूल

—वीणा गुप्ता

मैं धधकते वन का पलाश फूल
मेरा
खिलना क्या ?
मुरझाना क्या ?
सुनसान जंगलों में
दहक मुस्कराना क्या ?
मैं तो उनमें से हूं
जिनका
जैसा ग्राना
वैसा जाना
हर किसी मुंह से सिर्फ
दुत्कार ही पाना।
मैं भी खिलता
किसी पुष्पवाटिका में।
मुझे भी होता इन्तजार
मालिन के ग्राने का
मुझे भी मिलता
स्पर्श कोमल करों का
चुन लिया जाता
किसी दुल्हन के गले की
माला के लिए तो

मैं भी इतराता ।
बिखर कर जो गिरता
गिरधर के चरणों में
मेरा जीवन सफल हो जाता ।
किस काम की यह सुन्दरता
जिससे कोई न लाभ उठाता ।
धधकते पलाश वन
की चर्चा
किसी विशेष सन्दर्भ में
सुन सुन तब
खुद ही कुण्ठित नहीं होता ।



तभी कह सकूंगा

—सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम्'

ऐ रवि-किरण
पल भर को थम जा
वहां
जहां तू है
और देख ले
आज का मानव
एवम् लिख दे
अपने आकाश पर
इस की दशा:
खाता है, पीता है
पहनता है
रहता है तथापि
उदास उदास !
यह उदासी इस की
यह अन ब्याही यातना इसकी
कैसे ब्याही गई,
तारों भरी
अलहड़ रात से
ले कर उत्तर
देना मुझ को,
तभी कह सकूंगा
तेरी—
असमर्थता क्या है, कहां !

—:o:—

एक विद्रोही आत्मा

—दिनेश यादव

उद्वलित सिन्धु की लहरों में
पुंजीभूत घृणा के छन्दों में,
विषादाच्छन्न शब्दों में,

घबराई एक तृष्णा है,
विद्रोही एक आत्मा है।

पल्लवित प्रीत कानन में निर्वासित,
गुंजित अलि सपनों में अभिशापित,
विवर्जित आहों से उत्पीड़ित,

इस युगान्तकारी 'प्रेरणा' ने
सतही भावों को उखाड़ने का,
रोते मिलिन्दों को उबारने का
उद्भाषित प्रकाश छोड़ा है।

'इनमें' फुफकारती एक नागिन है।
बागी युग तृष्णा है,
विद्रोही एक आत्मा है।



प्रसाधिका

—डा० सुधेश

क्या ज़रूरत है तुझे शृंगार की
जब धूप कुन्दन सी चमकती भाल पर तेरे
बिन्दु श्रमकण के टपकते
मोतियों के हार जैसे,
मुक्त-यौवन-ज्योति
बन कर लाज की लाली
झमकती मृदुल गालों पर
रोशनी की रेशमी चादर
लपेटे गात तेरा
फूल जिस पर टांक जाती
इस वनांचल की धरित्री मां।

देखता हूँ पर अचानक मैं तुझे
चीड़ के उस वृक्ष की छाया तले
बाल खोले
हाथ में कंघी लिये
स्वयं अपनी ज्योति से यों अपरिचित
मेघ-माला बीच जैसे दामिनी,
केश तेरे तो सुलझ ही जाएंगे
किन्तु इन से जो हृदय उलझे हुए हैं
सुलझ पांएगे कभी वे ?



रहस्यवाद

—मुल्ला मुहम्मद ताहिर 'गनी'
अनु०—डा० अर्जुन नाथ रैणा

कैद में ही रहके, मैं कैदी बना सही
यदि कैद से उड़ा तो मैं दीवाना फिर नहीं
इसलिए ही पांव में ये जंगली जंजीर
जंगल में रह रहा हूं पहने जंगलों की चीर।

शरीर - पिंजरे में बंद आत्मा रहा
जाने क्या ऊंचाई कसी आसमां कहां ?
पक्षी को बांधकर कोई उडने को बोले
तो नाम ले ऊंचाई औ आत्म-पंख खोले।

अलका के पर से निर्मित ब्रश मिल सका जो मुझको
सुन्दर प्रिया के मुख की छाया दिखा दूं तुझको
अलका को पर का मिलना है, स्वप्नवत् असंभव
मेरी प्रिया का चित्र भी बनना नहीं है संभव

काव्य औ विचार दर्शन की बात थोथी
है आदमी की कीमत मरने के बाद होती
ख्याति-प्राप्ति हेतु के मरना बड़ा ज़रूरी
मृग चल बसा तभी तो जग सूंघता कस्तूरी।

जग न जाय कहीं किसमत, है घूमता आकाश
तारे भी टिमटिमा के देखो कर रहे प्रकाश
आसमां तो घूम घूम के यही बता रहा
सोई हुई किसमत का दुश्मन सारा जहां।

मेरी प्रिया के केश धरती को चूमते हैं
विष से विषैले सांप मस्ती में झूमते हैं
ले लहर लहर कर यह वसुधा पै छा रहा
बाल नहीं सांप है मिट्टी को खा रहा।

दुश्मन तो दुश्मन ही है करो न कभी भरोस
सेवा के वश में होके मत हो कभी मद-होश।
दीवाल के तलवे को पानी की धार चूमें,
बस चूम चूम के पग कण कण मिला दें भू में।

अकड़ता हुआ पहाड़ क्षणभर में ढह गया
देखा शीरीं - तसवीर तो फौलाद बन गया
सुन्दर प्रिया का मुखड़ा दुःखड़ा को हर गया
प्रेमी हुए अमर बस शरीर मर गया।

पुतली हुई सफेद तो प्रकाश लुट गया
ऐसी बनी कहावत जो संसार कह गया।
चन्द्र ओ तारा समान श्वेत आंख मेरी ओ गली
सफेदी जागने वाली आंखों के लिए नुकसान देह न ही।

मिट्टी में जन्म लेकर मिट्टी को मान देकर
मिट्टी में जी रहे हैं नन्ही सी जान लेकर
कच्चा सा घर हमारा है स्वर्ग से भी अच्छा
डाली हमीं चटाई पाया आराम सच्चा।

गनी सजावट क्या करे जो टिक नहीं सके
सच्ची सजावट तो वही जो हिल नहीं सके।
मुख का उसके तेज कितना तेज उड़ चला
मेंहदी का रंग देखा कैसे छुट चला।

जमीन पर का दीपक शाश्वत सदा जलेगा
तेज हवा आए फिर भी नहीं बुझेगा
एकांत सेवियों का दुश्मन न कुछ करेगा
आया है जो अकेला अकेला ही जाएगा।

नोट :—मुल्ला मुहमद ताहिर 'गनी' काश्मीर के महान् फारसी कवि माने जाते हैं। आप की कविता फारसी भाषा और कविता के लिए एक अमूल्य देन है। लेखक ने गनी की फारसी कविता के छन्दों का कई भाषाओं में अनुवाद किया है। हिन्दी-अनुवाद कविता की एक झांकी उद्धृत है। सं०

शीराज़ा हिन्दी

(रजत जयन्ती अंक)

वर्ष ८] [अंक २ और ३

(सितम्बर, १९७२)

लेखक परिचय

१	श्री एस० रामकृष्णन	सम्पादक भारतीय विद्याभवन जर्नल, चौपाटी बम्बई–७ ।
२	श्री श्यामलाल शर्मा	सम्पादक, 'शीराज़ा' १९५ विजयगढ़, जम्मू ।
३	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी	प्राध्यापक आयुर्वेदिक कालेज जम्मू । धन्वन्तरी औषधालय, पटेल चौक, जम्मू ।
४	श्री विश्वनाथ खजूरिया	१४० पंजतीर्थी, जम्मू ।
५	श्री शिव नरेन्द्र	१४६—४७ सर्वाल कालोनी, जम्मू ।
६	डा० मुहम्मद अयूब 'प्रेमी'	हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर ।

७	श्री देवी सिंह नरूका	ई० १७०, शंकर भवन, सी-स्कीम जयपुर
८	श्री विष्णुकान्त शास्त्री	प्राध्यापक हिन्दी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, २८०, चित्तरञ्जन एवेन्यु, कलकत्ता ६।
९	श्री रामनारायण उपाध्याय	साहित्य कुटीर, ब्राह्मणपुरी, खण्डवा (मध्य प्रदेश)।
१०	डा० नरेश	पंजाब विश्व-विद्यालय, पत्राचार पाठ्य-क्रम विभाग, चण्डीगढ़।
११	डा० श्याम परमार	डी/ई-७४, टैगोर गार्डन, नई दिल्ली २७
१२	डा० प्रभाकर माचवे	मन्त्री साहित्य अकादमी, १२०. राबिन्दर नगर, नई दिल्ली।
१३	डा० शिवन कृष्ण रैणा	राजकीय कालेज, नाथद्वारा, राजस्थान।
१४	श्री छत्रपाल	डोगरी विभाग, आकाशवाणी, जम्मू।
१५	श्री दीदार सिंह	पंजाबी विभाग, आकाशवाणी, जम्मू।
१६	डा० दलीप कौर टिवाना	पंजाबी विभाग, पंजाबी विश्व-विद्यालय, पटियाला।
१७	श्री फूल चन्द मानव	१८५/११ एफ, २३-ए, चण्डीगढ़ २३।
१८	श्री अख्तर मही-उ-द्दीन	डिपुटी डायरैक्टर फील्ड सर्वे आर्गेनाइजेशन, श्रीनगर।
१९	श्री हरिकृष्ण कौल	काठलेश्वर, जैनदार मुहल्ला, श्रीनगर।
२०	श्री श्रीकान्त चौधरी	नया बाजार १, दमोह (म० प्र०)
२१	श्रीमती अतिया परवीन	उर्दू की प्रसिद्ध कहानीकार
२२	श्री सुरजीत	सी० ३४, सुदर्शनपार्क, मोती नगर, नई दिल्ली, १५।
२३	श्री कृष्ण स्मैलपुरी	सहायक सम्पादक 'फुलवाड़ी' फील्ड सर्वे आर्गेनाइजेशन जम्मू।
२४	डा० वेद कुमारी	अध्यक्ष संस्कृत विभाग, जम्मू विश्व-विद्यालय, जम्मू, ७३, रघुनाथ पुरा, जम्मू
२५	श्री सुदर्शन पानीपती	१७५/२ पानीपत हरियाणा
२६	श्री देवरत्न शास्त्री	राजकीय कालेज, उधमपुर।
२७	श्री केदार नाथ कोमल	ई/६७, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली २३।
२८	श्री ओमप्रकाश गुप्ता इन्जीनियर	O. P. C. Ltd. केवल नगर, कोटा। (राजस्थान)

२९	श्री जीवन मेहता	गवर्नमेण्ट कालेज भीलवाड़ा (राजस्थान)
३०	श्री राजेश राही	ए/६ पी० एण्ड टी० कालोनी, एम. आई. रोड, जयपुर।
३१	श्री शंकर 'पिपासु'	रामतलाई, विजयगढ़, जम्मू।
३२	श्री सत्य प्रकाश बजरंग	२३५७, गली रामनाथ पटवा, पहाड़गंज, नई दिल्ली ५५।
३३	श्री नरेन्द्र चतुर्वेदी	सिविल लाइन्ज, नयापुरा, कोटा।
३४	श्री नारायण उपाध्याय	ब्राह्मण पुरी, खण्डवा, (म० प्र०)।
३५	श्री शिव नारायण उपाध्याय	साहित्य कुटीर खण्डवा (म० प्र०)।
३६	श्री भुवनपति शर्मा	स्नातक जम्मू विश्व-विद्यालय, १९५, विजय गढ़, जम्मू।
३७	श्री राम नाथ कमलाकर	जनसम्पर्क अधिकारी, कोटा।
३८	श्री मनोहर शर्मा	ग्राम तथा डाकघर मारण्डा, (हि० प्र०)
३९	प्रो० शक्ति शर्मा	विजय गढ़, जम्मू।
४०	श्री केहरि सिंह 'मधुकर'	सम्पादक 'डोगरी शीराज़ा' कल्चरल अकादमी, जम्मू।
४१	श्रीमती सावित्री परमार	महावीर दिगम्बर हाई स्कूल, सी० स्कीम जयपुर।
४२	श्री अखिलेश अंजुम	२७८, शापिंग सैण्टर, कोटा।
४३	श्री दीपंकर	C/o गुप्ता अभूषण स्टोर, सदर बाजार, सण्डीला, जि० हरदोई (उ० प्र०)।
४४	श्री उमाकान्त मालवीय	२३, महावीरन स्ट्रीट, इलाहाबाद ३।
४५	श्री नौबतराय पथिक	१८९, बहादुर गंज, इलाहाबाद।
४६	श्री श्रीनन्दन चतुर्वेदी	१४/३१९ डकोतपारा, कोटा।
४७	श्री इन्दुभूषण शर्मा	गवर्नमेण्ट हाई स्कूल, टिकरी (उधमपुर)
४८	श्री जितेन्द्र उधमपुरी	कल्चरल अकादमी, जम्मू।
४९	श्रीमती वीणा गुप्ता	गौरी निवास, गुमान पुरा, कोटा ७
५०	श्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्	४०२, अम्बफला, जम्मू।
५१	श्री कुमार शिव	४४, सराय कायस्थान, कोटा।
५२	श्री दिनेश यादव	१७, रायचरण लने, पोस्ट तिलजला, कलकत्ता, ३९।

५३	डा० सुधेश	एन० आर० ई० सी० कालेज, खुरजा, (उत्तर प्रदेश) ।
५४	मुहम्मद ताहिर 'गनी'	फारसी के प्रसिद्ध कश्मीरी कवि ।
५५	डा० अर्जुन नाथ रैणा	जवाहर यूनिवर्सिटी, दिल्ली ।




JAMMU AND KASHMIR
ACADEMY OF ART, CULTURE & LANGUAGES